सत्यमेव जयते

वार्षिक रिपोर्ट
2010-2011

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग
गेट नं. 4, प्रथम तल, जीवन तारा बिल्डिंग,
5 संसद मार्ग, पटेल चौक, नई दिल्ली-110001

सत्यमेव जयते

वार्षिक रिपोर्ट

2010-2011

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग

गेट नं. 4, प्रथम तल, जीवन तारा बिल्डिंग,
5 संसद मार्ग, पटेल चौक, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

अध्याय सं.	विषय	पृष्ठ स.
1.	प्रस्तावना ।	1-4
2.	आयोग का गठन और कार्य ।	5-7
3.	आयोग की बैठकें ।	8-13
4.	वर्ष की मुख्य-मुख्य बातें ।	14-15
5.	दौरे एवं निरीक्षण ।	16-21
6.	वर्ष के दौरान प्राप्त हुई याचिकाओं एवं शिकायतों का विश्लेषण ।	22-130
7.	अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के अधिकारों के वंचन तथा विश्वविद्यालयों से संबद्धता संबंधी मामले ।	131-202
8.	केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के संदर्भ एवं आयोग की सिफारिशें ।	203
9.	आयोग द्वारा किए गए अध्ययन ।	204-205
10.	अल्पसंख्यकों की शिक्षा के एकीकृत विकास के लिए सिफारिशें ।	206-208
11.	अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन अथवा उनसे वंचित किये जाने के दृष्टांत ।	209-211
12.	निष्कर्ष ।	212-215
	अनुबंध.	217-256

अध्याय-1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम, 2004 की धारा 16 के अनुसरण में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग की यह छठी वार्षिक रिपोर्ट है । यह आयोग सरकार द्वारा दिनांक 11 नवम्बर, 2004 में प्रख्यापित एक अध्यादेश के माध्यम से अस्तित्व में आया और बाद में इस अध्यादेश के स्थान पर राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम (संक्षेप में रा अ शै सं आ), 2004 लाया गया । इस आयोग का गठन मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 16 नवम्बर, 2004 को किया गया और इसका मुख्यालय दिल्ली में बनाया गया ।

रा.अ.शै.सं.आ. अधिनियम, 2004 : राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम 2004 (2005 का 2) 6 जनवरी, 2005 को अधिसूचित किया गया । इस अधिनियम के द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग का गठन हुआ और इस अधिनियम में उल्लिखित आयोग के मुख्य कार्य तथा शक्तियां निम्नलिखित थी:-

(क) अल्पसंख्यकों की शिक्षा से संबंधित किसी प्रश्न पर, जो उसे निर्देशित किया जाए, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार को सलाह देना ;

(ख) अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित और संचालित करने के अधिकारों से वंचित किए जाने या उनका अतिक्रमण किए जाने और किसी अनुसूचित विश्वविद्यालय से संबद्ध होने से संबंधित किसी विवाद के बारे में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जॉच पड़ताल करना तथा केन्द्रीय सरकार को उनके कार्यान्वयन के लिए अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट करना ; और

(ग) ऐसे अन्य कार्य और बातें करना जो आयोग के सभी या किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक आनुषंगिक या सहायक हों ।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग (संशोधन) अधिनियम, 2006 : आयोग को अधिक सक्रिय व इसकी कार्यपद्धति को और अधिक विशिष्ट बनाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सुझावों के आधार पर आयोग द्वारा सरकार को इस अधिनियम में संशोधन करने के लिए सिफारिशें की गई थीं । सरकार ने संसद में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग (संशोधन) विधेयक, 2005 प्रस्तुत किया । तथापि, संसद द्वारा पारित 93वें संवैधानिक संशोधन, जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा समाजिक व शैक्षिक रप से पिछड़े वर्ग के नागरिकों की शैक्षिक उन्नति को बढ़ावा देने के लिए संविधान में अनुच्छेद 15 (5) को समाविष्ट किया गया था, के अनुसरण में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम में एक अध्यादेश द्वारा तदनुरुपी संशोधन करना आवश्यक हो गया । इसके फलस्वरूप, सरकार द्वारा 23 जनवरी, 2006 को एक अध्यादेश अधिसूचित किया गया जिसका स्थान आगे चलकर संसद द्वारा पारित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग (संशोधन) अधिनियम 2006 ने ले लिया जो 29 मार्च, 2006 को अधिसूचित हुआ ।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग संशोधन अधिनियम, 2006 के अंतर्गत इस संशोधन ने संबद्धता करने वाले सभी सम्बद्ध विश्वविद्यालयों को अधिनियम के दायरे में ला दिया जिससे कि संबद्धता के संबंध में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को व्यापक विकल्प मिल सके । इसमें नई धाराओं को समाविष्ट किया गया है ताकि आयोग की कार्यवाही की पवित्रता को बनाए रखा जा सके तथा केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकारों के किसी अधिकारी की सेवाओं का इस्तेमाल करके अल्पसंख्यकों

के शैक्षणिक अधिकारों के वंचन संबंधी मामलों की जांच करने के लिए आयोग की शक्तियों में बढ़ोत्तरी हो सके । आयोग को यह अधिकार दिया गया था कि वह शैक्षणिक संस्थाओं को अल्पसख्यक दर्जा देने संबंधी मामलों का निर्णय कर सके तथा साथ ही उन संस्थाओं, जो निर्धारित मानकों को लागू करने में असफल होते हैं, के अल्पसंख्यक दर्जे को निरस्त भी कर सके। अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा राज्य सरकारों से अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के संदर्भ में एक ऐसा मान्य प्रावधान भी शामिल किया गया है जिसके अंतर्गत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अपनी संस्था की स्थापना के संबंध में आगे कार्रवाई कर सकती है बशर्ते कि राज्य सरकार 90 दिनों के भीतर अपने निर्णय से उन्हें सूचित न करे । आयोग को अब अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के लिए राज्य सरकारों द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र दिए जाने से इन्कार करने संबंधी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार भी दिया गया है ।

उक्त अधिनियम में अन्य के अलावा धारा-12 च अन्तःस्थापित किया गया है जिसके अंतर्गत रिट अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोडक़र सभी न्यायालयों की अधिकारिता का किसी भी प्रत्यक्ष आवेदन अथवा आयोग के किसी भी आदेश के संबंध में अन्य कार्यवाही पर विचार करने के लिए वर्जन किया गया । रा अ शै सं आ़ अधिनियम, 2004 की धारा 12 च को निम्नवत पढ़ा जाए ।

12 च अधिकारिता का वर्जन : `कोई न्यायालय (उच्चतम न्यायालय और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी उच्चतम न्यायालय के सिवाए) इस अध्याय के अधीन किए गए किसी आदेश के संबंध में किसी वाद, आवेदन या अन्य कार्रवाईयो को ग्रहण नहीं करेगा ।`

इसके पश्चात् रा अ शै सं आ़ अधिनियम की धारा 12 ख (4) के प्रावधान के बारे में अनेक सुझाव प्राप्त हुए, जिसमें राज्य सरकार के परामर्श से प्रावधान को हटाने का सुझाव दिया गया । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की परिभाषा, जहां विश्वविद्यालयों को छोड दिया गया था, के संबंध में धारा-2 (छ) में संशोधन करने की आवश्यकता के बारे में अनेक सुझाव प्राप्त हुए । एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की स्थापना के लिए`अनापत्ति प्रमाण पत्र` दिए जाने से संबंधित धारा-10 के प्रावधान में अस्पष्टता दूर करने की आवश्यकता पर भी सुझाव प्राप्त हुए । इन सुझावों की आयोग में जांच की गई । यह महसूस किया गया कि आयोग द्वारा अपील पर निर्णय लेते हुए अधिनियम की धारा-12 ख के अनुसार राज्य सरकार के साथ परामर्श करने की आवश्यकता प्राकृतिक न्याय के सिद्वांतों के विरूद्ध है । यह देखा गया कि राज्य सरकार से परामर्श करने से पीड़ित पार्टी के पक्ष में सृजित अपील के अधिकार में बहुत हद तक कमी आई है। अधिनियम की धारा-10 (1) में प्रावधान के अध्ययन मात्र से यह पता चलता है कि सभी मामलों में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की स्थापना के लिए `अनापत्ति प्रमाण पत्र` आवश्यक है । हालांकि, ऐसी संस्थाओं विशेषकर तकनीकी व्यावसायिक कॉलेजों से संबंधित संस्थाओं की स्थापना के विभिन्न कानूनों के प्रावधानों को विनियमन करने वाले प्रावधानों के अनुसार, राज्य सरकार के अधीन सक्षम प्राधिकारी से `अनापत्ति प्रमाण पत्र` प्राप्त करना अनिवार्य नहीं था । इसलिए, धारा 10 (1) में आवश्यक संशोधन जरूरी समझा गया । आयोग के कार्यभार में स्थिर रूप से होती बढ़ोत्तरी और आयोग को और अधिक प्रतिनिधित्व स्वरूप प्रदान करने के लिए मौजूदा दो सदस्यों के अतिरिक्त एक अन्य सदस्य की आवश्यकता भी महसूस की गई । तदनुसार, आयोग की सिफारिशों पर, इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए रा अ शै सं आ अधिनियम, 2004 में संशोधन किया गया ।

यह आयोग एक न्यायिक-वत निकाय है तथा इसे एक दीवानी न्यायालय की शक्तियां दी गई हैं । यह पहली बार है कि अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा संचालन करने के अल्पसंख्यकों के अधिकार की सुरक्षा तथा उसके संरक्षण के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा एक विशिष्ट आयोग स्थापित किया

गया है । अधिनियम के प्रावधान के अनुसार, आयोग को न्यायिक कार्य और संस्तुति करने की शक्तियां हैं। आयोग का जनादेश बहुत व्यापक है । इसके कार्यों में अन्य बातों के अलावा किसी विश्वविद्यालय से अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के सहबद्ध होने से संबंधित किसी विवाद का निपटारा करने, अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने के अल्पसंख्यकों के अधिकारों का वंचन तथा उल्लंघन संबंधी शिकायतों का निपटान करने तथा अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों से संबंधित आयोग को भेजे गए किसी मामले पर केंद्रीय सरकार या राज्य सरकारों को सलाह देना शामिल है ।

आयोग ने शास्त्री भवन में दो कमरों से कार्य करना प्रारंभ किया था । अगस्त, 2005 से आयोग संसद मार्ग, नई दिल्ली स्थित जीवन तारा भवन के प्रथम तल पर अपने परिसर में स्थानान्तरित हो गया। इस समय आयोग जीवन तारा भवन के प्रथम तल (गेट नं. 4), 5, संसद मार्ग, नई दिल्ली से कार्य कर रहा है ।

सरकार ने आवश्यक प्रशासनिक व कार्यालय कार्य के लिए प्रारंभ में 22 पद स्वीकृत किए थे । बाद में, सरकार ने 11 अतिरिक्त पद दिए । इस प्रकार, इस समय आयोग में निम्नलिखित 33 पद है :-

क्र.सं.	**पद का नाम**	**संख्या**
1.	सचिव	1
2.	उप-सचिव	1
3.	वरिष्ठ प्र.नि.स.	1
4.	अवर सचिव	1
5.	अनुभाग अधिकारी	1
6.	निजी सचिव	5
7.	सहायक	1
8.	वैयक्तिक सहायक	5
9.	पुस्तकालयाध्यक्ष	1
10.	लेखाकार	1
11.	उर्दू अनुवादक	1
12.	आशु.श्रेणी 'घ'	3
13.	रीडर/उ.श्रे.लिपिक	1
14.	अवर श्रेणी लिपिक	2
15.	स्टाफ कार ड्राइवर	1
16.	दफतरी	1
17.	चपरासी-1	6
	योग	**33**

कुछ पदों को आयोग द्वारा प्रतिनियुक्ति आधार पर और कुछ को सीधी भर्ती के माध्यम से भरा गया है । कुछ व्यक्ति संविदा आधार पर और आयोग में विभिन्न पदों, जो सरकार के विचाराधीन है, के लिए भर्ती नियमों को अंतिम रुप देने तक सलाहकार के रुप में कार्य कर रहे हैं । काफी अधिक संख्या में याचिकाएं/आवेदन आ जाने के कारण आयोग को वर्तमान स्टाफ से इस कार्यभार को संभालने में कठिनाई आई है और आयोग ने, विशेषकर न्यायिक मामलों, जो कि इसका मुख्य कार्य है, से निपटने के लिए तथा साथ ही कम्प्यूटरीकरण संबंधी कार्य संभालने के लिए अतिरिक्त पदों के सृजन के लिए सरकार को लिखा है । यद्यपि आयोग में तीसरे सदस्य का प्रावधान करने के लिए इस अधिनियम में संशोधन किया गया है, सरकार को अभी इस सदस्य की नियुक्ति करनी है ।

अध्याय - 2 आयोग का गठन और कार्य

आयोग की स्थापना 11 नवम्बर, 2004 को अधिसूचित एक अध्यादेश (2004 का संख्यांक 6) के जरिए हुई थी । इसके बाद अध्यादेश के स्थान पर एक विधेयक पेश किया गया और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम, 2004 (2005 का 2) पारित हुआ जिसे 6 जनवरी, 2005 को अधिसूचित किया गया । संसद ने रा.अ.शै.सं.आ.(संशोधन),अधिनियम, 2006 पारित किया, जिसे 29 मार्च, 2006 को अधिसूचित किया गया । इस अधिनियम में आगे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था (संशोधन) अधिनियम, 2010 द्वारा संशोधन किया गया ।

सरकार ने न्यायमूर्ति एम एस ए सिद्दिकी को आयोग का पहला अध्यक्ष और श्री बी एस रामूवालिया एवं श्री वाल्सन थम्पू को पहले सदस्य के रूप में नियुक्त करते हुए दिनांक 26 नवम्बर,2004 को एक अधिसूचना जारी की । श्री वाल्सन थम्पू ने 11 सितंबर, 2007 को आयोग के सदस्य के पद से त्यागपत्र दे दिया । उनके बाद, श्रीमती बसंती स्टेनली की सदस्य के रूप में नियुक्ति की गई और 05 मार्च, 2008 को उनके त्यागपत्र दिए जाने पर सिस्टर जैस्सी कुरियन की 27 मार्च, 2008 को सदस्य के रूप में नियुक्ति की गई । श्री बी एस रामूवालिया ने 31-3-2009 को सदस्य के पद से त्यागपत्र दे दिया । 05 वर्ष का कार्यकाल पूरा कर लेने पर, न्यायमूर्ति एम एस ए सिद्दिकी ने 28-11-2009 को अध्यक्ष का कार्यभार छोड़ दिया और सिस्टर जैस्सी कुरियन ने अपना कार्यकाल 5-12-2009 को पूरा किया । सरकार ने आगे और पांच वर्ष की अवधि के लिए न्यायमूर्ति एम एस ए सिद्दिकी की आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति की और उन्होंने अपना कार्यभार 18-12-2009 को ग्रहण किया । इस समय डा0 मोहिन्दर सिंह और डा0 सिरीयक थॉमस आयोग के दो सदस्य हैं, जिन्होने 05 वर्ष की अवधि के लिए क्रमशः 8, अप्रैल, 2010 और 12 अप्रैल, 2010 को कार्यभार ग्रहण किया है ।

अधिनियम की धारा-11 के अनुसार आयोग के कार्य निम्नानुसार है :-

(क) अल्पसंख्यकों की शिक्षा से संबंधित ऐसे किसी प्रश्न पर, जो उसे निर्देशित किया जाए, केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार को सलाह देना ;

(ख) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अथवा इसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित और संचालित करने के अधिकारों से वंचित किए जाने अथवा उनका अतिक्रमण किए जाने और किसी विश्वविद्यालय में संबद्ध होने संबंधित किसी विवाद के बारे में शिकायतों की अपनी ओर से या उसे प्रस्तुत की गई किसी याचिका पर जाँच पड़ताल करना और समुचित सरकार को इनके कार्यान्वयन के लिए अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट देना ;

(ग) किसी न्यायालय के समक्ष ऐसे न्यायालय की अनुमति से अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक अधिकारों से वंचित किए जाने या उनका अतिक्रमण किए जाने से संबद्ध किसी कार्यवाही में हस्तक्षेप करना ;

(घ) अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत अथवा उस समय प्रचलित किसी कानून के अन्तर्गत किए गए सुरक्षापायों की समीक्षा करना तथा उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए उपायों की अनुशंसा करना ;

(ङ) अल्पसंख्यक स्थिति तथा अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित अपनी पसंद की संस्थाओं के स्वरुप के संवर्धन एवं संरक्षण के उपाय विनिर्दिष्ट करना ;

(च) अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रुप में किसी संस्था की स्थिति से संबंधी सभी प्रश्नों का विनिश्चय करना तथा इस प्रकार इसकी स्थिति की घोषणा करना ;

(छ) अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं से संबंधित कार्यक्रमों एवं योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समुचित सरकार से सिफारिशें करना ; और

(ज) आयोग के सभी या किसी भी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे अन्य कार्य एवं बातें करना जो आवश्यक, आनुषंगिक या सहायक हों ।

आयोग एक अर्द्ध-न्यायिक निकाय है तथा अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन हेतु इसे किसी वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की शक्तियाँ प्राप्त हैं । आयोग की शक्तियों में निम्नलिखित शामिल है:-

(1) यदि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और किसी विश्वविद्यालय के बीच उसके ऐसे विश्वविद्यालय से सहबद्ध होने के संबंध में कोई विवाद उठता है तो उस पर आयोग का विनिश्चय अंतिम होगा ।

(2) आयोग को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, किसी वाद का विचारण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी, अर्थात् :-

(क) भारत के किसी भाग से किसी व्यक्ति को सम्मन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872(1872 का 1) की धारा 123 और 124 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज अथवा ऐसे रिकार्ड अथवा दस्तावेज अथवा रिकार्ड की प्रति की अपेक्षा करना ;

(ड.) साक्षियों या दस्तावेज की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए।

(3) आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत और धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (1974 का 2)की धारा 195 और अध्याय XXVI प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

आयोग की शक्तियों में किसी भी संस्था को एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रूप में दर्जे से संबंधित सभी प्रश्नों पर निर्णय लेना शामिल है । यह अल्पसंख्यक दर्जे से जुड़े विवादों के संबंध में एक अपील प्राधिकारी के रूप में भी कार्य करता है । किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान करने से मना करने पर व्यथित शैक्षणिक संस्थाएं ऐसे आदेशों के विरूद्ध आयोग से अपील कर सकती हैं । आयोग को

इस अधिनियम में निर्धारित आधारों पर किसी शैक्षणिक संस्था के अल्पसंख्यक दर्जे को निरस्त करने की भी शक्ति है ।

आयोग को अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के अतिक्रमण अथवा वंचन किए जाने की शिकायतों की जाँच करते समय जानकारी लेने का भी अधिकार है । जहाँ किसी जांच में लोक सेवक द्वारा अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का अतिक्रमण अथवा वंचन किया जाना साबित होता है, वहाँ आयोग संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही या ऐसी अन्य कार्रवाई, जिसे वह उचित समझे, शुरु करने के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकारी से सिफारिश कर सकता है ।

संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन अनुच्छेद-32 के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले केवल उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय ही आयोग द्वारा दिए गए किसी आदेश के संबंध में किसी वाद, आवेदन या कार्यवाही पर विचार कर सकते हैं ।

संसद द्वारा सम्यक विनियोजन किए जाने के पश्चात् आयोग को केन्द्र सरकार से अनुदान मिलता है। इस अनुदान का उपयोग आयोग के खर्चों को पूरा करने के लिए किया जाता है । आयोग केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित प्रारुप में लेखाओं का वार्षिक विवरण तैयार करता है और इन लेखाओं की लेखा-परीक्षा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा की जाती है ।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा-21 के अर्थान्तर्गत में आयोग के अध्यक्ष, सदस्य, सचिव, अधिकारी तथा अन्य कर्मचारी लोक सेवक माने जाते हैं ।

अध्याय 3 - आयोग की बैठकें

रा. अ.शै.सं. आ. अधिनियम की धारा 12(3) यह अनुबंधित करती है कि आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही धारा 193 और 228 के अर्थ में तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 196 के प्रयोजन के लिए न्यायिक कार्यवाही मानी जाएगी और आयोग को आपराधिक प्रक्रिया संहिता,1973 की धारा 195 अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय माना जाएगा । आयोग अर्द्ध-न्यायिक निकाय होने के कारण औपचारिक न्यायालय की बैठकें आयोजित करता है। एक औपचारिक न्यायालय कक्ष आयोग के परिसर में उपलब्ध है।

वर्ष 2010-11 के दौरान, आयोग ने न्यायालय के रुप में 130 बैठकें आयोजित कीं और नीचे दिए गए ब्योरों के अनुसार 4774 मामलों की सुनवाई की-

क्रम संख्या	बैठक की तारीख	मामलों की संख्या
1	01.04.2009	56
2	02.04.2009	37
3	08.04.2009	37
4	09.04.2009	25
5	15.04.2009	36
6	16.04.2009	44
7	21.04.2009	30
8	22.04.2009	44
9	23.04.2009	34
10	28.04.2009	94
11	29.04.2009	44
12	05.05.2009	35
13	06.05.2009	65
14	12.05.2009	80
15	13.05.2009	22
16	19.05.2009	84
17	20.05.2009	33
18	21.05.2009	02
19	26.05.2009	45
20	27.05.2009	39
21	28.05.2009	30
22	29.05.2009	83
23	02.06.2009	40

24	03.06.2009	45
25	04.06.2009	01
26	09.06.2009	37
27	10.06.2009	17
28	11.06.2009	02
29	16.06.2009	19
30	17.06.2009	76
31	18.06.2009	03
32	23.06.2009	03
33	24.06.2009	34
34	02.07.2009	37
35	07.07.2009	55
36	08.07.2009	41
37	09.07.2009	03
38	13.07.2009	03
39	14.07.2009	45
40	15.07.2009	35
41	21.07.2009	49
42	22.07.2009	43
43	23.07.2009	48
44	27.07.2009	01
45	28.07.2009	137
46	29.07.2009	43
47	30.07.2009	49
48	05.08.2009	31
49	11.08.2009	42
50	12.08.2009	03
51	18.08.2009	05
52	19.08.2009	37
53	20.08.2009	40
54	24.08.2009	45
55	25.08.2009	61
56	26.08.2009	42

57	27.08.2009	02
58	28.08.2009	01
59	01.09.2009	22
60	03.09.2009	40
61	07.09.2009	03.
62	08.09.2009	42
63	09.09.2009	37
64	10.09.2009	43
65	15.09.2009	42
66	16.09.2009	64
67	17.09.2009	02
68	23.09.2009	29
69	24.09.2009	37
70	30.09.2009	04
71	20.10.2009	21
72	21.10.2009	39
73	22.10.2009	44
74	26.10.2009	03
75	27.10.2009	42
76	28.10.2009	56
77	29.10.2009	36
78	03.11.2009	39
79	04.11.2009	03
80	05.11.2009	51
81	09.11.2009	20
82	10.11.2009	23
83	11.11.2009	44
84	12.11.2009	33
85	16.11.2009	13
86	17.11.2009	39
87	18.11.2009	42
88	19.11.2009	46
89	23.11.2009	04

90	24.11.2009	45
91	25.11.2009	27
92	26.11.2009	08
93	05.01.2010	31
94	06.01.2010	34
95	12.012010	45
96	13.01.2010	34
97	14.01.2010	32
98	19.01.2010	05
99	20.01.2010	59
100	21.01.2010	32
101	27.01.2010	36
102	28.01.2010	43
103	02.02.2010	39
104	03.02.2010	54
105	11.02.2010	54
106	15.02.2010	81
107	16.02.2010	27
108	17.02.2010	64
109	18.02.2010	32
110	23.02.2010	39
111	24.02.2010	56
112	25.02.2010	40
113	03.03.2010	29
114	04.03.2010	29
115	09.03.2010	26
116	10.03.2010	35
117	11.03.2010	33
118	16.03.2010	40
119	22.03.2010	41
120	23.03.2010	23
121	30.03.2010	67
	कुल	**4377**

वर्ष के दौरान आयोजित की गई न्यायालय की बैठकों की संख्या पिछले वर्षो की तुलना में बहुत अधिक रही है, जिसे नीचे दर्शाया गया है :-

वर्ष	बैठकें	मामले
2005-06	46	1404
2006-07	80	3932
2007-08	73	2916
2008-09	93	3506
2009-10	121	4377
2010-11	130	4774

औपचारिक न्यायालय बैठकों के दौरान जिन मामलों में नोटिस जारी किए गए उनकी सुनवाई की गई । उपर्युक्त औपचारिक बैठकों की संख्या के अलावा, आयोग ने दैनिक आधार पर नई याचिकाओं की सुनवाई की और आदेश पारित किए है । नई याचिकाओं के लिए याचिकाकर्ता अथवा प्रतिवादी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है । आयोग ने प्रत्येक बैठक में यथासंभव मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के लिए अधिक से अधिक मामलों को सूचीबद्ध करने का प्रयास किया है और यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि पिछले वर्ष के बकाया मामलों को प्राथमिकता दी जाए । अपर्याप्त स्टाफ होने के बावजूद वर्ष के दौरान मामलों के निपटान की दर में पिछले वर्ष के मुकाबले में अधिक वृद्धि हुई है ।

आयोग द्वारा प्रत्येक सप्ताह न्यायालय की बैठकें आयोजित की गई । सर्वाधिक बैठकों की संख्या 14 बैठकें नवम्बर, 2010 और मार्च, 2011 के प्रत्येक माह में आयोजित की गई । जुलाई, 2010 और अगस्त, 2010 के प्रत्येक माह में बैठकों की संख्या 13 थी । जुलाई, 2010 और जनवरी, 2011 के माह में न्यायालय ने प्रत्येक माह 12 बार बैठक की । नवम्बर, 2010 और जुलाई, 2010 में प्रत्येक माह न्यायालय ने 11 बैठकें कीं। दिसम्बर, 2010 में न्यायालय ने 10 बार बैठक की । जून, 2010 और अक्तूबर, 2010 के माह में न्यायालय ने प्रत्येक माह 7 बार बैठक की । फरवरी, 2011 के माह में, न्यायालय की कुल मिलाकर 6 बैठकें हुई । न्यायालय ने सर्वाधिक मामलों (577) का निपटारा जुलाई, 2010 माह में किया । उसके पश्चात अगस्त, 2010 में (540), अप्रैल, 2010 में (518), मई, 2010 में (492), मार्च, 2010 में (488), जनवरी, 2011 में (444), सितंबर, 2010 में(407), दिसंबर, 2010 में (262), अक्तूबर, 2010 में (216), जून, 2010 में (209) और, फरवरी, 2011 में(183) बैठकें हुई।

आयोग ने न्यायालय की बैठकों के लिए कोई कोरम निर्धारित नहीं किया है । यदि केवल अध्यक्ष अथवा कोई एक सदस्य भी उपस्थित होता है तो न्यायालय की कार्यवाहियां आयोजित की जा सकती हैं और निर्णय लेने के लिए मामलों पर विचार किया जाता है ।

सभी मामले जो एक विशेष दिन के लिए सूचीबद्ध किए जाते हैं, उन्हें उसी दिन लिया जाता है और उन पर उसी दिन सुनवाई होती है और उपस्थित सदस्यों द्वारा समुचित आदेश पारित किए जाते हैं। प्रतिवादियों को पर्याप्त समय का नोटिस दिया जाता है । याचिकाकर्ताओं द्वारा आग्रह करने पर, आयोग सुनवाई की पहले तारीख दे देता है । आयोग किसी विशेष दिन उपस्थित होने के लिए पक्षकारों द्वारा व्यक्त असुविधा पर भी विचार करता है तथा तदनुसार, सुनवाई की उपयुक्त तारीख निर्धारित करके स्थगन प्रदान किए जाते हैं ताकि पक्षकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप अपने मामले प्रभावी ढंग से रख सकें।

याचिकाकर्त्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए आयोग ने कभी भी वकील की सेवाएं लिए जाने का आग्रह नहीं किया है । अन्य शब्दों में, कोई भी याचिकाकर्त्ता जो अपने मामले पर बहस करना चाहता है, उसे इसकी स्वतंत्रता दी जाती है ।

आयोग का यह प्रयास रहा है कि अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों को संविधान के अंतर्गत प्रदान किए गए उनके शैक्षणिक अधिकारों से संबंधित शिकायतों के निवारण के लिए एक निःशुल्क मंच प्रदान किया जाए । इसलिए, आयोग ने कोई भी न्यायालय शुल्क निर्धारित नहीं किया है । चूंकि काफी संख्या में याचिकाकर्त्ता न्यायालय की औपचारिकताओं तथा प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ हैं, आयोग ने उन याचिकाओं तक को भी स्वीकार किया है जो वकालत के कानून के अनुरूप नहीं होतीं।

अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, आयोग दिल्ली के बाहर भी अपनी बैठकें कर सकता है। रा. अ. शै. सं. आ.की धारा 09 में प्रावधान है कि जब कभी भी आवश्यक हो, आयोग अध्यक्ष द्वारा उपयुक्त समझे जाने वाले समय और स्थान पर बैठक करेगा । यह उपबंध आयोग को दिल्ली के बाहर भी बैठक करने का अधिकार प्रदान करता है। तथापि, वर्ष 2010-11 के दौरान आयोग की बैठकें केवल दिल्ली में ही की गईं । आयोग की बैठक विभिन्न स्थानों पर करने के लिए कुछ अनुरोध प्राप्त हुए थे । एक स्थान विशेष से काफी संख्या में मामले आने की अवस्था में, आयोग संबंधित राज्य सरकार से पर्याप्त सुविधा मिलने की शर्त पर अपनी बैठकें उस स्थान विशेष पर आयोजित करेगा ।

वर्ष के दौरान, आयोग ने विनियामक प्राधिकारियों के अध्यक्ष तथा वरिष्ठ अधिकारियों के साथ बैठकें कीं । आयोग ने ऐसी बैठकों को करना उचित समझा है क्योंकि कई याचिकाएं/शिकायतें यूजीसी, एआईसीटीई, एनसीटीई,एमसीआई, डीसीआई, सीबीएसई, आईसीएसई इत्यादि जैसे विनियामक प्राधिकारियों द्वारा बनाए गए नियम व विनियमनों से संबंधित होती हैं । इन बैठकों में संबद्धता, अनापत्ति प्रमाण-पत्र जारी करने, संबद्धता के लिए अपेक्षित मानदण्ड पूरे करना, निरीक्षण, स्टाफ के लिए मानदण्ड इत्यादि से संबंधित समस्याओं पर विचार-विमर्श शामिल था ।

आयोग द्वारा इस प्रकार की आपसी बातचीत उपयोगी साबित हुई है क्योंकि विनियामक प्राधिकारियों ने कुछ ऐसे नियमों और विनियमनों को, जो संविधान के अनुच्छेद 30 में सुनिश्चित किए गए अधिकारों के अनुरूप नहीं थे, आशोधित/संशोधित करने के लिए कार्रवाई प्रारम्भ की। आयोग ने यह इंगित किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय जो स्वयं में कानून का दर्जा रखते हैं, को विनियामक प्राधिकारियों द्वारा अपने नियमों एवं विनियमनों को आशोधित/संशोधित करते हुए ध्यान में रखना होगा। विनियामक प्राधिकारियों से हुई बैठकों के परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं की समस्याओं से निपटने के लिए विशेष प्रकोष्ठ स्थापित करने अथवा नोडल अधिकारियों को नियुक्त करने की आवश्यकता को भी बेहतर रूप से समझने में मदद मिली है । आयोग का इरादा इस आपसी बातचीत को नियमित रूप से जारी रखने का है ।

अध्याय 4 - वर्ष की मुख्य-मुख्य बातें

वर्ष के दौरान आयोग के लम्बित मामलों को निपटाने को प्राथमिकता दी गई । पिछले वर्ष के दौरान पंजीकृत मामलों को प्राथमिक आधार पर लिया गया और पक्षकारों को तिथियां स्थगित करने के लिए सावधान किया गया । परिणामस्वरुप,पिछले वर्ष से लंबित अधिक मामलों को निपटाना संभव हो पाया ।

आयोग ने विभिन्न पक्षकारों के साथ विचार-विमर्श किया और विभिन्न स्रोतों से प्राप्त फीडबैक एवं आयोग में पंजीकृत मामलों के विश्लेषण के आधार पर, अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं से संबंधित अल्पसंख्यक दर्जे और मान्यता तथा संबद्धता मामलों से जुड़े दिशा-निर्देशों को प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया । आयोग ने पाया कि राज्य सरकारों द्वारा अधिसूचित नियमों और विनियमों में कोई एक समान मानदंड नहीं है । राज्य सरकार के प्राधिकारियों की सहायता करने के लिए आयोग ने भारत के संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं के संबंध में अल्पसंख्यक दर्जा, मान्यता, संबद्धता और संबंधित मामलों को निर्धारित करने के लिए दिशा-निर्देश प्रकाशित किए । इन दिशा निर्देशों को आयोग की वेबसाइट पर प्रदर्शित भी किया गया है ।

इंडोनेशिया गणतंत्र के धार्मिक मामलों की परामर्शी परिषद के माननीय सदस्य श्री क़े एच मारूफ अमीन के नेतृत्व मे इंडोनेशिया के एक प्रतिनिधिमंडल ने दिनांक 10-11-2010 को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग के कार्यालय का दौरा किया । इंडोनेशिया के प्रतिनिधि मंडल और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग के अधिकारियों के बीच बातचीत भारत में अलग-अलग धर्मो की गतिशीलता और अल्पसंख्यक समुदायों के आपसी संबंधों की स्थिति पर केन्द्रित रही । भारत की ओर से न्यायमूर्ति एम एस ए सिद्दिकी, माननीय अध्यक्ष रा अ शै सं आ और सदस्य एवं सचिव रा अ शै सं आ द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया । इंडोनेशिया की ओर से श्री अमीन और प्रतिनिधिमंडल के 6 अन्य सदस्यों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया । अध्यक्ष, रा अ शै सं आ ने अनुच्छेद 30 में यथाउपबंधित संवैधानिक प्रावधानों, जिनमें अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और संचालित करने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय के व्यक्तियों के अधिकारों को प्रत्याभूत किया गया है, का सिंहावलोकन दिया। माननीय अध्यक्ष ने स्पष्ट किया कि भारत सरकार द्वारा यथाअधिसूचित अल्पसंख्यक समुदाय में मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन और पारसी आते है । इंडोनेशिया प्रतिनिधिमंडल को यह अवगत कराया गया कि सरकार ने संघ के विधानमंडल में अधिनियम के अंतर्गत एक अर्ध-न्यायिक निकाय के रुप में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग को तीन भूमिकाएं सौंपी है जो सलाहकारी, निर्णायक और सिफारिशी स्वरूप की हैं । यह बताया गया कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को कतिपय विशेषाधिकार दिए गए हैं, जैसे खुद की शासी निकायों का चयन, खुद का शुल्क ढांचा बनाना, संबंधित राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित मानदंड और पात्रता शर्तो के अधीन शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति इत्यादि, इसके अलावा यह भी सूचित किया गया कि आयोग के पास अल्पसंख्यक संस्थाओं को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान करने के लिए खुद का तंत्र है । आयोग के पास राज्य सरकारों अथवा अन्य प्राधिकरणों के विरूद्ध अपील किए जाने का अधिकार भी है । सलाहकारी भूमिका के अंतर्गत आयोग अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों से संबंधित किसी भी मुद्दे जो आयोग को भेजा जाए, पर केन्द्र अथवा राज्य सरकारों को सलाह दे सकता है, इसके पश्चात् आयोजित किए गए वार्तालाप सत्र के दौरान, इंडोनेशिया की ओर से व्यक्त उनके संदेहों और प्रश्नों का संतोषजनक समाधान करते हुए उत्तर दिया गया ।

निरंतर प्रयासों के बावजूद प्रोग्रामर और डाटा एन्ट्री ऑपरेटर के पदों को संस्वीकृत नहीं कराया जा सका और आयोग अपने सभी कार्य-कलापों को कंप्यूटरीकृत नहीं करा सका । हालांकि, संविदा पर नियुक्त

कर्मचारियों की नियुक्ति के कारण ही पुराने रिकार्डों का कंप्यूट्रीकरण पूरा हो सका। निःसन्देह, सॉफ्टवेयर संबंधी समाधान मैसर्स एन.आई.आई.टी. लिमिटेड द्वारा किया गया है।

वर्ष के दौरान बड़ी संख्या में मामलों की सुनवाई की गई और मामलों के जल्द निपटान सुनिश्चित करने के लिए आयोग की और अधिक बैठकें आयोजित करने का कार्यक्रम बनाया गया । आयोग ने प्रत्येक बैठक में पहले से अधिक मामलों पर भी विचार किया ।

जन प्राधिकरण आयोग के कार्य में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने के लिए नियंत्रणाधीन नागरिकों को सूचना के अधिकार को हासिल कराते हुए आयोग ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत रा.अ.शै.सं.आ. की वेबसाइट पर सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 4 (i) के तहत सभी अनिवार्य सूचनाएं डाल दी है । वर्ष, 2010-11 के दौरान श्री आर रंगनाथ, पूर्व सचिव, रा.अ.शै. सं.आ. ने `जन सूचना अधिकारी` के रुप में कार्य किया और माननीय अध्यक्ष, रा.अ.शै.सं.आ. `इसके अपीलीय प्राधिकारी` थे । रिपोर्टाधीन अवधि के दौरान आयोग में 38 आवेदन और 3 अपीलें प्राप्त हुईं । इन सभी आवेदनों और अपीलों का निपटारा कर दिया गया है ।

अध्याय - 5 दौरे और निरीक्षण

वर्ष, 2010-11 के दौरान आयोग ने विभिन्न स्थानों के दौरे किए, जिनका ब्यौरा निम्नवत है-

क्रम सं	दौरे की तिथियां	निरीक्षण स्थान
1.	2-4-2010 से 3-4-2010	अमरोहा
2.	31-3-2010 से 1-4-2010	कोलकाता
3.	9-4-2010 से 11-4-2010	गुवाहाटी
4.	16-4-2010 से 19-4-2010	कालीकट
5.	15-4-2010 से 18-4-2010	तिरुवनंतपुरम
6.	24-4-2010 से 26-4-2010	सूरत
7.	22-4-2010 से 26-4-2010	कोच्चि-त्रिचूर
8.	30-5-2010 से 31-5-2010	बंगलौर
9.	5-5-2010 से 10-5-2010	कोच्चि
10.	14-6-2010 से 14-6-2010	मुरादाबाद
11.	29-6-2010 से 30-6-2010	जबलपुर
12.	8-7-2010 से 9-7-2010	इलाहाबाद
13.	31-7-2010 से 2-8-2010	चैन्नई
14.	29-7-2010 से 2-8-2010	तिरुवनंतपुरम
15.	17-9-2010 से 20-9-2010	पटना-सीवान
16.	10-10-2010 से 12-10-2010	नांदेड
17.	13-10-2010 से 15-10-2010	पटियाला
18.	31-10-2010 से 1-11-2010	मुंबई
19.	15-11-2010 से 22-11-2010	जबलपुर
20.	14-11-2010	अमरोहा
21.	28-11-2010	मुंबई
22.	27-11-2010 से 29-11-2010	मुंबई
23.	1-12-2010 से 6-12-2010	लखनऊ
24.	18-12-2010 से 19-12-2010	रांची
25.	7-1-2011 से 9-1-2011	मुंबई
26.	27-11-2011 से 28-11-2011	मुंबई
27.	23-1-2011 से 24-1-2011	बीकानेर

28.	28-1-2011 से 3-2-2011	बंगलौर-कोजीकोड-चैन्नई
29.	1-2-2011 से 3-2-2011	चैन्नई
30.	11-2-2011	मेरठ
31.	13-2-2011 से 16-2-2011	लखनऊ
32.	17-2-2011 से 19-2-2011	वाराणसी - आजमगढ
33.	11-3-2011 से 14-3-2011	पटियाला
34.	18-3-2011 से 20-3-2011	विदिशा-भोपाल

अध्यक्ष और सदस्य ने अपनी सुविधानुसार कुछ स्थानों का साथ-साथ और अन्य स्थानों का दौरा अलग-अलग किया । ये दौरे अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श करने के प्रयोजन से किए गए । अल्पसंख्यक समुदाय के साथ सदस्यों की बैठकों से उनके द्वारा झेली जा रहीं समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है और शिकायतों पर चर्चा के लिए मंच मिलता है। इससे आयोग को उनके संवैधानिक अधिकारों के बारे में उन्हें अवगत कराने और साथ ही आयोग की शक्तियों और कार्यों के बारे में परिचित कराने का अवसर मिलता है। जहां कहीं भी संभव हुआ आयोग ने राज्यों के कुछ मुख्यमंत्रियों और शैक्षणिक मामलों से जुड़े सरकारी अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श भी किया । इससे संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों के बारे में राज्य के सरकारी अधिकारियों को सुग्राही बनाने में सहायता मिली है । आयोग ने पाया कि राज्य सरकारों के शिक्षा विभागों में कई अधिकारियों को या तो आयोग के कार्यों और शक्तियों के बारे में अथवा अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के कार्यक्षेत्र अथवा आयाम के बारे में पूरी जानकारी नहीं थी । इन दौरों और विचार-विमर्शों को पारस्परिक तौर पर लाभकारी पाया गया क्योंकि आयोग को विभिन्न स्थानों पर अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा झेली जा रहीं समस्याओं की सीमा और उसकी व्यापकता की प्रत्यक्ष जानकारी का पता लगाने में मदद मिली । इस आपसी सम्पर्क के परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के संभरकों और प्रबंधकों के दृष्टिकोण में विस्तार हुआ और इससे शिक्षा के कार्य-क्षेत्र में राज्य के साथ भागीदारी की भावना का उनमें विकास भी हुआ ।

अर्द्ध-न्यायिक निकाय होने के कारण आयोग को न्यायालय के रूप में कार्य करना होता है और अनेक संबंधित पक्ष याचिकाओं का मसौदा तैयार करने के बारे में जागरूक नहीं थे। दौरों के दौरान अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों के साथ बैठकें की गईं जिससे आयोग के कार्यों को समझने में सहायता मिली तथा साथ ही आयोग के साथ सम्पर्क करने में शामिल प्रक्रिया और औपचारिकताओं के बारे में उन्हें समझाया गया। आयोग ने शैक्षणिक संस्थाओं को अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण पत्र दिए जाने के लिए आवेदन हेतु एक विशिष्ट प्रपत्र बनाया है । अनेक मामलों में, आयोग को पूरा विवरण और समर्थित दस्तावेज दिए बिना पत्र के रूप में याचिकाएं/शिकायतें भेजी जाती हैं । विभिन्न स्थानों पर आपसी संपर्क करने से इन समस्याओं को दूर करने में सहायता मिली है ।

अध्यक्ष महोदय ने 16-7-2010 से 19-7-2010 तक चैन्नई का दौरा किया । वहां, उन्होंने अन्जुमन-ए-हिमायत-ए-इस्लाम के श्रोताओं को संबोधित किया और गुणवत्तापरक शिक्षा की महत्ता और आयोग के कार्यक्षेत्र और उद्देश्य के बारे में उन्हें अवगत कराया । 17-7-2010 को अध्यक्ष महोदय ने श्री के. ए. रहमान, अध्यक्ष, तमिलनाडु, वक्फ बोर्ड के साथ बैठक और चर्चा की, जिन्होंने मुस्लिम समुदाय के सदस्यों को यथासंभव सहायता देने को सहमति दी, जो अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करना चाहते हैं । अध्यक्ष ने मदरसा-ए-आजम का भी दौरा किया और आधुनिक शिक्षा की महत्ता के बारे में लोगों को सम्बोधित

किया । अन्य अधिकारियों के साथ अध्यक्ष न्यू कॉलेज और तमिलनाडू के अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के परिसंघ द्वारा आयोजित कार्यक्रम में शामिल हुए । 18-07-2010 को मुस्लिम और ईसाई समुदाय के सदस्यों की शिरकत में अध्यक्ष महोदय ने `तमिलनाडू की अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिए अधिकार और अवसर` पर आई.एम.ई.सी.सी. द्वारा आयोजित सेमिनार में भाग लिया । अपने सम्बोधन में, अध्यक्ष ने रा.अ.शै.सं.आ. अधिनियम के तहत स्थापित आयोग की भूमिका और कार्यों के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के लिए गुणवत्तापरक शिक्षा और शैक्षणिक अधिकार प्राप्त करने पर बल दिया ।

19-7-2010 को अध्यक्ष न्यायमूर्ति बशीर अहमद सईद महिला कॉलेज, चैन्नई द्वारा आयोजित कार्यक्रम में शामिल हुए । अध्यक्ष ने श्रोताओं को लड़कियों की शिक्षा की महत्ता से अवगत कराया, अध्यक्ष ने बी.एस. अब्दुल रहमान विश्वविद्यालय, चैन्नई में आयोजित संगोष्ठी में भाग भी लिया, जहां उन्होंने भारत जैसे विकासशील देश में ज्ञान अर्थव्यवस्था की महत्ता के बारे में श्रोताओं को अवगत कराया। उन्होंने उस ज्ञान के सर्जन पर बल दिया जो उच्चतर शिक्षा का मौलिक उद्देश्य होना चाहिए और यह मुस्लिम युवाओं को राष्ट्र निर्माण में नेतृत्व भूमिका अपनाने में सुसज्जित करेगा ।

अध्यक्ष ने 18-9-2010 को पटना, बिहार का दौरा किया और शिक्षा अधिनियम के अधिकार पर अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू द्वारा आयोजित संगोष्ठी में भाग लिया । अध्यक्ष ने मुस्लिम अल्पसंख्यक के सदस्यों को आश्वस्त किया कि अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित संवैधानिक प्रत्याभूत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रति उनका डर बेबुनियाद है कि इससे मदरसा शिक्षा खतरे में पड़ जाएगी ।

19-9-2010 को अध्यक्ष ने सीवान में एक सेमिनार का उद्घाटन किया, जहां अपने संबोधन में, अध्यक्ष ने मुस्लिम समुदाय को यह आत्म-विश्लेषण करने का आह्वान किया कि उनके पिछड़ेपन का मुख्य कारण शिक्षा है । अध्यक्ष ने उन्हें शिक्षा के लिए सभी स्तरों पर जाने का आह्वान और दक्षिण भारत के उनके मुस्लिम भाईयों का अनुकरण करने को कहा, जिन्होंने उनकी तुलना में अपनी दशा में बहुत सुधार किया था ।

ड़ॉ शबिस्तान गफ़्फार, अध्यक्ष, कन्या शिक्षा समिति के साथ अध्यक्ष, रा.अ.शै.सं.आ. ने क्रीसेन्ट संस्था समूह मदुरई में आयोजित 13वें वार्षिक इस्लामिक महिला कल्याण सम्मेलन में भाग लिया और उन्हें सम्बोधित किया । अध्यक्ष ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकारों और ऐसी संस्थाओं की स्थापना और प्रबंधन/संचालन के संदर्भ में रा.अ.शै. सं.आ. की भूमिका और कार्यक्षेत्र के बारे में श्रोताओं को अवगत कराया ।

ड़ॉ मोहिन्दर सिंह, माननीय सदस्य को पंजाब विश्वविद्यालय, पटियाला में पंजाबी इतिहास सम्मेलन के 43वें सत्र का उद्घाटन करने के लिए मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था । उन्हें खालसा कॉलेज, पटियाला ने वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किया था, जहां उन्हें `कॉलेज रत्न पुरस्कार` प्रदान किया गया । उन्हें गुरूगोविंद सिंह कॉलेज सोसायटी ने सोसाइटी द्वारा चलाई जा रही शैक्षणिक संस्थाओं के संकाय को सम्बोधित करने के लिए भी आमंत्रित किया गया । उन्होंने नांदेड, महाराष्ट्र का दौरा किया, जहां उन्होंने श्री पी. एस. पसरीचा, महाराष्ट्र पुलिस के पूर्व प्रमुख और अब `तख्त श्री हजूर साहिब` जो सिख समुदाय की पांच धार्मिक-लौकिक सीटों में से एक है, के प्रशासनिक बोर्ड के अध्यक्ष और बाबा नरेन्द्र सिंह, लंगर साहिब गुरद्वारा के प्रमुख से मुलाकात की, जहां सिख समुदाय के शैक्षिक रूप से पिछड़े सदस्यों के प्रतिनिधि, विशेष रूप से बंजारा और सिकलीगढ़ सिख समुदाय के प्रतिनिधि शैक्षणिक पिछड़ेपन पर और इनमें सुधार करने के उपायों पर चर्चा करने के लिए उपस्थित थे । इसमें यह चर्चा की गई कि इन समुदायों और दखनी सिखों की शिक्षा का कम स्तर होने के कारण इनके लिए नियमित डिग्री कॉलेज के

बजाए व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए पॉलिटेक्निक कॉलेज खोले जाए । वे चैन्नई और मुंबई के दौरे पर माननीय अध्यक्ष के साथ भी गए ।

डॉ सिरियक थॉमस ने अपनी सरकारी हैसियत में विभिन्न विषयों पर प्रमुख व्यक्तियों के साथ आपसी विचार-विमर्श और बातचीत के माध्यम से अल्पसंख्यक शिक्षा क्षेत्र में सुधार करने के लिए प्रेरक प्रयास किए हैं। उन्होंने `अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकारों` पर गांधीवादी अध्ययनों के लिए पूरे महात्मा गांधी विश्वविद्यालय केन्द्र के संकाय और छात्रों को सम्बोधित किया । जेवियर बोर्ड द्वारा आयोजित क्रिश्चियन के.मा.शि.बो. स्कूलों के प्रधानाचार्यो के सम्मेलन में वे मुख्य वक्ता थे, जिसका उद्घाटन माननीय मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री ड़ॉ पुरनदेश्वरी ने किया, जहां उन्होंने उच्चतर शिक्षा `गुणवत्ता और उत्कृष्टता` पर भाषण दिया । उन्होंने केरल कैथोलिक छात्र लीग सम्मेलन में `भारतीय धर्मनिरपेक्ष के ऊंचे मूल्य` पर मुख्य सम्बोधन भी किया। वे राज्य में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं की समस्याओं की चर्चा करने के लिए इंटर-चर्चा काउंसिल फॉर एजुकेशन, केरल के अध्यक्ष आर्चबिशप मार जोसफ पॉवतिल और विभिन्न अवसरों पर स्व-वित्त पोषण शैक्षणिक क्षेत्र में अन्य राज्य सरकार के अधिकारियों और चर्च के नेताओं से भी मिले । वे सैंट टेरेसा कॉलेज फॉर वूमेन, इरनाकुलम द्वारा आयोजित यू.जी.सी. राष्ट्रीय संगोष्ठी स्व-वित्त पोषण कॉलेज, इरनाकुलम अखिल भारतीय सम्मेलन और चंगनाचारी, कोट्टयम में आयोजित कैथोलिक टीचर्स गिल्ड के राज्य सम्मेलन में भी प्रमुख वक्ता थे । वे कन्या शिक्षा समिति द्वारा आयोजित चैन्नई में कन्याओं की शिक्षा पर राष्ट्रीय सेमिनार में माननीय अध्यक्ष के साथ भी शामिल हुए ।

डॉ शबिस्तान गफ्फार, अध्यक्ष, कन्या शिक्षा समिति ने `कन्या शिक्षा की महत्ता` पर राष्ट्रीय सेमिनार में भाग लेने के लिए 16 से 21 नवम्बर, 2010 तक जबलपुर का दौरा किया । शिक्षा के क्षेत्र में अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा झेली जा रहीं विभिन्न समस्याओं यथा अल्पसंख्यकों के उत्थान के लिए विभिन्न केन्दीय और राज्य सरकारों की शिक्षा संबंधी कल्याणकारी योजनाओं का न पहुंचना, उच्चतर शिक्षा के लिए अल्पसंख्यक लड़कियों के नामांकन का कम स्तर, व्यावसायिक और तकनीकी संस्थाओं का अभाव, अल्पसंख्यक लड़कियों के बीच में स्कूल छोड़ने, बाल श्रमिकों आदि की चर्चा की गई । उन्होंने गोहलपुर, जबलपुर स्थित प्रियदर्शिनी अंजुमन इस्लामिया कन्या कॉलेज और डब्ल्यू एस कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय गोहलपुर, जबलपुर का दौरा किया और अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के संबंध में प्रबंधकों, प्रधानाचार्यों, शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ तथा छात्रों के साथ विचार-विमर्श सत्र आयोजित किया । सुश्री गफ्फार जहांगीराबाद शैक्षणिक संस्था ट्रस्ट ग्रुप, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश की सम्माननीय अतिथि थीं और उन्होंने `भारत में अल्पसंख्यक शिक्षा` पर सेमिनार में कन्या शिक्षा की महत्ता पर श्रोताओं को सम्बोधित किया । इस सेमिनार में अल्पसंख्यक समुदायों जैसे मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन इत्यादि के विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं के प्रबंधकों/संबद्ध पक्षों ने भाग लिया । सचिव, रा.अ.शै.सं.आ. ने जुलाई, 2010 में त्रिवेन्दम का दौरा किया और अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा प्रबंधित और संचालित की जा रहीं संस्थाओं के प्रबंधकों, प्रधानाचार्यों और संकाय सदस्यों को सम्बोधित किया और उन्हें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत संरक्षण और रा.अ.शै.सं.आ. की भूमिका और उद्देश्य के बारे में अवगत कराया ।

अन्य स्थानों पर आयोग ने यह सुनिश्चित किया है कि अल्पसंख्यक समुदाय के यथासंभव अधिक से अधिक सदस्यों के साथ आपसी विचार-विमर्श किया जाए । इस प्रयोजन के लिए बड़े-बड़े आयोजन करने के स्थान पर छोटे-छोटे समूहों के साथ बैठकें की गई । इन छोटे समूहों के साथ आपसी विचार-विमर्श करने से सूचना का बेहतर ढंग से आदान-प्रदान सुनिश्चित हुआ । इन बैठकों में इस बात पर बल दिया गया कि किसी व्यक्ति के चरित्र में शिक्षा का स्थान उसकी रीढ़ की हड्डी के समकक्ष होना चाहिए जिससे

की उस व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो पाए । शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण के लिए होना चाहिए और उसमें न्याय, स्वतंत्रता और बंधुत्व के संवैधानिक मूल्य का समावेश होना चाहिए । सहभागियों के साथ आपसी विचार-विमर्श के दौरान, अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के बारे में स्पष्टीकरण दिए गए । संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत प्रतिष्ठापित अधिकारों का ब्योरा देते हुए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा उद्घोषित विभिन्न निर्णयों का भी संदर्भ लिया गया । अधिकांश स्थानों पर जिन मुद्दों की चर्चा की गई उनमें किसी शैक्षणिक संस्था की स्थापना में अल्पसंख्यकों के अधिकारों, प्रबंधन समिति का गठन, शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति का अधिकार, किसी संस्था का प्रमुख नियुक्त करने का अधिकार, अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र प्रदान करना, अनापत्ति प्रमाणपत्र देना, एक तर्कसंगत शुल्क ढांचा स्थापित करने का अधिकार, शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अधिकार जैसे मूद्दे शामिल थे । अल्पसंख्यक समुदायों के समक्ष जो मुख्य समस्याएं आ रही थी उनमें विशेषकर मुस्लिम समुदाय के बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधाएं न होना, स्कूलों को मान्यता मिलने में अनावश्यक विलंब, अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र जारी न करना, अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र देने के लिए आवेदनों पर विचार करने में अनावश्यक विलंब, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण नीति लागू करने का आग्रह, उर्दू पढ़ाने वाले स्कूलों का अभाव, उर्दू शिक्षकों का अभाव, शिक्षकों के वेतनमान में विसंगति, पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धता न होना इत्यादि शामिल थे ।

अनेक स्थानों पर एक अन्य तथ्य जो आयोग के ध्यान में लाया गया वह यह था कि बालिकाओं विशेषकर मुस्लिम समुदाय की बालिकाओं के लिए शिक्षा की सुविधाओं का अभाव है । किसी भी राज्य की निर्मित नीति में बालिकाओं की शिक्षा का महत्व एक अन्तर्निहित भाग होना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आम जनता तक और विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय तक शिक्षा की पहुंच हो सके । मुस्लिम समुदाय में बालिकाओं की शिक्षा में प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए जहां कि शिक्षा के लाभों को उपलब्ध कराकर निर्धनता, कम विकास और सामाजिक अक्षमता को दूर किया जाना होगा । इस समुदाय को यह सुनिश्चित करना होगा कि बालिका छात्राओं के बीच में ही स्कूल छोड़ने की दर विशेषकर मुस्लिम समुदाय में इस प्रवृत्ति को कम किया जा सके । अभिभावकों को इस बात के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अपनी लड़कियों को स्कूलों में भेजें । सरकार को शिक्षा के माध्यम से मुस्लिम महिलाओं के सशक्तिकरण की नवीन योजनाएं तैयार करनी चाहिए । बालिकाओं को गुणवत्तापरक शिक्षा देने के लिए क्रांतिकारी कदम और दीर्घावधि के उपाय किए जाने चाहिए ताकि वे देश के बौद्धिक और साथ ही साथ तकनीकी वर्ग के साथ मिलकर जिम्मेदारियों का बोझ उठा सकें । उन्हें सृजनात्मक नागरिकों के चरित्र में मूलभूत गुणों के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे सामाजिक जीवन की समस्याओं में सक्रिय रूप से भागीदारी कर सकें और अपनी इच्छानुसार उन दायित्वों को मिलकर उठा सकें ।

कुछ स्थानों पर यह पाया गया कि अवसंरचनात्मक और अनुदेशनात्मक सुविधाओं की दशा अच्छी नहीं थी । आयोग में इस बात पर बल दिया गया कि समुचित ढ़ांचे का निर्माण करने को महत्व दिया जाना चाहिए जिससे न केवल प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा किया जा सके बल्कि छात्रों को भी आकर्षित किया जा सके । शिक्षा के क्षेत्र में निधियों का निवेश समाज की सेवा के प्रयोजन से होना चाहिए और इसमें व्यावसायिक नजरिए को पूरी तरह से नजरअंदाज किया जाना चाहिए । जहां तक अवसंरचनात्मक और अनुदेशनात्मक सुविधाओं का संबंध है, आयोग इस संबंध में प्राधिकारियों द्वारा विहित मूलभूत मानदंडों में कोई छूट नहीं देगा और किसी भी तरह की 'शिक्षा की दुकानों' का समर्थन नही करेगा। आयोग लोकोपकारी व्यक्ति विशेषों का आह्वान करता है कि वे एक स्वस्थ और समृद्ध समाज के सृजन की दृष्टि से एक बेहतर शैक्षिक सुविधाएं मुहैया कराने में अपना योगदान दें ।

उच्चतर शिक्षा के मामले में, यह अनिवार्य है कि हमें समुचित शैक्षिक संस्थाओं का निर्माण करना होगा, जो उत्तरोत्तर रुप में छात्रों के समुदाय को एक ज्ञानवर्धक समाज में बदलने का काम करेगी। हमारे विश्वविद्यालयों को छात्रवृति का प्रमुख केन्द्र होना चाहिए और इन्हें नए ज्ञान और प्रौद्योगिकी का निर्माण करने के लिए एक आधार बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए । उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान की स्थिति में सुधार करने की तत्काल आवश्यकता है । प्रत्येक व्यक्ति को उत्कृष्ट वैश्विक विश्वविद्यालयों की संकल्पना हेतु प्रयास करने चाहिएं और यह कोशिश करनी चाहिए कि उच्चतर शिक्षा में अंतरराष्ट्रीयवाद को बढ़ावा देने के लिए वर्तमान शैक्षिक संस्थाएं काम कर सकें । इस पहल से संवृद्धि को बढ़ावा मिलने और शिक्षा में विकास के नए अवसर पैदा होंगे । निजी क्षेत्र को वैश्विक उत्कृष्टता वाली शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने के लिए बढ़ावा देना चाहिए ।

अध्याय 6 वर्ष के दौरान प्राप्त हुई याचिकाओं और शिकायतों का विश्लेषण

आयोग कलैंडर वर्षवार मामलों को दर्ज करता है । वर्ष 2010 के दौरान 2187 मामले पंजीकृत किए गए जो पिछले वर्ष में पंजीकृत 1883 मामलों से अधिक थे । हालांकि आयोग ने अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण-पत्र दिए जाने के अनुरोध से संबंधित याचिका/आवेदन के लिए अपेक्षित विवरणों को दर्शाने वाला एक विशिष्ट प्रपत्र निर्धारित किया है, फिर भी,यह पाया गया कि अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण-पत्र दिये जाने के लिए अनेक याचिकाएं/आवेदन निर्धारित प्रपत्र में नहीं थे। ऐसे याचिकाकर्त्ताओं को प्रतियों की अपेक्षित संख्या के साथ निर्धारित प्रारुप में अपने आवेदन भेजने के लिए कहा गया । कुछ याचिकाएं समुचित रुप से तैयार नहीं की गई थीं और कुछ याचिकाएं ऐसी थीं जिसमें संबंधित मुद्दों का पूरा विवरण नहीं दिया गया था । यह प्रवृति देखी गई है कि सामान्य मुद्दों को लेकर एक पत्र के रुप में याचिकाएं भेज दी जाती है, जिनमें कोई विशिष्ट राहत नहीं मांगी गई होती थी। इस प्रकार के मामलों में आयोग ने याचिकाकर्ताओं को सलाह दी थी कि वे समर्थित दस्तावेजों के साथ संबंधित मुद्दों का विवरण देते हुए संशोधित/पुनरावृत याचिकाएं प्रस्तुत करें और उस विशिष्ट राहत का भी उल्लेख करें जो उन्हें चाहिए ।

इस अवधि के दौरान आयोग द्वारा दर्ज मामलों में व्यापक विषय शामिल थे, जैसे राज्य सरकारों द्वारा अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी न करना, अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी करने में विलंब, अल्पसंख्यक दर्जा जारी करने में इंकार व विलंब, अल्पसंख्यकों द्वारा नए कॉलेज/स्कूल/संस्थाएं खोलने के लिए अनुमति से इंकार, अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं में अतिरिक्त पाठ्यक्रम की अनुमति से इंकार, सहायतानुदान से इंकार/ विलंब, वित्तीय सहायता देने से इंकार, अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होने के बावजूद भी अध्यापकों के नए पदों के सृजन की अनुमति से इंकार, अध्यापकों की नियुक्ति के अनुमोदन से इंकार किया जाना, सरकारी स्कूल अध्यापकों की तुलना में अल्पसंख्यक स्कूल अध्यापकों के वेतनमानों में असमानता, कंप्यूटर, पुस्तकालय, प्रयोगशाला इत्यादि जैसी अध्यापन सहायता/अन्य सुविधाओं को सरकारी संस्थाओं के समतुल्य अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं को देने से इंकार, उर्दू-स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए सभी विषयों पर उर्दू में पुस्तकों की अनुपलब्धता, उर्दू जानने वाले शिक्षकों की नियुक्ति न करना, अल्पसंख्यक स्कूल अध्यापकों के समतुल्य मदरसा शिक्षकों को भुगतान करना, मदरसा कर्मचारियों को अपर्याप्त भुगतान करना, मदरसों को सहायता अनुदान न देना, अल्पसंख्यक स्कूलों के अध्यापकों और गैर-अध्यापन स्टाफ को सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान न करना, अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं, विशेषकर जो वंचित ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं, में सर्व शिक्षा अभियान सुविधाओं का विस्तार इत्यादि ।

कुछ याचिकाएं रा.अ.शै.सं.आ. अधिनियम में विद्यमान आयोग की शक्तियों के संज्ञान से बाहर थीं । वे मामले, जो उस राज्य सरकार प्राधिकारियों से संबंधित थे, उन्हें याचिकाकर्ता को सूचित करते हुए विभाग के संबंधित सचिव के पास समुचित कार्रवाई के लिए भेज दिया गया । कुछ याचिकाएं/आवेदन मौलाना आजाद प्रतिष्ठान, केन्द्रीय वक्फ बोर्ड आदि से संबंधित थीं और याचिकाओं को कार्रवाई के लिए उन्हें भेज दिया गया । चूंकि अनुच्छेद 30 में भाषाई अल्पसंख्यक शामिल हैं, आयोग ने वर्ष के दौरान भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित भी कुछ याचिकाएं प्राप्त कीं जो अल्पसंख्यक आयोग से संपर्क करने के निर्देशों सहित याचिकाकर्ता को लौटा दी गईं ।

वर्ष के दौरान आयोग ने अनेक आदेश पारित किए । कुछ आदेश पिछले वर्षों में दर्ज मामलों से संबंधित थे । इस रिपोर्ट में आयोग द्वारा 1.4.2010 से 31.3.2011 तक की अवधि से संबंधित पारित आदेश शामिल किए गए हैं । इस रिपोर्ट में सभी पारित आदेशों को सम्मिलित अथवा उनका उल्लेख नहीं किया गया है । स्थान की कमी के कारण इस अध्याय और अगले अध्याय में केवल कुछ आदेशों का ही उल्लेख

किया गया है । आयोग द्वारा पारित सभी आदेशों का ब्योरा आयोग की वेबसाइट में शामिल किया जा रहा है ।

कुछ ऐसे मामले थे जिनमें प्रतिवादी पर्याप्त अवसर देने के बावजूद भी उत्तर प्रस्तुत करने में असफल रहे । यह महत्वपूर्ण है कि प्रतिवादी अपने उत्तर निर्धारित तारीख के अन्दर दे दें । उत्तर न देने के परिणामस्वरुप उनका अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का अवसर खत्म हो जाता हैं और आयोग मामले का एकतरफा निर्णय देने के लिए विवश हो जाता है । आयोग ने, नीति के तौर पर, यह स्पष्ट किया है कि प्रतिवादियों की तरफ से उत्तर भेजने में अनावश्यक विलम्ब को स्वीकार नहीं किया जाएगा । 2 या 3 नोटिस भेजने के बावजूद भी, उत्तर न भेजने में प्रतिवादियों की असफलता का यह भी अर्थ होता है कि वे याचिकाओं की विषयवस्तु से इंकार नहीं कर रहे हैं और वस्तुतः किए गए दावों का खंडन नहीं करते । यदि याचिका में किए गए प्रकथन का खंडन नहीं किया जाता है तो आयोग याचिका में किए गए दावों पर कार्रवाई करने के लिए बाध्य होता है ।

आयोग द्वारा पारित कुछ आदेशों का सार नीचे और अगले अध्याय में दिया गया है

2009 का मामला सं 1506

अल्पसंख्यक संस्था स्थापित करने के लिए राज्य द्वारा अनापत्ति प्रमाण-पत्र देने हेतु याचिका।

याचिकाकर्ता — एसेम्बली ऑफ एंजेल्स माध्यमिक स्कूल, बंगला नं 80, मिडिल रोड, बेरेकमोर, कोलकाता, पश्चिम बंगाल- 700120

प्रतिवादी — स्कूल शिक्षा के उप-निदेशक (एंगलो-इंडियन स्कूल) पश्चिम बंगाल सरकार, 7वां तल, विकास भवन, साल्ट लेक, कोलकाता-91

इस याचिका से याचिकाकर्ता, जो राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षिक अधिनियम आयोग (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 2 (च) के अर्थ में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है, ने इस प्रभाव से अधिनियम के अनुच्छेद 10 की उप-धारा (3) के अंतर्गत घोषणा की मांग की है कि भारतीय प्रमाण-पत्र परीक्षा स्कूल (संक्षेप में परिषद) के लिए परिषद की उसकी स्थायी संबद्धता देने हेतु राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने अनापत्ति प्रमाण-पत्र दे दिया गया समझा जाए । यह अभिकथित है कि अनंतिम अनापत्ति प्रमाण-पत्र दिए जाने के अनुसरण में, याचिकाकर्ता स्कूल ने परिषद से अस्थायी सम्बद्धता प्राप्त की । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता ने 15-5-2009 को अनापत्ति प्रमाण-पत्र दिए जाने के लिए राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को आवेदन किया था, किन्तु राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने उक्त आवेदन की प्राप्ति से 90 दिनों की अवधि में कोई भी आदेश पारित नहीं किया था और इस प्रकार यह माना जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के अनुसार याचिकाकर्ता को अनापत्ति प्रमाण-पत्र दे दिया था ।

प्रतिवादी ने इस आधार पर याचिका का विरोध किया कि स्कूल के प्राधिकारियों से सभी संगत दस्तावेजों के साथ 1-12-2009 को सुनवाई पर उपस्थित होने के लिए अनुरोध किया गया था, किन्तु वे उक्त तिथि को सुनवाई में उपस्थित नहीं हुए । यह भी अभिकथित है कि स्कूल शिक्षा निदेशक (एंगलो-इंडियन स्कूल), पश्चिम बंगाल अपनी सिफारिश सचिव, स्कूल शिक्षा विभाग को प्रस्तुत करता है, जो अनापत्ति प्रमाण-पत्र जारी करने वाला सक्षम प्राधिकारी है ।

याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर में यह अभिकथित है कि 1-12-2009 को स्कूल प्राधिकारियों के लिए सुनवाई में उपस्थित होने के लिए उप-निदेशक, शिक्षा का पत्र याचिकाकर्ता को 16-12-2009 को

प्राप्त हुआ था, चूंकि यह 15-12-2009 को डाक द्वारा भेजा गया था। याचिकाकर्ता को सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि से पूर्व अर्थात् 1-12-2009 को कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था इसलिए याचिकाकर्ता उक्त तिथि को उपस्थित नहीं हो सका ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों के आधार पर, जो बिन्दु विचारार्थ उठता है वह यह कि क्या याचिकाकर्ता स्कूल अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) में प्रावधानों को लागू कराने का हकदार है? अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) और (4) के प्रावधानों को पुनः प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, जो निम्नवत हैं

"10 अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था स्थापित करने का अधिकार -

(3) जहां अनापत्ति प्रमाण-पत्र दिए जाने के लिए उप-धारा (1) के अंतर्गत आवेदन प्राप्ति के 90 दिनों के भीतर हो,

(क) सक्षम प्राधिकारी इस प्रकार के प्रमाण पत्र नहीं देता, अथवा

(ख) जहां एक आवेदन को निरस्त किया गया है और वह आवेदन ऐसे प्रमाण पत्र के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति को सूचना भेजी गई है, यह माना जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी ने आवेदक को अनापत्ति प्रमाण-पत्र दे दिया है ।

(4) अनापत्ति प्रमाण-पत्र दिए जाने पर जहां सक्षम प्राधिकारी ने आवेदक को अनापत्ति प्रमाण पत्र देना स्वीकार किया है, इसलिए लागू समयबद्ध किसी भी कानून के अंतर्गत अथवा निर्धारित नियमों और विनियमों जैसा भी मामला हो, के अनुसार अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की स्थापना को शुरु करने और चलाने के लिए हकदार होगा ।"

यह विवाद से परे है कि याचिकाकर्ता स्कूल मामला सं 296/2007 में इस आयोग द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र द्वारा अधिनियम की धारा 2 (छ) के अर्थ में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है। यह भी निर्विवाद है कि राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने परिषद को उसकी संबद्धता के संबंध में याचिकाकर्ता स्कूल को अनंतिम अनापत्ति प्रमाणपत्र दिया था । मामले की इस दृष्टि से सुरक्षित रुप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता स्कूल को संगत नियमों के अनुसार सभी ढांचागत और अनुदेशात्मक सुविधाओं की उपलब्धता के आधार पर अनंतिम अनापत्ति प्रमाणपत्र दिया गया था । यह भी स्वीकार्य स्थिति है कि 15-5-2009 को याचिकाकर्ता ने स्थायी अनापत्ति प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को आवेदन किया था और रिकॉर्ड पर दिखाने अथवा सुझाव के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है कि राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने इसके प्राप्त होने की तिथि से 90 दिनों की अवधि में उक्त आवेदन (जो कार्यालय में 15-5-2010 को प्राप्त हुआ था) पर कोई भी आदेश पारित किया हो । रिकॉर्ड से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि अर्थात् 1-12-2009 से पूर्व कोई नोटिस प्राप्त नहीं किया । उप निदेशक, शिक्षा से याचिकाकर्ता को सर्वप्रथम सूचना 16-12-2009 को प्राप्त हुई जिसमें याचिकाकर्ता को 1-12-2009 को सुनवाई के लिए उपस्थित होने को कहा गया था । यह पत्र 15-12-2009 अर्थात् सुनवाई हेतु निर्धारित तिथि की समाप्ति के काफी बाद भेजा गया था । इस प्रकार से तथ्य यही रहता है कि सक्षम प्राधिकारी ने आवेदन प्राप्ति की तिथि से 90 दिनों के भीतर दिनांक 15-5-2009 के याचिकाकर्ता के आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया था। मामले के इस दृष्टिकोण से याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के अनुसार इस प्रभाव की घोषणा का हकदार है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को मांगा गया स्थायी अनापत्ति प्रमाणपत्र दे दिया गया समझा गया है ।

उपरोक्त पर चर्चा किए गए कारणों से अधिनियम की धारा-10 की उप-धारा (3) के अंतर्गत एतद्वारा यह घोषणा की जाती है कि राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए अनापत्ति प्रमाणपत्र को दे दिया गया समझा गया है । उक्त घोषणा का प्रमाण पत्र तद्नुसार जारी किया जाए । याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) के अनुसार उक्त प्रमाणपत्र के आधार पर स्थायी सम्बद्धता दिए जाने के लिए परिषद में आवेदन कर सकता है ।

2008 का मामला सं 1376

अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा कॉलेज की स्थापना के लिए अनुमति दिए जाने हेतु निर्देश देने की याचिका

याचिकाकर्ता : आधुनिक शिक्षण प्रसारक मंडल अमोदी कम्पाइड जूना बाजार, औरंगाबाद- 431001 (महाराष्ट्र)

प्रतिवादी :
1. मुख्य सचिव, महाराष्ट्र सरकार, कमरा नं 518, पांचवां तल, मंत्रालय, मुंबई-32 (महाराष्ट्र)
2. सचिव स्कूल शिक्षा एवं खेल विभाग, महाराष्ट्र सरकार, चौथा तल, कमरा नं 424, मंत्रालय, मुंबई-32 (महाराष्ट्र)
3. शिक्षा अधिकारी, हाई स्कूल विभाग, विडनील परिषद, शिवाजी पुतला के पास, शिवाजी चौक, बीड-431122 (महाराष्ट्र)

इस याचिका द्वारा आधुनिक शिक्षण प्रसारक मंडल, औरंगाबाद, महाराष्ट्र के अध्यक्ष, जिन्हें महाराष्ट्र सरकार के दिनांक 17-7-2008 के आदेश के तहत धार्मिक (मुस्लिम) अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था द्वारा गठित सोसायटी के रुप में प्रमाणित किया गया है, ने उपली तरक्की बडवानी, जिला बीड, महाराष्ट्र में कनिष्ठ कॉलेज की स्थापना हेतु अनुमति दिए जाने के लिए महाराष्ट्र सरकार को निर्देश देने की मांग की है । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता सोसायटी के पास प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज की स्थापना के लिए सभी ढांचागत और अनुदेशात्मक सुविधाएं हैं और सरकार द्वारा निर्धारित 1 लाख रु की आवश्यकता के प्रति 3,81,000/- रु का बैंक अधिशेष है । यह अभिकथित है कि सोसायटी के पास अपनी कुल 22,500 वर्ग फीट का निर्मित क्षेत्र और 43, 578 वर्ग फीट की भूमि क्षेत्र वाली अपनी भूमि और भवन है । इस भूमि में खेल का मैदान शामिल है और भवन में कम्प्यूटर कक्ष, विज्ञान प्रयोगशाला, पुस्तकालय, प्रसाधन, बिजली इत्यादि की सुविधा है । राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई अनुमति को इस एकल आधार पर देने से मना कर दिया कि जिला और राज्य स्तरीय समिति ने प्रस्ताव की सिफारिश नहीं की थी । याचिकाकर्ता के अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई अनुमति न दिए जाने में राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

प्रतिवादी शिक्षा अधिकारी, जिला परिषद, बीड ने इस आधार पर याचिका का विरोध किया है कि राज्य स्तरीय समिति ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव की सिफारिश नहीं की थी जिसके परिणामस्वरुप ही राज्य सरकार ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था । यह भी अभिकथित है कि क्षेत्र में शैक्षिक सुविधाएं मौजूद हैं ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को देखते हुए विचारार्थ मुद्दा यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा मांगी गई अनुमति न दिए जाने में राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ?

केरल शिक्षा विधेयक, 1957 (एआई आर 1958 एस सी 959) के साथ प्रारंभ करते हुए तथा पी ए इनामदार और अन्य बनाम् महाराष्ट्र राज्य तथा अन्य (2005) 6 एससी सी 537 द्वारा पराकाष्ठा तक पहुँचते हुए उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों की एक लंबी श्रृंखला के आधार पर मौजूदा रुप में विधि का निर्धारण किया है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) पर आधारित निर्णय ने विधि के सम्पूर्ण ढांचे को केरल शिक्षा विधेयक मामले में सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को ''उनकी पसन्द'' की शैक्षणिक संस्था की स्थापना तथा प्रशासन का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 30(1) का मूलाधार अल्पसंख्यकों को उनकी पसन्द की शैक्षणिक संस्था के संचालन के लिए संरक्षण प्रदान करना है। इन अधिकारों को उनके उल्लंघन के विरूद्ध प्रतिबंध द्वारा संरक्षित किया गया है तथा इन्हें प्रवर्तन के वचन द्वारा समर्थन दिया गया है । यह प्रतिबंध अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट है, जो कि संविधान के अध्याय III के अधीन प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों में से किसी को कम या सीमित करने के लिए, किसी विधि या नियम या विनियम को बनाने से राज्य को रोकता है तथा इससे असंगत पाए गए किसी विधि,नियम या विनियम को वीटो करने की धमकी देता है ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1974 एस सी 1389 के मामले में उच्चतम न्यायालय के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय 'राष्ट्र के विवेक' को है तथा धार्मिक के अलावा भाषाई अल्पसंख्यकों के बच्चों को देश का संपूर्ण पुरूष या महिला बनाने के लिए उन्हें सर्वोतम शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उन्हें अपनी पंसद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना तथा प्रशासन में रोका नहीं गया है । देश की अखंडता और एकता को बनाए रखने तथा मजबूत करने के लिए अनुच्छेद 30 के अधीन अल्पसंख्यकों को यह संरक्षण प्रदान किया गया है । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का दायरा, हमारे देश के बालकों और बालिकाओं में समान्यता के विकास के लिए अभीष्ट है । यह शिक्षा के माध्यम के द्वारा स्वाधीनता, समानता तथा बन्धुत्व का वास्तविक अभिप्राय है । यदि धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को, उनकी पसंद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना और संचालन के लिए अनुच्छेद 30 के अधीन संरक्षण नहीं दिया जाता है तो वे स्वयं को अलग-अलग और पृथक महसूस करेंगे । सामान्य धर्म-निरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।''

आर ईः केरल शिक्षा विधेयक(ऊपर) के मामले में एस.आर.दास. सी.जे. ने निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

> ''संविधान के अनुच्छेद 30(1) का सच्चा अर्थ और विवक्षा समझने की कुंजी 'अपनी पसंद' के शब्दों में निहित है । यह कहा गया है कि प्रभावी शब्द 'पसंद' है और इस अनुच्छेद की अंतर्वस्तु उतनी ही व्यापक है जितनी कि किसी अल्पसंख्यक समुदाय विशेष की पसंद इसे बना सके ।''

सेंट स्टीफन्स कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय(1992)1 एससीसी558 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि 'अपनी पसंद के' शब्द, अल्पसंख्यकों के लिए, जो भी शैक्षिक संस्थाएं वे स्थापित करना चाहें उनके स्वरुप का चयन करने के व्यापक विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के लिए संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं ताकि सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान की जा सके या दोनों प्रयोजनों को पूरा किया जा सके ।''

इस परिस्थिति में, पी ए ईनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धत करना उपयोगी होगा :-

> ''..... अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की इच्छाओं को पूरा करने से है कि उनके बच्चे समुचित ढंग से पढ़ लिख कर उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें तथा ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों के साथ बाहरी दुनिया में जाएं जो उन्हें लोक सेवा में प्रवेश दिलाने, सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च अनुदेश देने वाली शैक्षणिक संस्थाओं के योग्य बनाए । अतः अल्पसंख्यकों के हित में अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अपेक्षित दो उद्देश्य इस प्रकार है : (i) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे अपने धर्म तथा भाषा का संरक्षण कर सके, तथा (ii) इन अल्पसंख्यक के बच्चों को संपूर्ण अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करना । जब तक संस्था उपर्युक्त दो उद्देश्यों को प्राप्त कर और प्राप्त करते हुए अपना अल्पसंख्यक स्वरूप बनाए रखती है तब तक संस्था अल्पसंख्यक संस्था ही बनी रहेगी।''

इस प्रकार, ''उनकी पसन्द की'' शिक्षण संस्थाओं की स्थापना के अधिकार का अर्थ ऐसी वास्तविक संस्थाओं की स्थापना का अधिकार है जो कि उनके समुदाय तथा विद्यार्थियों जो अपनी शैक्षणिक संस्थाओं का सहारा लेते हैं, की आवश्यकताओं को प्रभावकारी तरीके से पूरा करेगी (ए आई आर 1958 एस सी 956 देखें) । इस समय परिस्थिति ऐसी है कि एक शैक्षणिक संस्था मान्यता के बिना संभवतः विद्यमान रहने और प्रभावकारी तरीके से कार्य करने की उम्मीद नहीं कर सकती, न ही यह विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्धता के बिना डिग्रियां प्रदान कर सकती है । हालांकि, अल्पसंख्यक, अथवा भाषा और संस्कृति के संरक्षण के लिए एक अनुकूल वातावरण में अपने बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन करते हैं, तथापि वह उनका एकमात्र लक्ष्य नहीं है । वे यह भी आकांक्षा करते है कि उनके विद्यार्थी जीवन में उपयोगी करियर के लिए अच्छी तरह से तैयार हों । ''

यहां यह उल्लेख करने की आवश्यकता है कि कनिष्ठ कॉलेज की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता का प्रस्ताव राज्य सरकार द्वारा निर्धारित ढांचागत और अनुदेशात्मक सुविधाओं की उपलब्धता न होने के आधार पर अस्वीकार नहीं किया गया था किन्तु इसे क्षेत्र में शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धता होने के एकमात्र आधार पर अस्वीकार किया गया था । याचिकाकर्ता ने यह बताया है कि प्रस्तावित संस्था से 5 किलोमीटर के दायरे में कोई कनिष्ठ कॉलेज नहीं है और इसलिए कोई अस्वाथ्यकारी प्रतिस्पर्धा नहीं होगी । उन्होंने यह भी बताया है कि ऐसे अन्य हाई स्कूल हैं जो प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज से 6-7 किलोमीटर की दूरी पर हैं । 10वीं कक्षा में दूरी के साथ-साथ स्कूलों का विवरण और उनमें छात्रों की संख्या निम्नवत है :

क्रम सं	**स्कूल का नाम**	**प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज से दूरी**	**10 वीं कक्षा में छात्रों की संख्या**
1.	उपली हाई स्कूल, उपली	00 कि. मी	95
2.	राजासाहेब विद्यालय,कुप्पा	06 कि. मी	55
3.	क्रांतिसिहा नाना पाटिल एम विद्यालय, करी	07 कि. मी	50
4.	न्यू हाई स्कूल, अहबेवदगांव	06 कि. मी	47
कुल			**247**

कनिष्ठ कॉलेज के प्रभाग को शुरु करने के लिए, याचिकाकर्ता को प्रति संकाय अधिकतम 30 छात्रों की आवश्यकता है और तीन संकायों के लिए उन्हें अधिकतम 90 छात्रों की आवश्यकता है । चूंकि नए कनिष्ठ कालेज के दाखिले के लिए पहले ही 247 छात्र उपलब्ध हैं इसलिए प्रस्तावित कालेज की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई अनुमति पूर्णतः न्यायोचित है । यह उल्लेख करना भी संगत है कि याचिकाकर्ता के अनुसार 10 किलोमीटर के दायरे में कोई अन्य कनिष्ठ कॉलेज नहीं है और सबसे नजदीक कनिष्ठ कालेज सरस्वती कनिष्ठ कॉलेज, तेलगांव है जो प्रस्तावित कॉलेज से 13 किलोमीटर की दूरी पर है । ग्राम विकास शिक्षण प्रसारक मंडल, सोनडोली बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य 2004 (4) बॉम सी आर 379 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों द्वारा शैक्षणिक संस्था स्थापित करने के लिए अनुमति देना संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत उनके अधिकारों के अंतर्गत आता है । मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता को प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज की स्थापना हेतु अनुमति दिए जाने में राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित मौलिक अधिकार से प्रत्यादेशित होती है और जब तक इस पर मौलिक अधिकार की परछाई पड़ती रहेगी यह मृतप्राय स्थिति में रहेगी ।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप, जरूरत इस बात की है कि हमारे नेता एक नए दृष्टिकोण का परिचय दें। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे पुराने संकीर्णवादी अतीत में न झांकते रहें बल्कि ऐसे काम करें जिनसे सुनहरा भविष्य का स्वप्न साकार होता हो। सर्वसमावेशी लोकतंत्र को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से, उनसे आशा की जाती है कि वे एक सर्वसमावेशी दृष्टिकोण का भी विकास करें। हमारे संविधान के दूरदर्शी निर्माताओं ने, सविधान के अनुच्छेद 30(1) के निर्माण द्वारा अल्पसंख्यकों के प्रति उदार और दूरदर्शी रवैया अपनाया है। अतः सरकार के पदाधिकारी जो संविधान के प्रति शपथ लेते हैं तथा उसमें निष्ठा प्रकट करते हैं, उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अल्पसंख्यकों की शिकायतों का निवारण करने के अलावा, उनके शैक्षणिक अधिकारों को कायम रखने में भी वैसा ही सकारात्मक और सशक्त रवैया अपनाएं और व्यवहार में लाएं। उच्चतम न्यायालय द्वारा भी टिप्पणी की गई है कि "भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेने का अर्थ एक पवित्र कर्तव्य से है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि समानता और न्याय के संवैधानिक आदर्शों को कायम रखा गया है। संविधान में प्रदत्त अधिकारों को लागू किया गया है तथा सभी नागरिकों को हमारे साझा लक्ष्य "हमारे सपनों का भारत" को साकार करने में भागीदारी करने हेतु समर्थ बनाया गया है।"

इस मामले की अन्य दृष्टिकोण से भी जांच की जा सकती है । उन्नी कृष्णन जे पी बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य एआईआर 1993 एससी 2178 मामले में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है कि शिक्षा ज्ञानोदय है । यह व्यक्ति को मान-मर्यादा प्रदान करती है । शिक्षा का मूल उद्देश्य हर समय तथा सभी स्थानों में समान है । यह मानव व्यक्तित्व को शारीरिक विकास की कृत्रिम प्रक्रिया मन के संवर्धन मनोभावों के परिष्कार तथा अन्तरात्मा के प्रदीपन के माध्यम से पूर्णतया के प्रतिमान के रुप में रुपान्तरित करती है। शिक्षा, जीवन निर्वाह के लिए और जीवन के लिए तैयारी है । एक लोकतांत्रिक सरकारी व्यवस्था में, जिसे बनाए रखने के लिए जनसाधारण का जागरुक होना जरुरी है, शिक्षा एक ही समय में सामाजिक और राजनैतिक आवश्यकता है । अतः उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत जीवन के अधिकार से ही शिक्षा का अधिकार निकलता है । मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य एआईआर 1992 एससी 1858 मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा इससे मिलती-जुलती राय प्रकट की गई थी। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि राज्य शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित करने के लिए बाध्य है ताकि नागरिक उक्त अधिकार का उपयोग करने में समर्थ

हों। राज्य अपनी बाध्यता को राज्य के स्वामित्व या राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के माध्यम से पूरा कर सकता है। जब राज्य सरकार निजी शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करती है तो वह संविधान के अन्तर्गत अपनी बाध्यता को पूरी करने के लिए एक एजेन्सी सृजित करती है । इस प्रकार, राज्य सरकार की अपने नागरिकों के लिए सभी स्तरों पर शैक्षणिक सुविधाएं मुहैया कराने के प्रयास करने हेतु बाध्यता है । मौजूदा मामले में, राज्य सरकार ने बीड में महिला महाविद्यालय आरंभ करने के लिए याचिकाकर्ता को अनुमति न देकर संविधान के अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन किया है।

यहां यह शामिल करना अनावश्यक है कि राज्य सरकार नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षक है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के जनादेश को देखते हुए, राज्य सरकार अपने बच्चों की उच्च शिक्षा में भाग लेने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद और आवश्यकताओं पर विचार करने के लिए राज्य सरकार का संवैधानिक दायित्व है । प्रशासनिक और वित्तीय संबंधी कोई असुविधा अथवा कठिनाईयां मौलिक अधिकार के उल्लंघन को तर्कसंगत नहीं करतीं । नए डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए अनुमति देते समय राज्य सरकार सार्वभौम के रुप में कार्य करती है और अपने सवैधानिक दायित्वों का निर्वहन करती है । अपनी वित्तीय बाधाओं को सम्मान देते हुए, राज्य सरकार सदैव अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की स्थिति में नहीं होती है। शिक्षा में भाग लेने का कार्य बड़े पैमाने पर स्वयं नागरिकों के नियंत्रण में रहा है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के जनादेश को देखते हुए, अपने बच्चों की उच्च/व्यावसायिक शिक्षा में भाग लेने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद और आवश्यकताओं पर विचार करना राज्य सरकार का संवैधानिक दायित्व है ।

पूर्वोक्त कारणों से, मैं यह पाता और निर्णय देता हूं कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून की कसौटी पर जांची-परखी प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज शुरु करने के लिए याचिकाकर्ता को अनुमति न देने में राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है । परिणामस्वरुप याचिकाकर्ता द्वारा उपली तरक्की बडवानी, जिला बीड, महाराष्ट्र में प्रस्तावित कनिष्ठ कॉलेज की स्थापना के संबंध में याचिकाकर्ता सोसाइटी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर पुनः विचार करते हुए रा अ शै सं आ अधिनियम की धारा-11 (ख) के अनुसार आयोग के निष्कर्ष कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकार से सिफारिश की जाती है ।

2008 का मामला सं 600

अल्पसंख्यक संस्था को मान्यता देने के लिए राज्य को निर्देश देने की मांग करने की याचिका

याचिकाकर्ता : मदरसा मदनी महिला कल्याण उलूम, दुमदुमा एच बी कॉलोनी, जिला खुर्दा, भुवनेश्वर, उड़ीसा

प्रतिवादी : आयुक्त-सह-मुख्य सचिव, स्कूल एवं सामूहिक शिक्षा विभाग, उड़ीसा सरकार, सचिवालय, भुवनेश्वर, उड़ीसा

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता मदरसा ने सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के अंतर्गत भूमि के आबंटन के लिए उसे मान्यता, शिक्षण स्टाफ, मध्याह्न भोजन का प्रावधान और बच्चों को निशुल्क पाठ्य-पुस्तकें, स्कूल यूनिफार्म, शिक्षण सामग्री इत्यादि देने के लिए राज्य सरकार को निर्देश दिए जाने की मांग की है । यह अभिकथित है कि मदरसा मदनी महिला कल्याण उलूम जिला खुर्दा, भुवनेश्वर 1996 से प्लॉट सं 54/453, फेज-IV, दुमदुमा, एच बी कालोनी, जिला खुर्दा, भुवनेश्वर में एक उर्दू माध्यम मदरसा चला रही है । 150 से भी ज्यादा छात्र अभी भी कक्षा-1 से कक्षा-V तक स्कूल में पढ़ रहे हैं । याचिकाकर्ता ने मदरसा

को मान्यता देने के लिए वर्ष 2005 में उड़ीसा सरकार के स्कूल एवं सामूहिक शिक्षा विभाग में आवेदन किया है और यह मामला अभी भी लंबित है । यह भी अभिकथित है कि याचिकाकर्ता मदरसा ने वर्ष 2005 में सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शिक्षा गारंटी योजना में आवेदन किया था और उसे मध्याह्न भोजन के अलावा एक महिला शिक्षक की व्यवस्था की गई थी । 31-3-2008 को उड़ीसा सरकार ने याचिकाकर्ता मदरसा सहित सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत उड़ीसा में सभी शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र बंद कर दिए । याचिकाकर्ता ने मदरसा भवन के स्थाई निर्माण हेतु मोहल्ले में खाली भूमि के आबंटन के लिए आयुक्त सह-सचिव, सामान्य प्रशासनिक विभाग, उड़ीसा सरकार को आवेदन भी किया था और यह मामला अभी भी सरकार के पास लंबित पड़ा है ।

अपने उत्तर में, राज्य परियोजना निदेशक, उड़ीसा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम प्राधिकरण, भुवनेश्वर ने बताया है कि याचिकाकर्ता मदरसा को 31-3-2008 तक सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र के रुप में सहयोग दिया गया था । भारत सरकार के निर्णय के अनुसरण में उड़ीसा में शिक्षा गारंटी योजना 1-4-2008 से बंद कर दी गयी । इसलिए याचिकाकर्ता मदरसा को शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र के रुप में सहयोग जारी रखना संभव नहीं है । यह अभिकथित है कि मदरसा से 600 मीटर की दूरी पर एक सरकारी प्राइमरी स्कूल है और इसलिए संबंधित स्थान में दूसरा नया प्राइमरी स्कूल खोलने की आवश्यकता नहीं है ।

कलेक्टर-सह-अध्यक्ष, सर्व शिक्षा अभियान, खुर्दा ने अपने उत्तर में कहा है कि मदरसा को मान्यता स्कूल एवं सामूहिक शिक्षा विभाग द्वारा दी जानी है । याचिकाकर्ता के आवेदन का सत्यापन करने पर मान्यता देने की प्रक्रिया शुरु कर दी गई है । इस मामले को स्कूल एवं सामूहिक शिक्षा विभाग को भेजा जाएगा । संस्था को अपने शिक्षकों के लिए सहायता देने के प्रस्ताव पर विचार उसे मान्यता देने के पश्चात ही किया जा सकता है । इस प्रस्ताव को ए आई ई केन्द्र में परिवर्तित करने के याचिकाकर्ता के अनुरोध पर जिला प्राधिकारियों और ऑपेरा द्वारा बार-बार जांच की गई है और इसलिए शिक्षा गारंटी योजना 1-4-2008 से समाप्त कर दी गई है, अतः याचिकाकर्ता मदरसे को ए आई ई केन्द्र में परिवर्तित करना संभव नहीं है । क्योंकि इस प्रकार के केन्द्र पढ़ाई बीच में ही छोड़ने वाले बच्चों और अधिक आयु वाले उन बच्चों की जरुरतों को पूरा करते हैं, जिन्होंने कभी स्कूल में प्रवेश नहीं लिया जबकि याचिकाकर्ता मदरसा स्कूल में जाने वाले सामान्य बच्चों की जरुरतों को देखता है ।

आयोग द्वारा जारी नोटिस के अनुसरण में, उड़ीसा सरकार के प्रशासनिक विभाग ने एक आयोग को सूचित किया है कि याचिकाकर्ता संस्था के लिए याचिकाकर्ता संस्था के लिए भूमि के आबंटन के संबंध में मामला विचाराधीन है और स्कूल एवं सामूहिक विभाग द्वारा इसे मान्यता दिए जाने पर भूमि के आबंटन पर विचार करने के लिए कदम उठाए जाएंगे ।

इसके प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता ने कहा है कि वह मुस्लिम समुदाय के छात्रों की आवश्यकता पूर्ति कर रही है और यह मदरसा शिक्षा के उड़ीसा राज्य बोर्ड के पाठ्यक्रम का अनुसरण करता है । यह अभिकथित है कि भुवनेश्वर नगर निगम में याचिकाकर्ता मदरसा ही एकमात्र मदरसा है । चूंकि भुवनेश्वर नगर निगम में कोई उर्दू प्राइमरी स्कूल नहीं है इसलिए एक ऐसे मदरसा की आवश्यकता है जो उर्दू भाषा में शिक्षण कराए और मुस्लिम समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करे । इसके अलावा यह भी अभिकथित है कि खुर्दा मंडल के स्कूल निरीक्षक ने मदरसा के परिसर का निरीक्षण किया है और यह पुष्टि की गई कि मदरसा I से V तक कक्षाएं चला रहा है और उसने दिनांक 29-4-2008 की रिपोर्ट के तहत पर्याप्त शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति की है ।

मान्यता चाहने की इच्छुक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को शैक्षिक उत्कृष्टता से संबंधित सांविधिक आवश्यकताओं, अपने शिक्षण स्टाफ और छात्रों और पाठ्यचर्या के पाठ्यक्रम के लिए सांविधिक प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हताएं पूरी करनी होंगी । अपनी संवृद्धि के लिए उसके पास पर्याप्त ढांचागत और अनुदेशात्मक सुविधाएं तथा वित्तीय संसाधान होने चाहिए। यह सुस्थापित है कि मान्यता देने के लिए कोई भी ऐसी शर्तें नहीं थोपी जानी चाहिएं जिनसे वस्तुतः और प्रभावी रुप में संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत प्रत्याभूत अधिकार का अतिलंघन और संबंधित संस्था के अल्पसंख्यक चरित्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

यह एक स्वीकार्य स्थिति है कि राज्य के सक्षम प्राधिकारी ने वर्ष 2005 में सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शिक्षा गारंटी योजना याचिकाकर्ता मदरसा पर लागू की थी और मध्याह्न भोजन के अलावा एक महिला शिक्षक की भी व्यवस्था की थी । यह भी निर्विवाद है कि 31-3-2008 को उड़ीसा सरकार ने याचिकाकर्ता मदरसा सहित उड़ीसा में सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सभी शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र बन्द कर दिए थे । इससे स्पष्ट रुप से यह पता चलता है कि मान्यता देने के लिए याचिकाकर्ता मदरसा के पास सभी ढांचागत और अनुदेशात्मक सुविधाएं है अन्यथा राज्य सरकार उक्त मदरसे में शिक्षा गारंटी याजना लागू नहीं करती । यह भी स्वीकार्य स्थिति है कि याचिकाकर्ता मदरसा मुस्लिम समुदाय की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है और उड़ीसा राज्य मदरसा शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम का अनुसरण कर रहा है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर में यह कहा गया है कि खुरदा मंडल के स्कूल निरीक्षक ने मदरसा के परिसरों का निरीक्षण किया है और उसने यह पुष्टि की है कि मदरसा I से V तक कक्षाएं चला रहा है और उसने पर्याप्त शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति की है । इस तथ्य का खंडन राज्य सरकार ने नहीं किया है । उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट रुप से यह सिद्ध होता है कि याचिकाकर्ता मदरसा राज्य सरकार द्वारा मान्यता दिए जाने के लिए पात्र है । मान्यता एक सुविधा है जो कि एक राज्य शैक्षणिक संस्था को प्रदान करता है । कोई भी शैक्षणिक संस्था राज्य सरकार की मान्यता के बिना चल नहीं सकती। मान्यता के बिना एक शैक्षणिक संस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यान्वित विभिन्न लाभकारी योजनाओं से मिलने वाले कोई भी लाभ नहीं उठा सकती । मल्टी तालिमी मिशन बिहार का प्रबंधन बोर्ड बनाम बिहार राज्य 1984 एस सी सी (14) 500 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रुप से यह स्वीकार किया है कि अल्पसंख्यक संस्था चलाना भी उतना ही मौलिक और महत्वपूर्ण है जितना कि देश के नागरिकों को प्रदत्त अन्य अधिकार । यदि कोई राज्य सरकार अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को बिना किसी न्यायोचित और पर्याप्त आधार के मान्यता देने से इन्कार करती है तो इसका सीधा परिणाम संस्था के अस्तित्व की ही समाप्ति के रुप में होगा । इस प्रकार, न्यायोचित और पर्याप्त आधार के बिना सांविधिक प्राधिकारियों द्वारा मान्यता अथवा संबद्धता दिए जाने से इन्कार करने पर संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत प्रत्याभूत अधिकार का उल्लंघन होता है । यदि मान्यता से इन्कार कर दिया जाता है तो अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था स्थापित करने के लिए अल्पसंख्यकों के अधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा । जैसा कि पहले ही बताया गया है कि राज्य सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत शिक्षा गारंटी योजना याचिकाकर्ता मदरसा पर पहले ही लागू कर दी थी और जो अपने आप में यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता मदरसा को अन्तर्निहित रुप से मान्यता प्रदान की थी अन्यथा उक्त योजना याचिकाकर्ता मदरसा पर लागू नहीं की जाती । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हम यह पाते हैं कि राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ता मदरसा को मान्यता दिए जाने के लिए न्यायोचित और वैध आधार हैं ।

जहां तक याचिकाकर्ता मदरसा के लिए भूमि का आबंटन का संबंध है, सामान्य प्रशासनिक विभाग, उड़ीसा सरकार ने आयोग को सूचित किया है कि यह सक्रिय रुप से विचाराधीन है और याचिकाकर्ता को

मान्यता मिल जाने पर, याचिकाकर्ता को भूमि के आबंटन पर विचार करने के लिए कदम उठाए जाएंगे। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखकर हम राज्य सरकार से सिफारिश कर सकते हैं कि वह याचिकाकर्ता मदरसा को भूमि के आबंटन पर तत्परता से विचार करें ।

पूर्वोक्त कारणों से, हम याचिकाकर्ता मदरसा द्वारा मांगी गई मान्यता देने के लिए राज्य सरकार से सिफारिश करते हैं । इसके अलावा, सरकार से सिफारिश करते हैं कि वह याचिकाकर्ता मदरसा की भूमि के आबंटन की प्रक्रिया में तत्परता लाए ताकि याचिकाकर्ता अपना स्थायी ढांचा खड़ा कर सके ।

2009 का मामला सं 1320

अल्पसंख्यक संस्था को अल्पसंख्यक दर्जा देने के लिए याचिका

याचिकाकर्ता : बकली प्राईमरी स्कूल, मिशन रोड, डाकघर बक्शी बाजार, जिला कटक, उड़ीसा-743001

प्रतिवादी : सरकार के मुख्य सचिव, स्कूल एवं सामूहिक शिक्षा विभाग, उड़ीसा सरकार, उड़ीसा सचिवालय, भुवनेश्वर, उड़ीसा-751001

याचिकाकर्ता स्कूल ने अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए इस आधार पर आवेदन किया है कि इसकी स्थापना संचालन बकली प्राईमरी स्कूल द्वारा किया जा रहा है जो ईसाई समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित एक पंजीकृत ट्रस्ट है । याचिका में यह उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 7-1-2009 को अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को आवेदन किया था और वह अभी भी लंबित है । नोटिस देने के बावजूद, राज्य सरकार का सक्षम प्राधिकारी उक्त आवेदन के दर्जे की स्थिति के बारे में आयोग को सूचित करने में असफल रहा है । इस प्रकार असंगत रुप से इतनी लंबी अवधि के लिए उक्त आवेदन का लंबित होना स्पष्ट तौर पर याचिकाकर्ता को अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण-पत्र दिए जाने के लिए सरकार की अनिच्छा को जाहिर करता है । अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता के अधिकार को आस्थगित जीवंतता के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इस मुद्दे को देखते हुए, हम इस मामले में हस्तक्षेप करने के लिए न्याय के हित में न्यायोचित और सामयिक आधार पर पाते हैं ।

बार-बार आस्थगन दिए जाने के बावजूद राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका के विरोध में अपना लिखित बयान नहीं दिया । फिर भी, निम्नलिखित मुद्दे विचारार्थ उठते हैं :-

i) क्या याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना ईसाई समुदाय द्वारा की गई है जो अधिसूचित अल्पसंख्यक समुदाय है ?

ii) क्या याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना ईसाई समुदाय के लाभ के लिए की गई है?

iii) क्या याचिकाकर्ता संस्था का संचालन ईसाई समुदाय द्वारा किया जा रहा है ?

मुद्दा नम्बर 1- याचिका में कहा गया है कि याचिकाकर्ता स्कूल की स्थापना बकली प्राईमरी स्कूल ने की है जो ईसाई समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित एक पंजीकृत ट्रस्ट है । याचिकाकर्ता ने बकली प्राईमरी स्कूल, कटक के ट्रस्ट का मूल दस्तावेज प्रस्तुत किया है जो स्पष्ट रुप से सिद्ध करता है कि इस ट्रस्ट का गठन ईसाई समुदाय के सदस्यों ने किया है और ट्रस्ट के सभी न्यास ईसाई समुदाय से हैं । इससे यह भी सिद्ध होता है कि याचिकाकर्ता स्कूल की स्थापना भी उक्त ट्रस्ट ने की है । इस बात का उल्लेख

करने की आवश्यकता है कि प्रतिवादी ने मामले के वास्तविक मैट्रिक्स का बिल्कुल भी खंडन नहीं किया है । याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक शिक्षा के निदेशक के दिनांक 31-3-2010 के ज्ञापन सं 5397 की जिरॉक्स प्रति भी दायर की है जो स्पष्ट तौर पर दर्शाती है कि याचिकाकर्ता स्कूल को राज्य सरकार ने मान्यता दे रखी है । उक्त पत्र में यह भी उल्लेख है कि याचिकाकर्ता स्कूल की स्थापना वर्ष 1837 में हुई थी और इसका प्रबंधन डियोसीज, कटक द्वारा किया गया था। बकली प्राईमरी स्कूल के ट्रस्ट दस्तावेज के साथ पठनीय यह पत्र स्पष्ट तौर पर सिद्ध करता है कि याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना ईसाई समुदाय ने की है । जैसा कि पहले बताया गया है, याचिकाकर्ता स्कूल की स्थापना ईसाई समुदाय ने की है और इसका संचालन कटक का डियोसीज कर रहा है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, सुरक्षित रुप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्था को बनाने का उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ यह था कि ईसाई समुदाय के कैथोलिक युवक को धार्मिक अनुदेशों के माध्यम से और संस्था में कैथोलिक वातावरण बनाए रखकर पूर्णतयाः नैतिक और उदारवादी शिक्षा प्रदान की जाए । याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का खंडन करने के लिए रिकॉर्ड पर एक भी साक्ष्य नहीं है । इसके फलस्वरुप, हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना ईसाई समुदाय ने की है ।

मुद्दा नम्बर 2- बकली स्कूल के ट्रस्ट दस्तावेज से स्पष्ट रुप से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता स्कूल के लाभार्थी ईसाई समुदाय के सदस्य हैं । इस तथ्य को श्रीमती स्मृति रेखा पाण्डा, याचिकाकर्ता स्कूल की प्रधानाध्यापिका के बिना खंडन किए गए शपथपत्र से भी पर्याप्त समर्थन मिलता है । याचिकाकर्ता स्कूल की ओर से प्रस्तुत उक्त साक्ष्य का खंडन करने के लिए रिकार्ड पर लेशमात्र भी साक्ष्य नहीं है । परिणामस्वरुप, हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि याचिकाकर्ता संस्था के लाभार्थी ईसाई समुदाय के सदस्य हैं ।

मुद्दा नम्बर 3- बकली प्राइमरी स्कूल, कटक के ट्रस्ट दस्तावेज से यह सिद्ध होता है कि याचिकाकर्ता संस्था का संचालन ईसाई समुदाय कर रहा है । इस तथ्य में श्रीमती स्मृति रेखा पाण्डा और निदेशक, प्रारंभिक शिक्षा, उड़ीसा सरकार द्वारा जारी दिनांक 31-3-2010 के ज्ञापन सं 5397 से भी पर्याप्त समर्थन मिलता है । दिनांक 31-3-2010 के ज्ञापन में स्पष्ट रुप से राज्य सरकार की यह स्वीकारोक्ति है कि याचिकाकर्ता संस्था का संचालन डियोसीज, कटक कर रहा है। परिणामस्वरुप, हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि याचिकाकर्ता संस्था का संचालन ईसाई समुदाय कर रहा है ।

याचिकाकर्ता संस्था की प्रधानाध्यापिका श्रीमती स्मृति रेखा पाण्डा के शपथपत्र में यह बताया गया है कि संस्था में जिन 297 छात्रों को दाखिला दिया गया, उनमें केवल 95 छात्र ईसाई समुदाय से हैं । इस प्रकार, याचिकाकर्ता स्कूल में ईसाई समुदाय से दाखिल छात्रों का प्रतिशत केवल 31. 98 प्रतिशत है । यहां एक रोचक प्रश्न विचारार्थ उठता है : क्या अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में अधिसूचित अल्पसंख्यक समुदाय से छात्रों के दाखिले का प्रतिशत इस प्रकार की संस्था का अल्पसंख्यक दर्जा निश्चित करने के लिए सूचकांक में शामिल किया जा सकता है? याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने मजबूती से यह आग्रह किया है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में उस समुदाय के बड़े पैमाने पर प्रवेश या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े छात्रों के अनुपातिक प्रवेश के आधार पर उस अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की पहचान करने का मानदंड अनुचित अव्यवहार्य और निक्रिय होगा । विद्वान वकील के अनुसार, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की पहचान करने को यह परीक्षण संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के अधिकारों को नष्ट कर देगा । इसके अलावा उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के अधिकार निर्बाध हैं और संस्था की शिक्षा में उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए राज्य द्वारा बनाए गए विनियमों के ही अधीन है तथा अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत

अल्पसंख्यकों पर कोई अन्य रोक नहीं लगाई जा सकती हैं । विद्वान वकील ने उक्त तर्कों के समर्थन में हमारा ध्यान टी एम ए पाई फाउन्डेशन मामला बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एस सी सी 481, इस्लामिक शिक्षा अकादमी बनाम कर्नाटक राज्य (2003) 6 एस सी सी 697 और पी ए ईमानदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 एस सी सी 537 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों की ओर आकर्षित किया है ।

सबसे पहले उस पृष्ठभूमि में विचार करना अनिवार्य है जिसमें उक्त मामले सामने आए, इनमें शामिल मुख्य मुद्दे और उनके परिणाम/टी एम ए पाई में उन्नीकृणन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993) 1 एस सी सी 645 में बनाई गई योजना को चुनौती दी गई । उन्नीकृष्णन मामले में तैयार योजना पर विवादग्रस्त और समाविष्ट आलोचना के मद्देनजर उच्चतम न्यायालय ने पांच शीर्षों के तहत 11 प्रश्न तैयार किए, वे पांच शीर्षक, जिसके अंतर्गत चर्चा के लिए 11 प्रश्नों को वर्गीकृत किया गया, निम्नवत पढ़ा जाए :-

(i) क्या शैक्षणिक संस्था स्थापित करने के लिए मौलिक अधिकार है और यदि है तो किस प्रावधान के अंतर्गत ?

(ii) क्या उन्नीकृष्णन मामले में पुनः विचार करने की आवश्यकता है ?

(iii) निजी संस्थाओं के मामले में क्या सरकार विनियम हो सकते हैं और यदि हां, तो किस सीमा तक?

(vi) अनुच्छेद 30 के संबंध में धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यकों के अस्तित्व को निश्चित करने के लिए किसे ईकाई माना जाए-राज्य अथवा समग्र देश को ?

(v) सहायता प्राप्त निजी अल्पसंख्यक संस्थाओं के अधिकारों को किस सीमा तक विनियमित किया जा सकता है ?

टा. एम. ए. पाई मामले (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि 'अल्पसंख्यक संस्था द्वारा सहायतानुदान लेते ही उसका अल्पसंख्यक स्वरुप समाप्त नहीं हो जाता । अतः सहायताप्राप्त शैक्षणिक संस्था अल्पसंख्यक समुदाय से संबंद्ध छात्रों को प्रवेश देने की हकदार होगी और साथ ही उसे गैर-अल्पसंख्यक छात्रों को तर्कसंगत सीमा तक प्रवेश देना होगा, ताकि अनुच्छेद 30(1) के तहत अधिकारों का पर्याप्त रुप से हनन न हो और यह भी कि अनुच्छेद 29 (2) के तहत नागरिकों के अधिकारों का भी उल्लंघन न हो । यह तर्कसंगत सीमा क्या होगी, यह संस्था के स्वरुप, शिक्षा के पाठ्यक्रम, जिसके लिए प्रवेश मांगी गया है और शैक्षिक जरुरतों जैसे अन्य तथ्यों के अनुसार अलग-अलग होगी । संबंधित राज्य सरकार में उपर्युक्त अवलोकनों के दृष्टिगत प्रवेश दिए जाने वाले गैर अल्पसंख्यक छात्रों की प्रतिशतता को अधिसूचित करना होता है।

सेंट स्टीफन कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992)1 एस सी सी 558 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि 'अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को संविधान द्वारा दिए जाने वाले सुरक्षात्मक उपायों को देखते हुए, अल्पसंख्यक सहायताप्राप्त शैक्षिक संस्थाएं अपनी संस्थाओं के अल्पसंख्यक स्वरुप को बनाए रखने के लिए अपने समुदाय के उम्मीदवारों को प्राथमिकता देने की हकदार हैं, बशर्ते कि यह नःसंदेह रुप से विश्वविद्यालय के मानकों के अनुरुप हो । राज्य, उस क्षेत्र जहां कि संस्था द्वारा कार्य किया गया अभिप्रेत है, के समुदाय की जरुरत को यथोचित रुप से ध्यान में रखते हुए इस श्रेणी में छात्रों को प्रवेश की संख्या को विनियमित कर सकता है । परन्तु किसी भी स्थिति में यह प्रवेश वार्षिक प्रवेश के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

अल्पसंख्यक संस्थाएं अल्पसंख्यक समुदाय को छोड़कर अन्य समुदाय के सदस्यों को कम से कम 50 प्रतिशत वार्षिक रुप में प्रवेश दे सकती हैं । अन्य सामुदायिक उम्मीदवारों का प्रवेश पूर्णतः योग्यता के आधार पर किया जाएगा ।

टी एम ए पाई मामले (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 29(2) तथा 30(1) की व्याख्या करते हुए निर्णय दिया कि एक प्रकार का संतुलन बनाए रखना जरुरी है । अनुच्छेद 29(2) के दृष्टि गत यह मानते हुए कि धर्म, वर्ग, जाति तथा भाषा के आधार पर नागरिकों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता, आगे यह निर्णय दिया गया कि उक्त अनुच्छेद का तात्पर्य यह नहीं होगा कि इसका आशय अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यकों को दिए गए विशेषाधिकारों को रद्द करना था । यह भी देखा गया कि सेंट स्टीफन के मामले में अनुच्छेद 29(2) तथा 30(1) के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया और हालांकि सेंट स्टीफन के मामले में, अनुपात एक दशक तक बना रहा, तथापि उसमें निर्धारित 50% के एक निश्चित प्रतिशत को न अपनाने की बाध्यकर सीमाएं थीं ।

टी. एम. ए. पाई. फाउंडेशन(ऊपर) में निर्धारित अभ्युक्ति के अनुसार चूंकि अनुच्छेद 29(2) तथा 30(1) न केवल उच्च शिक्षा संस्थानों में लागू होता था बल्कि स्कूलों में भी तो, 50% की सीमा का निर्णय उचित नहीं पाया गया । यह संस्था के स्तर पर निर्भर करते हुए ज्यादा उपयुक्त होगा चाहे वह प्राइमरी अथवा सैकेण्डरी अथवा उच्च स्कूल अथवा कॉलेज, व्यावसायिक संस्थान हो अथवा अन्यथा और उस क्षेत्र की आबादी तथा शैक्षणिक आवश्यकताओं, जहां संस्थान स्थापित है, राज्य, अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने के लिए इस तरह का प्रतिशत निर्धारित करते हुए सभी के हितों में उचित संतुलन बनाए रखे ताकि उस समुदाय के हितों की पूर्ति हो सके जिनके लिए संस्थान की स्थापना की गई है ।

पी.ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ नं.102 में, टी.एम.ए. पाई के मामले में अवलोकनों का हवाला देते हुए यह देखा गया कि अल्पसंख्यक संस्था की स्थापना के लिए, संस्था को सबसे पहले उस राज्य के अल्पसंख्यकों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए अन्यथा वह अल्पसंख्यक संस्था अपना स्वरुप खो देगी । यह ध्यान रखना होगा कि उपर्युक्त अवलोकन सीमा पार दाखिले के संदर्भ में कहे गए थे क्योंकि पी. ए. इनामदार मामले में विचारार्थ प्रश्न यह थाः क्या एक अल्पसंख्यक संस्था सीमा पार अथवा अंतर्राज्यीय शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान कर सकती है और क्या तब भी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अपना स्वरुप को बनाए रख सकती है ? इसी प्रकार, छात्रों के एक बड़े समूह को प्रवेश देने की संस्था की बाध्यता के संबंध में टी.एम. ए. पाई फाउंडेशन(ऊपर) के पैराग्राफ 153 में किए गए अवलोकन किसी राज्य से उस समूह के अल्पसंख्यक समुदाय या छात्रों के विवरणों से मेल खाती है जो सीमा पार प्रवेश के परिप्रेक्ष्य में की गई लगती है । धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित संस्थाओं द्वारा अपनाई गई पद्वति से पता चलता है कि वे सीमा पार से उस राज्य, जहां संबंधित अल्पसंख्यक समुदाय, अल्पसंख्यक नहीं है, को प्रवेश देते होंगे । अल्पसंख्यक का निर्धारण करने के लिए राज्य को एक ईकाई होना होता है और यह संभव है कि उड़ीसा में अल्पसंख्यक, आन्ध्र प्रदेश अथवा मध्य प्रदेश में अल्पसंख्यक न हो । निश्चय ही, यदि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को उस अल्पसंख्यक समुदाय को प्रवेश दिलाने का अधिकार दे दिया जाता है जो समुदाय अन्य राज्य में बहुसंख्यक समुदाय है, तो ऐसा करना संविधान के प्रति धोखा माना जाएगा । इसी परिप्रेक्ष्य में कुछ अवलोकन प्रस्तुत किए गए हैं कि अल्पसंख्यक समुदाय का बड़ी मात्रा में तथा बहुसंख्या में प्रवेश उस राज्य के भीतर से करना होगा जहां वह समुदाय अल्पसंख्यक है । उपर्युक्त

प्रस्तुत अवलोकनों के बावजूद, आगे यह पाया गया कि सीमा पार से छिट-पुट दाखिले किए जा सकते हैं । इन अवलोकनों से इस बात का अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि सहायता प्राप्त अथवा बिना सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थाओं को उस राज्य में समुदाय के भीतर से ही अपने विद्यार्थियों की एक निश्चित प्रतिशतता का दाखिला करना ही होगा ।

यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2001 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, उड़ीसा राज्य में ईसाई आबादी लगभग 8,97,861 थी और उड़ीसा राज्य की कुल आबादी 36,804,660 थी । याचिकाकर्ता संस्थान कटक में स्थित है तथा कटक जिले की कुल आबादी 23,41,094 थी, जिसमें से ईसाई समुदाय की आबादी 10,657 थी । याचिकाकर्ता स्कूल की प्रधानाध्यापिका श्रीमती स्मृति रेखा पाण्डा के हलफनामें में यह उल्लेख किया गया है कि कटक जिले में ईसाई समुदाय का प्रतिशत 0.46% है। याचिकाकर्ता स्कूल एक प्राइमरी स्कूल है । एक तर्कसंगत अनुमान लगाया जा सकता है कि कट क जिले में ईसाई समुदाय द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश चाहने वाले विद्यार्थी सामान्यतः अपनी आबादी के अनुपातिक होंगे । मामले को इस नजरिए से देखते हुए कटक जिले का ईसाई समुदाय अपने खुद के समुदाय से 0.46% से ज्यादा दाखिले प्राप्त नहीं कर सकता । इसी तरह से यदि ऐसे राज्य विशेष में जहां समुदाय विशेष अति अल्प संख्या में हो, तो वहां प्रवेश पाने वाले विधार्थियों की संस्था मुट्ठीभर हो सकती है । क्या ऐसे धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यक अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था स्थापित करने का अपना अधिकार खो देंगे ? क्या सिख, बौद्ध तथा जैन जैसे धार्मिक अल्पसंख्यकों के पास संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था स्थापित तथा संचालित करने का कोई अधिकार नहीं होगा ? इस प्रकार अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रदत्त मूलभूत अधिकार उनके लिए कटु छलावा तथा वास्तविकता से दूर एक वायदा भर बने रहेंगे । यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि पारसी समुदाय एक अधिसूचित अल्पसंख्यक समुदाय है परन्तु यह अपने देश का ऐसा समुदाय भी है जिसकी संख्या लगातार कम हो रही है। ऐसी स्थिति में, पारसी समुदाय जैसे अति सूक्ष्म समुदाय, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता । इस पहलु पर न तो टी.एम.ए.पाई में न ही पी. ए. इनामदार मामले में विचार किया गया । यह ध्यान में रखना होगा कि संविधान 30(1) एक आस्था का अनुच्छेद है अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान करने का समग्र उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक के बीच समानता बनी रहेगी । यदि अल्पसंख्यकों को ऐसा कोई विशेष संरक्षण नहीं मिलता है तो वे समानता से वंचित रहेंगे, इसलिए असमानता को दूर करने के लिए अल्पसंख्यकों के लिए विशेषाधिकार बनाए गए हैं । उनका वास्तविक प्रभाव, अल्पसंख्यक संस्थाओं का संरक्षण सुनिश्चित करके तथा इन संस्थानों के प्रशासन के मामले में इन्हे स्वायत्तता देते हुए वास्तविक अर्थों में समानता लाना था । (सेंट जेवियर कॉलेज, अहमदाबाद बनाम गुजरात राज्य 1974(1) एससीसी 717)। यह कहा जा सकता है कि यह सभ्यता के स्तर तथा राष्ट्र की उदारता का यह एक ऐसा सूचकांक है कि उस देश के अल्पसंख्यक किस हद तक सुरक्षित महसूस करते हैं तथा उनसे किसी भी तरह का भेदभाव तथा दमन न किया जाए । जैसे कि पृष्ठ 990 के ए आई आर 1958 956 में माननीय वेंकटरामा ने पाया कि संविधान अल्पसंख्यकों को दो भिन्न अधिकार प्रदान करता है एक सकारात्मक तथा दूसरा नकारात्मक, उदारहरण के तौर पर,

(i) राज्य अल्पसंख्यकों, धार्मिक अथवा भाषा-विषयक संस्थाओं सहित सभी शैक्षणिक संस्थाओं को सहायता एवं मान्यता देने के मामले में समान व्यवहार प्रदान करने का सकारात्मक दायित्व है; तथा

(ii) राज्य का ऐसे संस्थाओं की स्थापनाओं पर रोक न लगाने तथा उनके संचालन में हस्तक्षेप न करने का नकारात्मक दायित्व भी है ।

इस प्रकार एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में प्रवेश दिए जाने वाले विधार्थियों का प्रतिशत निर्धारित करने संबंधी मानदंडों की पहचान करना हमारे संविधान की संवैधानिक स्कीम में उपयुक्त नहीं बैठता ।

उल्लेखनीय है कि जहां तक अपने शैक्षणिक संस्थाओं का संबंध है, अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के मामले में हमारे संविधान में उदारतावादी तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रुप से यह माना कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को चलाना भी उतना ही मौलिक तथा महत्वपूर्ण है जितना देश के नागरिकों को दिए गए अन्य अधिकार । (मिल्ली तलिमी प्रबंधन बोर्ड मिशन बनाम हिबार राज्य 1984 एससीसी (4) 500 राज्य की कोई कार्रवाई जिसमें इन अधिकरों को किसी प्रकार से समाप्त किया जाता है, उन्हें बदला अथवा उनमें हस्तक्षेप किया जाता है तो ऐसा करना अनुच्छेद 30(1) का उल्लघंन माना जाएगा । इस संबंध में, हम सेंट जवियर कॉलेज अहमदाबाद बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति के निम्नलिखित उपयोगी उद्धरण देख सकते हैं

> ".....न्यायालय ने इन अनुच्छेदों में सम्मिलित अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सतत् रुप से बनाए रखा है तथा यह सुनिश्चित किया है कि अल्पसंख्यक अधिकारों का विस्तार तथा कार्य क्षेत्र कम न हो । यह व्यापक दृष्टिकोण हमेशा बना रहा है कि इनकी शैक्षणिक संस्थाओं के मामले में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के क्षीण होने जैसा कुछ न हो तथा यह कि इन अधिकारों के संबंध में संविधान के प्रावधानों का विस्तार तथा कार्य-क्षेत्र सीमित न हो । इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में इस सिद्धांत को समझा जा सकता है कि अल्पसंख्यक अधिकारों से जुड़े प्रावधानों को तैयार करने के लिए जिस उदारतावादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है, कहीं संकीर्ण न्यायिक व्याख्याओं से इसकी अवज्ञा न हो जाए । अल्पसंख्यक भी इसी धरती की संतान हैं जिस देश की संतान बहुसंख्यक है और हमारा दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करने का रहा है कि अल्पसंख्यकों को वहां के निवासी होने के बोध से, सुरक्षा के भाव से, समानता की अभिज्ञता से तथा उस जागरूकता के इस भाव से जबरन वंचित करने जैसा कुछ न किया जाए कि धर्म,संस्कृति, भाषा और लिपि के संरक्षण के साथ साथ उनकी शैक्षणिक संरचनाओं की संरक्षा संविधान में प्रतिष्ठापित उनका एक मूलभूत अधिकार है ।"

अनुच्छेद 30(1) का सार यह है कि अल्पसंख्यक संस्थान, शिक्षा पद्धति तथा अपने शैक्षणिक संस्थाओं के प्रशासन को चलाने के लिए अपनी पंसद का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र है इन दोनों के एक साथ होने पर ही किसी शैक्षणिक संस्था के ऐसे स्वरुप तथा चरित्र का निर्धारण होता है जिसमें अल्पसंख्यक चुनने का अधिकार मिलता है । अनुच्छेद 30(1) का कार्यक्षेत्र तथा उद्देश्य स्पष्ट तथा अर्थपूर्ण है । अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था चलाने के मामले में अल्पसंख्यक समुदायों को अधिकार प्रदान करने की पृष्ठभूमि तथा उक्त अधिकार पर कोई प्रतिबंध न होने से यह अर्थगर्भित तथ्य स्पष्ट होता है कि यदि

कोई समुदाय अल्पसंख्यक है तो उसके पास संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अधिकार मौजूद हैं ।

जैसे कि पहले कहा गया है कि याचिकाकर्ता संस्था ईसाई समुदाय द्वारा स्थापित की गयी है । सेंट जेवियर कॉलेज मामले(ऊपर) में निम्नलिखित देखा गया :

> " जहां तक कैथोलिक शैक्षणिक संस्थाओं का संबंध है, कैथोलिक यह मानते हैं कि शिक्षा उत्कृष्ट रुप में चर्च से संबंध रखती है । कैथोलिक धर्म सिद्धांत इस आधार वाक्य का स्पष्ट रुप से खंडन करता है कि धर्मनिरपेक्ष सामान्य शिक्षा को धार्मिक शिक्षा से अलग किया जा सकता है वर्ष 1930 के यूथ पोप प्लस XI के ईसाई शिक्षा सार्वभौम पत्र में यह सिफारिश की गई : चर्च द्वारा अनुमोदित केवल एक ऐसा स्कूल वह है जहां समूचे वातावरण में कैथोलिक धर्म व्याप्त होता है तथा जहां प्रत्येक शाखा में सारी शिक्षा तथा स्कूल का पूरा संगठन इसके शिक्षक पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें सभी कुछ ईसाई मनोवृति से नियंत्रित होता है ।

अल्पसंख्यक इसे अनिवार्य समझते हैं कि उनके बच्चों की शिक्षा उनके धर्म की शिक्षण पद्धति के अनुसार होनी चाहिए तथा वे इस बात पर ईमानदारी से दृढ़ हैं कि ऐसी शिक्षा आम जनता के लिए तैयार किए गए सामान्य स्कूलों में प्राप्त नहीं की जा सकती परन्तु इसे केवल अपने धर्म के सिद्धांतों तथा यह अपनी संस्कृति की परम्परा में निपुण लोगों के प्रभाव तथा मार्गदर्शन के तहत संचालित स्कूल में प्राप्त की जा सकती है । वे यह भी चाहते है कि उनके शैक्षणिक संस्थाओं के विद्धान जीवनोपयोगी कैरियर के लिए आवश्यक उचित एवं पर्याप्त योग्यताओं से भली-भांति सुसज्जित होकर बाहरी दुनिया में जाएं ।

संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अधिकारों में विद्यार्थियों को सबसे उत्तम शिक्षा देने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के दायित्व तथा कर्त्तव्य समाविष्ट हैं, वस्तुतः अल्पसंख्यक यदि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित तथा संचालित करने के अपने अधिकार को खो देते हैं तो वे अपने बच्चों को एक आम जीवन-वृत्ति प्रदान करने के अपने अधिकार से वंचित हो जाएंगे । यदि इनके बच्चे अपनी पसंद के संस्थाओं में प्रशिक्षित नहीं हो सके तो अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थाएं अपनी उपयोगिता खो देंगी । अतः अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था स्थापित करने के अधिकार का तात्पर्य उन वास्तविक संस्थाओं को स्थापित करने का अधिकार मिलने से होना चाहिए जो अपने समुदाय तथा उन विद्वानों की जरुरतों को कुशलतापूर्वक पूरा करें जो अपने शैक्षणिक संस्थाओं पर आश्रित हैं । यह उल्लेख करना संगत है कि शैक्षणिक मानक सुनिश्चित करने और उनकी उत्कृष्टता बनाए रखना संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त संरक्षण के लिए अभिशाप नही हैं । टी एम ए पाई(ऊपर) मामले में यह निर्णय दिया गया है कि "प्राधिकारियों" द्वारा बनाए गए विनियमों को संस्था में अल्पसंख्यक स्वरूप का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए । अतः दोनों उद्देश्यों के बीच संतुलन बनाकर चलना होगा- कि संस्था के उत्कृष्टता के मानक सुनिश्चित किए जा सकें और यह कि अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन करने के अधिकार का संरक्षण किया जाए । ऐसे विनियमों को युक्तियुक्त माना जा सकता है जो इन उद्देश्यों को पूरा और उनसे सामंजस्य स्थापित करते हों । यह ध्यान दिया जाऐ कि विनियमित करने का अर्थ नियंत्रित करना नहीं बल्कि उस अधिकार के प्रभावी उपयोग को सुसाध्य बनाना है । ऐसे विनियम जो नियंत्रण लगाते हैं, बुरे

हैं; परन्तु सुसाध्य-वादी विनियम अच्छे हैं । इनमें महीन विभेद कहां किया जा सकता है ? इसके लिए कोई सख्त फार्मूला संभव नहीं है परंतु एक लचीला परीक्षण व्यवहार्य है । तथापि, एक विनियम को केवल तभी अतर्कसंगत माना जाएगा, यदि उससे अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने के अधिकार पूरी तरह से नष्ट होते हों । किसी संस्था द्वारा बनाए जाने वाली उत्कृष्टता प्रत्यक्ष रूप से शिक्षण स्टाफ की गुणवत्ता और उनके संतुष्टि के स्तर पर निर्भर करेगी । सुचारू प्रशासन सुसाध्य बनाने के लिए यह अपेक्षित है कि प्रशासन के अधिकार में विनियामक उपायों का हस्तक्षेप किया जाए । अच्छे प्रशासन में सर्वोच्च महत्व इस बात का है कि शिक्षकों की कार्यकुशलता, अनुशासन और प्रशासन में अनुकरणीय निष्पक्षता के हित में विनियम बनाए जाएं । एक सर्वोत्तम प्रशासन ऐसा होगा जिसमें अल्पसंख्यकों की कोई छाया या रंग नही मिलेंगे । एक अल्पसंख्यक प्रशासन को अपने प्रशासन में अनुकरणीय चयनवाद से अपनी प्रतिष्ठा कायम करनी चाहिए । एक अल्पसंख्यक संस्था को मिलने वाली प्रशंसा इससे बढ़िया नहीं हो सकती है कि वह अपने अल्पसंख्यक स्वरूप के बलबूते पर कायम नही है अथवा उसकी घोषणा नहीं करता रहता । तथापि, अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित सभी प्रकार की शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश को नियंत्रित करने की प्रतिशतता का स्थिर फार्मूला एक संस्था की शैक्षणिक उत्कृष्टता के कार्यक्षेत्र में नहीं आता है और इसलिए इसे युक्तियुक्त रोक नही माना जा सकता। विधि की सही-सही प्रतिष्ठापित पी ए इनामदार(ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों के निम्नलिखित अवलाकनों से चुनी जा सकती है

> "केरल शिक्षा विधेयक में अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार में कार्यक्षेत्र और उसके दायरे पर विचार किया गया । अनुच्छेद 30(1) यह अपेक्षा नहीं करता है कि चर्चा पर आधारित अल्पसंख्यकों को केवल धर्म की शिक्षा प्रदान करने लिए ही शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करनी चाहिए अथवा यह कि भाषायी अल्पसंख्यकों को केवल अपनी भाषा का शिक्षण करने के लिए शैक्षणिक संस्था की स्थापना करनी चाहिए । अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की इच्छाओं को पूरा करने से है कि उनके बच्चे समुचित ढंग से पढ़ लिख कर उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें तथा ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों के साथ बाहरी दुनिया में जाएं जो उन्हें लोक सेवा में प्रवेश दिलाने, सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च अनुदेश देने वाली शैक्षणिक संस्थाओं के योग्य बनाए । अतः अल्पसंख्यकों के हित में अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अपेक्षित दो उद्देश्य इस प्रकार है : (i) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे अपने धर्म तथा भाषा का संरक्षण कर सके, तथा (ii) इन अल्पसंख्यक के बच्चों को संपूर्ण अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करना । जब तक संस्था उपर्युक्त दो उद्देश्यों को प्राप्त कर और प्राप्त करते हुए अपना अल्पसंख्यक स्वरूप बनाए रखती है तब तक संस्थान अल्पसंख्यक संस्था ही बनी रहेगी ।"
>
> (बल दिया गया)

अतः उक्त दोहरे परीक्षण ही अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अल्पसंख्यक का दर्जा प्रदान करने का एकमात्र परीक्षण होंगे । यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अपने समुदाय के विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने के लिए अनुच्छेद 30(1) के तहत दिए गए अधिकार अल्पसंख्यक संस्था का प्राथमिक अधिकार

है । इस दायित्व का आशय यह सुनिश्चित करना है कि संस्था अनुच्छेद 30(1) के उपर्युक्त दोहरे लक्ष्यों को प्राप्त करके अपना अल्पसंख्यक स्वरुप बनाए रखे ताकि अल्पसंख्यक समुदाय अपने धर्म तथा भाषा का संरक्षण कर सके और अपने समुदाय से जुड़े बच्चों को उचित तथा अच्छी शिक्षा दे सके । जब तक संस्था उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करते हुए अपना मूलभूत स्वरुप बनाए रखेगा तब तक वह अल्पसंख्यक संस्था बनी रहेगी । अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत प्राप्त संरक्षण के प्रावधान का लाभ उठाने के लिए इसके अल्पसंख्यक स्वरुप को बनाए रखने आवश्यकता को महत्व देते हुए यह जरुरी है कि संस्था की स्थापना का उद्देश्य विफल न हो जाए । इससे, अल्पसंख्यक समुदाय का अधिक तथा बहुतायत में प्रवेश करने तथा अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े विद्यार्थियों को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में प्रवेश दिलाने के आधार पर अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की पहचान संबंधी मानदंडों को, उपर्युक्त दोहरे परीक्षण ने निर्विवाद रुप से अस्वीकृत कर दिया है । ऐसा अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की पहचान करने के लिए लगता है कि, ऐसा कोई कठोर फार्मूला नहीं है जिसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों पर लागू किया जा सके । टी.एम.ए पाई मामले(ऊपर) में बल दिए जाने वाले बिन्दु की यह विवेचना की गई है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का यह दायित्व है कि वह उस राज्य, जिसमें संस्था स्थापित है में रह रहे अल्पसंख्यक समूह के विद्यार्थियों को बहुतायत में प्रवेश दिलाए । अतः अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को उस राज्य के अल्पसंख्यकों की आवश्यकताओं को पहले प्राथमिकता देनी चाहिए जहां संस्था स्थापित है । यदि ऐसा नहीं होता है तो शैक्षणिक संस्था की स्थापना का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि जिस राज्य में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था स्थापित है उस राज्य से अल्पसंख्यक विद्यार्थियों की बहुतायत होनी चाहिए । ऐसी संस्थाओं का प्रबंधन, अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत दिए गए संवैधानिक संरक्षण की आड़ में निकटवर्ती राज्य के उन अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को बहुतायत में प्रवेश दिलाने जैसी युक्ति का सहारा नहीं ले सकता जो विद्यार्थी उस राज्य में बहुमत में हैं , ऐसा करना संविधान के साथ धोखा करना होगा । इससे लगता है कि अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को इस तरह से प्रवेश देना संबंधित संस्था के अल्पसंख्यक स्वरुप का उल्लंघन होगा ।

यह सुस्थापित है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था मुख्य रुप से उस अल्पसंख्यक समुदाय के लिए है जिसने इसकी स्थापना की है । टी.एम.ए. पाई मामले में उच्चतम न्यायालय के निदेशों के अनुसार संबंधित राज्य सरकार द्वारा अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में प्रवेश पर नियंत्रण रखने के प्रतिशत के निर्धारण के अभाव में, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में प्रवेश के इच्छुक उस राज्य के अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े विद्यार्थी सामान्यतः उस राज्य में अपनी आबादी के अनुरूप होंगे । गैर- अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को प्रवेश देने से मना कर देना जिनसे शैक्षणिक संस्था संबंध रखता है, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप का अल्लंघन माना जाएगा ।

पी. ए. इनामदार के मामले (ऊपर) में यह निर्णय दिया गया कि सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के पास अल्पसंख्यक समूह से जुड़े विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने के अधिकार के साथ साथ गैर अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को उचित सीमा तक प्रवेश देना होगा ताकि अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत दिए गए अधिकार पूर्ण रूप से बाधित न हो तथा यह भी कि अनुच्छेद 29(2) के अंतर्गत नागरिकों को दिए गए अधिकारों का उल्लंघन न हो । टी.एम.ए पाई के मामले(ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित अभ्युक्ति के अनुसार 'उचित सीमा क्या होगी यह कई घटकों पर निर्भर करती है और एक विशिष्ट प्रतिशत के निर्धारण की सलाह नहीं दी जा सकती । संस्था के प्रकार तथा ऐसी शिक्षा पद्धति जो संस्थान में दी जा रही है के अनुसार स्थितियां अलग-अलग होंगी । हालांकि आमतौर पर स्कूल

के स्तर पर सभी सीटें अल्पसंख्यक समूह के विद्यार्थियों से भरी जानी संभव हो सकती हैं परन्तु उच्च स्तर पर चाहे वह कॉलेज अथवा तकनीकी संस्थान हो, सभी सीटों को अल्पसंख्यक समूह के विद्यार्थियों से भरा जाना संभव नहीं हो सकता ।'

अतः अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में अल्पसंख्यक समूह के विद्यार्थियों का प्रवेश कई घटकों पर निर्भर होता है जैसे कि संस्थान किस तरह का है प्राथमिक, सैकेण्डरी, उच्च स्कूल अथवा व्यावसायिक है अथवा इसके अलावा उस राज्य में उस समुदाय की आबादी तथा उस क्षेत्र की शैक्षणिक आवश्यकता जहां संस्था स्थापित है । इन सभी घटकों को ध्यान में रखते हुए ही राज्य सरकार एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में, अल्पसंख्यक तथा गैर अल्पसंख्यक विद्यार्थियों का न्यूनतम प्रवेश निर्धारित कर सकती है ।

इस स्थिति में हमें यह स्पष्ट करना होगा कि आयोग के पास अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में अल्पसंख्यक समूह के विद्यार्थियों के प्रवेश को नियंत्रित करने वाली प्रतिशतता का निर्धारण करने की शक्ति नहीं है । यह कार्य संबंधित राज्य सरकार का है । याचिकाकर्ता संस्था के विरूद्ध यह दर्शाने तथा सुझाव देने की ऐसी कोई शिकायत नहीं है कि इसने गैर अल्पसंख्यक समुदाय के विधार्थी को प्रवेश दिलाने के लिए ईसाई समुदाय के किसी विद्यार्थी को प्रवेश देने से मना कर दिया । राज्य सरकार द्वारा अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में ईसाई समुदाय के विधार्थियों के प्रवेश को नियंत्रित करने संबंधी व्यावहारिक तथा उचित प्रतिशतता के उपर्युक्तानुसार निर्धारण के अभाव में, हम यह निर्णय देने में असमर्थ हैं कि याचिकाकर्ता संस्था ने अपना अल्पसंख्यक स्वरूप खो दिया है ।

इस मामले को दूसरे दृष्टिकोण से देखा जा सकता है । यदि किसी राज्य सरकार ने अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान करने के लिए अल्पसंख्यक संस्था में प्रवेश प्राप्त अल्पसंख्यक विद्यार्थियों की पहचान स्वरूप 50% अथवा उससे अधिक मानदंड निर्धारित कर दिए हैं तो राज्य सरकार द्वारा इस तरह की प्रतिशतता का निर्धारण, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को राज्य के भीतर ही उस अल्पसंख्यक समुदाय के ऐसे 50% विद्यार्थियों को प्रवेश देने के लिए बाध्य करता है जिस अल्पसंख्यक समुदाय से संस्थान संबंध रखता है । प्रश्न यह है कि राज्य के भीतर से ही उस समुदाय के विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने की न्यूनतम 50% सीमा जैसी स्थिर प्रतिशतता का निर्धारण क्या अव्यावहारिक, अनुचित तथा दुसाध्य तथा साथ ही उन अधिकारों के प्रतिकूल नहीं होगा जो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को मिले होते हैं ।

यहां यह पुनः उल्लेख किया जा सकता है कि टी.एम.ए. पाई(ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि संबंधित संस्था में अल्पसंख्यक विद्यार्थियों की संख्या कई घटकों पर निर्भर करती है जैसे कि संस्थान किस तरह का है, प्राथमिक, सैकेण्डरी, उच्च स्कूल अथवा कॉलेज अथवा इसके अलावा उस राज्य में उस समुदाय की आबादी तथा उस क्षेत्र की आवश्यकता, जहां संस्था स्थापित है । इन घटकों को ध्यान में रखकर ही सरकार अल्पसंख्यक तथा गैर अल्पसंख्यक विद्यार्थियों का न्यूनतम प्रवेश निर्धारित कर सकती है । उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि "उचित सीमा क्या होगी यह कई घटकों पर निर्भर करेगी और कोई विशिष्ट प्रतिशतता निर्धारित करना उपयुक्त नहीं होगा । उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को 50% तक अनिवार्य रूप से प्रवेश देने की शर्त लगाकर अल्पसंख्यक संस्थाओं पर 50% की सीमा नहीं लगाई जा सकती । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में विद्यार्थियों के प्रवेश के मामले में प्राइमरी से लेकर कॉलेज तक के सभी तरह की शैक्षणिक संस्थाओं के संबंध में तथा समूचे राज्य के लिए एक समान सीमा निर्धारित करते हुए कोई सामान्य नियम अथवा विनियम नहीं हो सकते हैं ।

जैसा कि पहले कहा गया कि उड़ीसा राज्य में ईसाइयों की आबादी मोटे तौर पर 2439% है यह सभी जानते हैं कि ईसाई समुदाय द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थाओं में वे अपने प्रयासों के बावजूद भी अपने खुद के समुदाय से 50% दाखिला आरक्षित कर पाने में सफल नहीं हो सकते हैं । मामले को इस नजरिए से देखते हुए उड़ीसा का ईसाई समुदाय संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत प्रत्याभूत अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित तथा संचालित करने के अपने अधिकार को खो देगा । निश्चित रूप से , यदि 50% के निर्धारित फार्मूले पर ही अड़िग रहा जाए तो उड़ीसा का ईसाई समुदाय अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत उक्त अधिकार से वंचित हो जाएगा । ईसाई समुदाय, अपने समुदाय से 50% विद्यार्थियों का प्रवेश कदापि नहीं कर पाएगा क्योंकि विद्यार्थियों की इतनी संख्या उसे उपलब्ध नहीं होगी । उक्त निर्धारित फार्मूले की अव्यावहारिकता के स्पष्टीकरण में हम एक उदाहरण दे सकते हैं । मान लो एक प्रदत्त शैक्षिक वर्ष 2007-08 में ईसाई समुदाय द्वारा चलायी जा रही संस्था अपने समुदाय से 50% प्रवेश कर पाने में सफल होता है, तो वह उस शैक्षिक वर्ष में अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए सक्षम एक धार्मिक अल्पसंख्यक होगा । अगले शैक्षिक वर्ष 2008-09 के लिए हो सकता है वह अपने समुदाय से 50% प्रवेश कर पाने में सफल न हो सके तो उस शैक्षिक वर्ष के लिए अनुच्छेद 30(1) में प्रत्याभूत अधिकार को खो देगा । अगले शैक्षिक वर्ष 2009-10 में हो सकता है कि वह अपने समुदाय से 50% प्रवेश करने में सफल हो जाए और उसका अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का स्वरूप फिर से बहाल हो जाए । क्या उड़ीसा के ईसाई समुदाय द्वारा स्थापित कोई शैक्षणिक संस्था ऐसी स्थिति में अपने कार्यों को चला पाएगी । इसका केवल एक ही सशक्त उत्तर हमारे सामने आता है वह है 'नही' । एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में विद्यार्थियों का प्रवेश नियंत्रित करने संबंधी प्रतिशतता के उपर्युक्त निर्धारित फार्मूले से शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा प्रबंधन के अधिकार का पूरी तरह से अभ्यर्पण होता है तथा यह अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित संवैधानिक प्रत्याभूत से असंगत भी है । हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की पहचान का उपर्युक्त परीक्षण न केवल दुसाध्य, अव्यवहार्य है बल्कि ऐसा घटक भी है जो लगातार बदलता भी रहता है । यह एक अनुचित प्रतिबंध भी है जो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधिदेश के अनुसार तथा इस क्षेत्र को संचालित करने वाले न्यायिक पूर्व उदाहरणों के आधार पर पूर्णतया अनुज्ञेय है । जैसे कि अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों पर विचार करने वाली सलाहकार समिति के अध्यक्ष के रूप में सरदार पटेल ने कहा था कि "जब तक संविधान आज की तारीख तक वर्तमान स्वरूप में है, तब तक इन अधिकारों के साथ छेड़छाड़ करने की कोई अनुमति नहीं दी जा सकती । ऐसा करने के किसी भी प्रयास से न केवल विश्वास भंग होगा बल्कि यह संवैधानिक रूप से अननुज्ञेय होगा तथा न्यायालय द्वारा हटा दिए जाने के लिए भी दायी होगा"(दिनांक 27.2.1947 को उनके द्वारा दिए गए भाषण का सार) । इस प्रकार, अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित सभी प्रकार की शैक्षणिक संस्थाओं में अल्पसंख्यक विद्यार्थियों के प्रवेश पर एक समान सीमा लगाने से, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्था चलाने में अल्पसंख्यकों की स्वायत्तता के संवैधानिक संरक्षण का स्पष्ट खंडन होता है । हमे इस संरक्षण का विस्तार करने की जरूरत नही है परन्तु हम शब्दों से प्राप्त स्वाभाविक संरक्षण को कम भी नहीं कर सकते । तत्पश्चात् हम यह पाते तथा निर्णय देते हैं कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में अल्पसंख्यक समुदाय का प्रवेश नियंत्रित करने संबंधी प्रतिशत्तता के निर्धारण के अनन्यता मानदंडों को ऐसी संस्था के अल्पसंख्यक दर्जे का निर्धारण करने वाले सूचकांक में शामिल नहीं किया जा सकता ।

यहां यह कहने की आवश्कता नहीं कि अनुच्छेद 30(1) के संवैधानिक संरक्षण का दावा करने के लिए धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने वाली अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को यह अवश्य दर्शाना चाहिए

कि वह अल्पसंख्यक समुदाय अथवा उसके व्यापक हिस्से के हितों की कई तरह से पूर्ति करता है अथवा उसका संवर्धन करता है । इस तरह के प्रमाण के बिना संस्था तथा अल्पसंख्यक के बीच उस तरह का संबंध स्थापित नहीं हो पाएगा । ए.पी. क्रिस्टियन मेडिकल एसोसिएशन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, एआईआर1986 एस सी 1490 में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि " महत्त्वपूर्ण यह है तथा अनिवार्य यह है कि कुछ वास्तविक सकारात्मक ऐसे संकेत होने चाहिए जिससे कि किसी संस्था की पहचान, अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक संस्था के रूप में हो सके"। हमने पहले ही यह मान लिया है कि याचिकाकर्ता स्कूल अल्पसंख्यक समुदाय अर्थात ईसाई समुदाय द्वारा स्थापित तथा संचालित था जो उस उड़ीसा राज्य में निर्विवाद रूप से धार्मिक अल्पसंख्यक है जहां स्कूल स्थित है । हमने यह भी माना है कि उक्त स्कूल में विद्यार्थियों का प्रवेश, उसके अल्पसंख्यक स्वरूप का उल्लंघन नहीं है । परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता स्कूल, अनुच्छेद 30(1) के संवैधानिक संरक्षण का दावा करने का पात्र है ।

उपर चर्चा किए गए कारणों से हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि बकले प्राइमरी स्कूल द्वारा चलाया जा रहा बकले प्राइमरी स्कूल, मिशन रोड़ पी.ओ. बक्सीबाजार, जिला-कटक, उड़ीसा धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त करने का पात्र है । तत्पश्चात् बकले प्राइमरी स्कूल को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम के राष्ट्रीय आयोग की धारा 2(च) के अर्थ के भीतर अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रूप में घोषित किया जाता है । तदनुसार एक प्रमाणपत्र जारी किया जाए ।

2010 का मामला सं. 360

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान द्वारा महिला कॉलेज की स्थापना करने के लिए राज्य से निर्देश मांगने संबंधी याचिका

याचिकाकर्ता : सोशल सोसाइटी, मोरबा, ए/पी मोरबा, ताल मगांव, जिला रायगढ़, महाराष्ट्र

प्रतिवादी : प्रधान सचिव, उच्चतर एवं तकनीकी शिक्षा विभाग,महाराष्ट्र सरकार, मंत्रालय, मुम्बई महाराष्ट्र ।

सोशल सोसाइटी, मोरबा, मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित एक पंजीकृत सोसाइटी है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा जारी दिनांक 23.7.09 के प्रमाणपत्र सं. 2009/949/पी के/39/2009/के ए के तहत इसे अल्पसंख्यक संस्था के रूप में प्रमाणित किया गया है । मुम्बई विश्वविद्यालय द्वारा जारी तथा दिनांक 18.8.2007 के समाचार पत्र 'लोकमत' (दैनिक) में प्रकाशित विज्ञापन के अनुसरण में महिला डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए न्यासियों/सोसाइटियों से प्रस्ताव आमंत्रित किए गए, याचिकाकर्ता ने निर्धारित फार्मेट में मुम्बई विश्वविद्यालय को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया तथा 30,000/-रु. मुम्बई विश्वविद्यालय में जमा कराए। प्रस्ताव की जांच के बाद, मुंबई विश्वविद्यालय ने प्रस्तावित महिला कॉलेज की स्थापना के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1994 की धारा 82(5) के तहत याचिकाकर्ता को अनुमति देने की सिफारिश करते हुए याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को राज्य सरकार के पास भेज दिया परन्तु राज्य सरकार से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । इसके बाद याचिकाकर्ता ने प्रस्तावित महिला कॉलेज की स्थापना के लिए दिनांक 30.10.08 तथा 30.10.09 को दो अलग प्रस्ताव मुम्बई विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किए । इन आवेदनों को महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1994 की धारा 82(5) के तहत अपेक्षित अनुमति देने की सिफारिश करते हुए राज्य सरकार को भी भेजा गया परन्तु अभी तक राज्य सरकार से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । उल्लेखनीय है कि याचिकाकर्ता सोसाइटी के पास प्रस्तावित महिला कॉलेज की स्थापना के लिए संरचनात्मक तथा अनुदेशात्मक सुविधाएं मौजूद हैं तथा महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82(5) के तहत अपेक्षित

अनुमति प्रदान न करने की राज्य सरकार की निक्रियता संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।अतः याचिका दी गई है ।

बार-बार नोटिस देने के बावजूद प्रतिवादी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी के विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

यहां विचारार्थ प्रश्न है कि क्या प्रस्तावित महिला डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 82(5) के तहत अनुमति प्रदान न करने में सरकार की आक्षेपित निक्रियता से संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है ?

केरल शिक्षा विधेयक, 1957 (एआई आर 1958 एस सी 959) के साथ प्रारंभ करते हुए तथा पी ए इनामदार और अन्य बनाम् महाराष्ट्र राज्य तथा अन्य (2005) 6 एससी सी 537 द्वारा पराकाष्ठा तक पहुँचते हुए उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों की एक लंबी श्रृंखला के आधार पर मौजूदा रुप में विधि का निर्धारण किया है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) पर आधारित निर्णय विधि के सम्पूर्ण ढांचे को केरल शिक्षा विधेयक मामले में सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को "उनकी पसन्द" की शैक्षणिक संस्था की स्थापना तथा प्रशासन का मौलिक अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30(1) का मूलाधार अल्पसंख्यकों को उनकी पसन्द की शैक्षणिक संस्था के संचालन के लिए संरक्षण प्रदान करना है । इन अधिकारों को उनके उल्लंघन के विरद्ध प्रतिबंध द्वारा संरक्षित किया गया है तथा इन्हें प्रवर्तन के वचन द्वारा समर्थन दिया गया है । यह प्रतिबंध अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट है, जो कि संविधान के अध्याय-।।। के अधीन प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों में से किसी को कम या सीमित करने के लिए, किसी विधि या नियम या विनियम को बनाने से राज्य को रोकता है तथा इससे असंगत पाए गए किसी विधि,नियम या विनियम को वीटो करने की धमकी देता है ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1974 एस सी 1389 के मामले में उच्चतम न्यायालय के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय ''राष्ट्र के विवेक को है तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों के अलावा भाषाई अल्पसंख्यकों के बच्चों को देश का संपूर्ण पुरूष या महिला बनाने के लिए उन्हें सर्वोतम शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उन्हें अपनी पंसद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना तथा प्रशासन में रोका नहीं गया है । देश की अखंडता और एकता को बनाए रखने तथा मजबूत करने के लिए अनुच्छेद 30 के अधीन अल्पसंख्यकों को यह संरक्षण प्रदान किया गया है। सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा का दायरा, हमारे देश के बालकों और बालिकाओं में समान्यता के विकास के लिए अभीष्ट है । यह शिक्षा के माध्यम के द्वारा स्वाधीनता, समानता तथा बन्धुत्व का वास्तविक अभिप्राय है। यदि धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को, उनकी पसंद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना और संचालन के लिए अनुच्छेद 30 के अधीन संरक्षण नहीं दिया जाता है तो वे स्वयं को अलग-अलग और पृथक महसूस करेंगे। सामान्य धर्म-निरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।"

आर ईः केरल शिक्षा विधेयक(ऊपर) के मामले में एस.आर.दास. सी.जे. ने निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

'' संविधान के अनुच्छेद 30(1) का सच्चा अर्थ और विवक्षा समझने की कुंजी 'अपनी पसंद' के शब्दों में निहित है । यह कहा गया है कि प्रभावी शब्द 'पसंद' है और इस अनुच्छेद की अंतर्वस्तु उतनी ही व्यापक है जितनी कि किसी अल्पसंख्यक समुदाय विशेष की पसंद इसे बना सके ।"

सेंट स्टीफन्स कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय(1992)1 एससीसी558 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि 'अपनी पसंद के' शब्द, अल्पसंख्यकों के लिए, जो भी शैक्षिक संस्थाएं वे स्थापित करना चाहें उनके स्वरुप का चयन करने के व्यापक विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के लिए संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं ताकि सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान की जा सके या दोनों प्रयोजनों को पूरा किया जा सके ।''

इस परिस्थिति में, पी ए ईनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धत करना उपयोगी होगा :-

> ''..... अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की इच्छाओं को पूरा करने से है कि उनके बच्चे समुचित ढंग से पढ़ लिख कर उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें तथा ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों के साथ बाहरी दुनिया में जाएं जो उन्हें लोक सेवा में प्रवेश दिलाने, सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च अनुदेश देने वाली शैक्षणिक संस्थाओं के योग्य बनाए । अतः अल्पसंख्यकों के हित में अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अपेक्षित दो उद्देश्य इस प्रकार है :
>
> (i) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे अपने धर्म तथा भाषा का संरक्षण कर सके, तथा (ii) इन अल्पसंख्यक के बच्चों को संपूर्ण अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करना । जब तक संस्था उपर्युक्त दो उद्देश्यों को प्राप्त कर और प्राप्त करते हुए अपना अल्पसंख्यक स्वरूप बनाए रखती है तब तक संस्थान अल्पसंख्यक संस्था ही बनी रहेगी ।''

इस प्रकार, ''उनकी पसन्द के'' शिक्षण संस्थाओं की स्थापना के अधिकार का अर्थ ऐसी वास्तविक संस्थाओं की स्थापना का अधिकार है जो कि उनके समुदाय तथा विद्यार्थियों जो अपनी शैक्षणिक संस्थाओं का सहारा लेते हैं, की आवश्यकताओं को प्रभावकारी तरीके से पूरा करेगी (ए आई आर 1958 एस सी 956 देखें) । इस समय परिस्थिति ऐसी है कि एक शैक्षणिक संस्था मान्यता के बिना संभवतः विद्यमान रहने और प्रभावकारी तरीके से कार्य करने की उम्मीद नहीं कर सकती, न ही यह विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्धता के बिना डिग्रियां प्रदान कर सकती है । हालांकि, अल्पसंख्यक, अपनी भाषा और संस्कृति के संरक्षण के लिए एक अनुकूल वातावरण में अपने बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन करते हैं, तथापि वह उनका एकमात्र लक्ष्य नहीं है । वे यह भी आकांक्षा करते है कि उनके विद्यार्थी जीवन में उपयोगी करियर के लिए अच्छी तरह से तैयार हों ।''

अतः जैसा कि पहले कहा गया है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रदत्त अधिकारों के अर्थपूर्ण प्रयोग का तात्पर्य उन प्रभावी शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित करने के अधिकार से होना चाहिए जो इन पर निर्भर अल्पसंख्यकों तथा विद्यार्थियों की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक हो सकें । राज्य अथवा विनियामक प्राधिकरण को विनियम निर्धारित करने की अनुमति है, तथा किसी भी अल्पसंख्यक संस्था द्वारा संबद्धता तथा मान्यता चाहने तथा बनाए रखने से पहले इन विनियमों का पालन करना चाहिए परन्तु ऐसे विनियमों से संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए । इस प्रकार दो उद्देश्यों के बीच संतुलन बनाए रखना होता है- यह कि संस्थान की उत्कृष्टता के मानक सुनिश्चित रहें तथा यह कि अपनी शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित तथा संचालित करने के लिए अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण बना रहे । इन दोनो उद्देश्यों को सम्मिलित तथा समायोजित करने वाले विनियमों को विसंगत समझा गया (देखें टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य)2002(8)

एससीसी 481) । टी एम ए पाई फाउंडेशन मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि संबद्धता तथा मान्यता प्रत्येक ऐसे संस्थान के लिए उपलब्ध करानी होगी जो ऐसी संबद्धता तथा मान्यता प्राप्त करने के लिए शर्तों को पूरा करते हैं । इसके अलावा, अल्पसंख्यकों को अनुच्छेद 30 द्वारा प्रदत्त अधिकार विधायिका और कार्यपालिका को यह कर्त्तव्य आक्षेपित करते हैं कि वह ऐसी कोई विधि बनाने तथा कोई भी कार्यकारी कार्रवाई करने से बचें जिससे उनके अधिकारों में कमी आती हो ।

उच्चतम न्यायालय द्वारा पृष्ठ 990 पर ए आइ आर 1958 एससी 956 में दिए गए निर्णय में यह टिप्पणी की गई है कि संविधान अल्पसंख्यकों को दो सुस्पष्ट अधिकार प्रदान करता है, एक सकारात्मक और अन्य नकारात्मक, अर्थात् (i) कि राज्य की अल्पसंख्यक, धार्मिक अथवा भाषाई सहित सभी शैक्षणिक संस्थाओं को सहायता अथवा मान्यता के मामले में उनसे समान व्यवहार करने की सकरात्मक बाध्यता; और (ii) कि राज्य को उन संस्थाओं के संबंध में उनकी स्थापना को निषिध न करने अथवा उनके प्रशासन में हस्तक्षेप न करने की नकरात्मक बाध्यता है ।

यहां इस मामले की दूसरे दृष्टिकोण से जांच की जा सकती है । विकास की संकल्पना का वर्णन करते हुए, प्रो. अमर्त्य सेन ने कहा कि महिला सशक्तिकरण, विकास के प्रमुख मुद्दों में से एक है और इनमें से एक पहलु में महिलाओं की शिक्षा शामिल है । शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े समुदाय, मुस्लिम समुदाय के लिए महिला शिक्षा का प्रश्न कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, उन्नी कृष्णन जे.पी. बनाम आंध्रप्रदेश राज्य ए आई आर 1993 एस सी 2178 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि शिक्षा ज्ञानोदय है । यह व्यक्ति को मान-मर्यादा प्रदान करती है । शिक्षा का मूल उद्देश्य हर समय तथा सभी स्थानों में समान है । यह मानव व्यक्तित्व को शारीरिक विकास की कृत्रिम प्रक्रिया मन के संवर्धन मनोभावों के परिष्कार तथा अन्तरात्मा के प्रदीपन के माध्यम से पूर्णता के प्रतिमान के रुप में रुपान्तरित करती है । शिक्षा, जीवन निर्वाह के लिए और जीवन के लिए एक तैयारी है । एक लोकतांत्रिक सरकार व्यवस्था में, जिसे बनाए रखने के लिए जनसाधारण का जागरुक होना जरुरी है, शिक्षा एक ही समय में सामाजिक और राजनैतिक आवश्यकता है । अतः उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत जीवन के अधिकार से ही शिक्षा का अधिकार निकलता है । मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य एआईआर 1992 एससी 1858 मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा इससे मिलती जुलती राय प्रकट की गई थी। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि राज्य शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित करने के लिए बाध्य है ताकि नागरिक उक्त अधिकार का उपयोग करने में समर्थ हों । राज्य अपनी बाध्यता को राज्य के स्वामित्व या राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के माध्यम से पूरा कर सकता है । जब राज्य सरकार निजी शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करती है तो वह संविधान के अन्तर्गत अपनी बाध्यता को पूरी करने के लिए एक एजेन्सी सृजित करती है । इस प्रकार, राज्य सरकार की अपने नागरिकों के लिए सभी स्तरों पर शैक्षणिक सुविधाएं मुहैया करने के लिए, प्रयास करने हेतु बाध्यता है । तत्कालिक मामले में, राज्य सरकार ने, महिला डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता को अनुमति देने से मना करके संविधान के अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन किया है ।

यहां यह कहने की आवश्यकता नही कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार, नागरिकों के मूल अधिकारों की अभिरक्षक है, राज्य सरकार का यह संवैधानिक दायित्व है कि वह अपने नागरिकों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए, अल्पसंख्यक समुदाय की पसन्द तथा आवश्यकता पर विचार करे । प्रशासनिक और वित्तीय असुविधा या कठिनाइयां, मूल अधिकार के

उल्लंघन को औचित्यपूर्ण सिद्ध नहीं कर सकती । जैसे कि पहले बताया गया कि मुम्बई विश्वविद्यालय प्रस्तावित महिला डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82(5) के तहत अनुमति प्रदान करने की सिफारिश करते हुए लगातार तीन वर्षों से याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को राज्य सरकार को भेज रहा है । परन्तु राज्य सरकार इस पर रहस्यमयी चुप्पी साधे हुए है । सोसाइटी के अध्यक्ष, डॉ. एस.ओ. धानसे द्वारा प्रस्तुत हल्फनामें से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि प्रस्तावित कॉलेज की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता सोसाइटी के पास सभी अवसंरचनात्मक तथा अनुदेशात्मक सुविधाएं मौजूद हैं । मामले को इस नजरिए से देखते हुए प्रस्तावित डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82(5) के तहत याचिकाकर्ता को अनुमति प्रदान न करने की राज्य सरकार की आक्षेपित निक्रियता से संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है ।

पूर्वोल्लिखित कारणों को देखते हुए, आयोग दृढ़ता से राज्य सरकार से सिफारिश करता है कि वह शैक्षिक वर्ष 2010-11 के लिए मुम्बई विश्वविद्यालय की सिफारिशों के अनुसार प्रस्तावित महिला डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय की धारा 82(5) के तहत याचिकाकर्ता को अनुमति प्रदान करे ।

2008 का मामला सं. 233

अल्पसंख्यक संस्था द्वारा पदों आदि की मंजूरी के लिए राज्य से निदेश मांगने संबंधी याचिका

याचिकाकर्ता : सईद सेमिनरी, कटक, उड़ीसा ।

प्रतिवादी : प्रधान सचिव, स्कूल तथा जन शिक्षा विभाग, उड़ीसा सरकार, उड़ीसा सचिवालय, भुवनेश्वर

इस याचिका के माध्यम से सईद सेमिनरी उच्च स्कूल, कटक के प्रबंधन ने वर्ष 2003 में राज्य सरकार द्वारा समाप्त प्राध्यापकों के 10 मंजूरशुदा पदों की पुनः बहाली करने, स्कूल के स्टाफ को चिकित्सा तथा मकान किराया सुविधाएं प्रदान करने, प्रधानाध्यक्ष तथा उर्दू एवं पर्शियन में दो प्राध्यापक तथा एक पी.ई.टी की नियुक्ति की स्वतंत्रता देने, याचिकाकर्ता संस्था की अल्पसंख्यक संस्था के रूप में घोषणा करने तथा उच्च सैकेण्डरी स्तर तक संस्थान का उन्नयन करने की अनुमति प्रदान करने के संबंध में अपनी शिकायतों के निवारण के लिए उड़ीसा सरकार से निदेश मांगे ।

संक्षेप में कहें तो मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना वर्ष 1913 में की गई थी और इसका संचालन मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा किया जाता है । याचिकाकर्ता संस्था की अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था होने की घोषणा उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा की गई है । यह स्कूल सहायता प्राप्त स्कूल है जिसमें लगभग 700 विद्यार्थी हैं, यह परम्परागत विषयों के रूप में उड़ीसा तथा संस्कृत पढ़ाने के अलावा यह अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को कक्षा IV से X तक पहली भाषा के रूप में उर्दू तथा परम्परागत भाषा के रूप में पर्शियन पढ़ाकर इनकी आवश्कताओं को भी पूरा करता है । स्कूल के पास राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार 24 मंजूरशुदा पद थें । आश्चर्य है कि सरकार ने केवल 14 पदों को ही अनुमोदित किया और 10 मंजूरशुदा पदों को समाप्त कर दिया । इस प्रकार, बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद सभी मंजूरशुदा पदों के लिए राज्य सरकार का अनुमोदन न मिलने पर प्रबंध समिति ने इस आशा और

विश्वास के साथ प्राध्यापकों की नियुक्ति कर दी कि उनकी सेवाओं को यथासमय नियमित कर दिया जाएगा परन्तु याचिकाकर्ता तब स्तब्ध तथा हैरान रह गया जब सरकार ने प्रधानाध्यक्ष तथा उर्दू एवं पर्शियन प्राध्यापकों सहित शिक्षक स्टाफ के 8 पद समाप्त कर दिए । दिनांक 16.9.2005 को स्कूल इंस्पेक्टर ने खाली पदों पर उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों की नियुक्ति के अनुमोदन की सिफारिश करते हुए सैकेण्डरी शिक्षा निदेशक, भुवनेश्वर को एक ज्ञापन भेजा । हालांकि राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने स्कूल इंस्पेक्टर की सिफारिशों के संदर्भ में कोई अपेक्षित आदेश जारी नहीं किए। यह अभिकथित है कि मुजूरशुदा पदों को समाप्त करने की राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई से संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है ।

नोटिस देने के बावजूद, राज्य सरकार ने उत्तर नहीं दिया । 13.6.2009 को संयुक्त सचिव, उड़ीसा सरकार, स्कूल तथा जन शिक्षा विभाग ने उत्तर फाइल करने के लिए छः महीने का समय इस आधार पर मांगते हुए आयोग को पत्र लिखा कि राज्य सरकार की अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने तथा अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण पत्र जारी करने के लिए नीति संबंधी निर्णय लिया जाना है ।

दिनांक 16.6.2009 को सुनवाई के लिए मामला उठा । उड़ीसा सरकार, स्कूल तथा जन शिक्षा विभाग के संयुक्त सचिव के दिनांक 13.6.2009 के पत्र पर भी विचार किया गया और अनुमति प्रदान करने के संबंध में इस तरह के लम्बे स्थगन देने जैसा कोई औचित्य आयोग को नजर नहीं आया । हालांकि बहस के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अपनी याचिका को प्रधानध्यक्ष तथा उर्दू और पर्शियन भाषा के प्राध्यापकों की नियमित नियुक्ति से जुड़ी मद सं. 2,3 तथा 4 पर राहत प्राप्त करने तक ही सीमित रखा ।

चूंकि याचिकाकर्ता ने उपरोक्तानुसार सीमा तक ही राहत मांगी थी, आयोग ने दिनांक 16.6.2009 के आदेश द्वारा अपने सचिव को निदेश दिया कि वे याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई उपर्युक्त तीन राहतों के संबंध में संयुक्त सचिव, उड़ीसा सरकार, स्कूल तथा जन शिक्षा विभाग से उनके विचार प्राप्त करने के लिए उन्हें अर्द्ध-शासकीय पत्र लिखा जाए तथा दिनांक 5.8.2009 तक मामले को स्थगित कर दिया ।

हालांकि, इससे पहले किसी आदेश की घोषणा हो, राज्य सरकार से जवाब प्राप्त हो गया । अपने उत्तर में प्रतिवादियों ने यह माना कि याचिकाकर्ता, मुस्लिम समुदाय द्वारा संचालित सहायता प्राप्त एक शैक्षणिक संस्था है तथा यह कि उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों के दो तथा प्रधानाचार्य का एक स्वीकृत पद 1.4.2001 से पहले रिक्त पड़े थे । यह अभिकथित है कि मध्यावधि के वित्तीय सुधार के तौर पर उड़ीसा सरकार ने वर्ष 2000 में सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के रिक्त पदों को समाप्त करने का नीति संबंधी निर्णय लिया था और तदनुसार दिनांक 01.04.2001 की स्थिति के अनुसार सहायता प्राप्त उच्च स्कूलों में खाली पड़े 305 पदों को समाप्त कर दिया गया जिसमें याचिकाकर्ता स्कूल में प्रधानाध्यापक का पद तथा उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों के दो पद भी शामिल थे । यह भी अभिकथित है कि प्राध्यापकों के दो पद समाप्त करने के बावजूद उक्त स्कूल की प्रबंध समिति ने सरकार की पूर्व अनुमति लिए बिना प्राध्यापकों की नियुक्ति कर दी । आगे यह भी अभिकथित है कि प्राध्यापक संस्था ने समाप्त पदों को पुनः प्राप्त करने की अपनी मांग पेश की है क्योंकि पदों के समाप्त होने की वजह से उनके संस्थान में शिक्षण संबंधी कठिनाईयां आ रही थी और इस प्रकार वित्त विभाग को सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं में समाप्त पदो को फिर से बहाल करने का प्रस्ताव भेजा गया । आगे यह अभिकथित है कि वित्त विभाग से सहमति

प्राप्त करने के बाद ही याचिकाकर्ता स्कूल में उर्दू प्राध्यापक तथा प्रधानाध्यापक की नियुक्ति की मांग पर विचार किया जा सकता है ।

उक्त उत्तर की एक प्रति प्रत्युत्तर के लिए याचिकाकर्ता को भेजी गई, प्रत्युत्तर में यह अभिकथित है कि दिनांक 31.3.1982 तथा 31.7.2000 को अर्थात पद समाप्ति के आदेश की घोषणा से पूर्व प्राध्यापकों के दो पद रिक्त थे परन्तु प्रतिवादी ने जानबूझकर बिना कोई कारण बताए इन पदों को नहीं भरा । यह भी अभिकथित है कि प्रधानाध्यापक का पद 2.6.1993 से रिक्त पड़ा हुआ है तथा वर्तमान में पदधारी श्रीमती संजुक्ता भोल की नियुक्ति प्रधानाध्यापक के रूप में दिनांक 01.2.2008 को प्रबंध समिति द्वारा की गई थी और इनके इस पद का अनुमोदन स्कूल इंस्पेक्टर कटक द्वारा किया गया था और तब से वह प्रधानाध्यापक के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर रही हैं परन्तु सरकार ने उनकी नियुक्ति का अनुमोदन नहीं दिया है और उन्हें प्रधानाध्यापक का वेतनमान देने की अनुमति नहीं दी है ।

यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी द्वारा वित्तीय सुधार की आड़ सिर्फ छलावा मात्र है और यह कि उड़ीसा सरकार ने वित्तीय सुधारों के नाम पर वर्ष 2003 में कुछ पदों को समाप्त कर दिया था परन्तु सरकार द्वारा याचिकाकर्ता संस्था के पदों को 2003 के वित्तीय सुधार संबंधी आदेश जारी करने के काफी पहले तक भी भरा नहीं था । यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि स्कूल इंस्पेक्टर कटक ने मो. अनवर आलम तथा श्री दिलावर हुसैन की प्रधानाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति का अनुमोदन किया और वे प्रधानाध्यक्ष का वेतन प्राप्त किए बगैर सेवानिवृत हो गए; यह कि याचिकाकर्ता संस्था एकमात्र सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्था है तथा मुस्लिम समुदाय के विद्यार्थियों की काफी बड़ी तादाद को उक्त स्कूल में उर्दू और पर्शियन भाषा पढ़ाई जाती है । अतः उर्दू तथा पर्शियन प्रधानाध्यापकों के पदों को समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं बनता, विशेष रूप से तब जब सभी गैर-सहायता प्राप्त उच्च स्कूलों तथा सरकारी उच्च स्कूलों में पूरी अवधि के लिए नियमित प्राध्यापकों को रखने की उन्हें अनुमति प्रदान की गई है, तथा चूंकि प्रबंधन उर्दू और पर्शियन प्राध्यापकों के दो पदों की रिक्ति की तारीख से ही सरकार को प्रस्ताव भेज रहा है कि या तो इन दो पदों को भरा जाए अथवा अन्य संस्था से स्थानांतरण पर उर्दू प्राध्यापक प्राप्त करने की अनुमति दी जाए, परन्तु यह सब निष्फल रहा ।

यह अभिकथित है कि जब स्कूल संकट की स्थिति में था तब सरकार ने याचिकाकर्ता स्कूल को कोई सहायता प्रदान नहीं की और प्रबंध समिति ने प्रधानाध्यापक के अनुरोध पर उर्दू तथा पर्शियन के दो तदर्थ प्राध्यापक नियुक्त किए और यह कि स्कूल में नियुक्ति संबंधी सभी संबद्ध सूचना स्कूल सर्किल इंस्पेक्टर, कटक को अनुमोदनार्थ भेज दी गई थी । उस पर सर्किल इंस्पेक्टर तथा शिक्षा निदेशक ने उड़ीसा सरकार से प्रबंध समिति द्वारा की गई उक्त नियुक्तियों को अनुमोदन देने की सिफारिश की थी । यह भी अभिकथित है कि उपर्युक्त मंजूरशुदा पदों को समाप्त करने तथा याचिकाकर्ता संस्था की प्रबंध समिति द्वारा की गई प्राध्यापकों की नियुक्ति को अनुमोदन प्रदान न करने की राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लंघन है ।

यह विवाद रहित है कि याचिकाकर्ता संस्था, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत एक अल्पसंख्यक संस्था है । यह भी विवाद से परे है कि स्कूल की प्रबंध समिति ने उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों के पदों को भरने के लिए पात्र प्राध्यापक नियुक्त किए । यह कि स्कूल इंस्पेक्टर तथा सैकेण्डरी शिक्षा निदेशक ने उड़ीसा सरकार से सिफारिश की थी कि कटक सर्किल में याचिकाकर्ता स्कूल ही एक

मात्र उच्च स्कूल है जहां उर्दू तथा पर्शियन शिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं और कुछ विद्यार्थी उर्दू माध्यम से इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान पढ़ते हैं। अतः सरकार अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर सकती है और याचिकाकर्ता स्कूल के उर्दू तथा पर्शियन में क्लासिकल प्राध्यापकों के पदों को पुनः बहाल कर सकती है तथा अल्पसंख्यक समुदाय को बेहतर लाभ पहुंचाने के लिए नियमित आधार पर इन पदों को भरने के लिए प्रबंध समिति को अनुमति दे सकती है।

यह हमारी समझ से परे है कि सरकार ने प्राधानाध्यापक के पद को समाप्त क्यों किया क्योंकि स्कूल को उचित ढंग से चलाने के लिए प्रधानाचार्य का होना किसी भी स्कूल का मूल सिद्धांत होता है। यदि स्कूल इंस्पेक्टर कटक ने प्रधानाध्यपक की नियुक्ति का पहले अनुमोदन कर दिया था तो इसका तात्पर्य है कि याचिकाकर्ता स्कूल के प्रधानाध्यक्ष के पद की आवश्यकता से अवगत था। यदि स्कूल में विद्यार्थियों की इतनी संख्या है कि उसके लिए उर्दू प्राध्यापक तथा एक पर्शियन प्राध्यापक की नियुक्ति की आवश्यकता पड़े तो सरकार को उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों की नियुक्ति का अनुमोदन करना चाहिए।

यहां यह उल्लेख करना संगत है कि अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी पसंद के प्रधानाचार्य/ प्रधानाध्यापकों तथा प्राध्यापकों की नियुक्ति के अधिकार की महत्ता को, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों के महत्वपूर्ण भाग के रूप में सेंट जेवियर कॉलेज बनाम गुजरात राज्य (1947(1) एससीसी 717) में इस प्रकार उजागर किया गया था :

> "एक शैक्षणिक संस्था का स्तर और स्वरूप कैसा होगा, यह उस महाविद्यालय के प्रधानाचार्य तथा शिक्षकों पर निर्भर करता है। इसकी ख्याति, अनुशासन को बनाए रखना तथा शिक्षण में इसकी दक्षता उन्ही पर निर्भर करती है। प्रधानाचार्य को चुनने का अधिकार, तथा प्रबंधन द्वारा शिक्षकों के दृष्टिकोण तथा उनकी सोच का समग्र मूल्यांकन करने के पश्चात् उनकी नियुक्ति पर उनसे अध्यापन करवाना, संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के संचालन के अधिकार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है। ....जब तक कि चुने गए व्यक्तियों की अर्हताएं विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अर्हताओं के अनुरूप है, इस यह चुनाव को प्रबंधन पर ही छोड़ देना चाहिए। वह अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्था का संचालन करने के उनके मौलिक अधिकार का भाग है।"

फ्रैंक ऐंथनी पब्लिक स्कूल एम्प्लाइज एसोसिएशन बनाम भारत संघ ए आइ आर 1987 एस सी 311 में, उच्चतम न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि :

> "किसी संस्था द्वारा दिए गए अनुदेश की उत्कृष्टता प्रत्यक्ष तौर पर शिक्षण स्टाफ की उत्कृष्टता पर निर्भर करेगी, जो आगे शिक्षकों की गुणवत्ता और उनके संतोष पर निर्भर करेगी, शिक्षको की न्यूनतम योग्यता से संबंधित सेवा शर्तों, उनके वेतन, भते और अन्य सेवा शर्तें, जिनसे शिक्षकों की सुरक्षा, संतोष और शालीन जीवन का स्तर सुनिश्चित होता है, जिसके परिणामस्वरप वे संस्था और बच्चों को बेहतर सेवा देने में समर्थ होते हैं, निश्चित तौर पर संविधान के अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार का उल्ल्ंाघन नही कही जा सकती है। किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन को अनुच्छेद 30

(1) द्वारा प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार की आड में किसी अन्य निजी कर्मचारी से अधिक अपने कर्मचारियों का दमन करने या उनका शोषण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । किसी शैक्षणिक संस्था के शिक्षण स्टाफ के दमन या शोषण से असमान रुप से संस्था में असंतोष उत्पन्न होगा और प्रदान किए जा रहे अनुदेशों के स्तर में गिरावट आएगी, जिससे इन शैक्षिक संस्थाओं में जाने वाले अल्पसंख्यक समुदाय या अन्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा के एक प्रभावी साधन के रप में इस संस्था को बनाने के उद्देश्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । किसी अल्पसंख्यक संस्था का प्रबंधन संस्था का संचालन करने के मूलभूत अधिकार में तब तक अतिक्रमण करने की शिकायत नही कर सकता है जब वह अपने स्टाफ के सदस्यों को अनुच्छेद 30 (1) के उद्देश्य की प्राप्ति के अवसर से ही वंचित कर देता है, जिसका संस्था को शिक्षा का एक प्रभावी साधन बनाना मात्र है ।

एन अम्मद बनाम मैनेजर एमजे हाइ स्कूल [1998(6) एससीसी 674] उच्चतम न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि :

"किसी स्कूल (अथवा कॉलेज का प्रधानाचार्य) में प्रधान अध्यापक का चयन और नियुक्ति का उस शैक्षिक संस्था के प्रशासन में मुख्य महत्व है । स्कूल चलाने में प्रधान अध्यापक एक प्रमुख पद है । वह एक केन्द्र बिन्दु है जिसके चारो ओर स्कूल की सारी गतिविधि संचालित होती हैं और इसके माध्यम से ही उनके परिणाम प्राप्त होते हैं । एक स्कूल के व्यक्तित्व का निर्माण उसके प्रधान अध्यापक के माध्यम से ही होता है । यही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके माध्यम से बाहरी लोग स्कूल का मूल्यांकन करते हैं । एक खराब प्रधान अध्यापक समूची संस्था को बरबाद कर सकता है, जबकि एक सक्षम, ईमानदार प्रधान अध्यापक इसमें कई गुणा सुधार कर सकता है । किसी स्कूल की कार्यात्मक प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ उसके प्रधानअध्यापक की कार्य-कुशलता और समर्पण पर निर्भर करती है । पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा के संरचनात्मक प्रतिरूपों में अनेक बदलाव आने के बावजूद इस पुरानी अवधारणा में कोई परिवर्तन नहीं आया है।"

जैसे कि पहले बताया गया है कि स्कूल निरीक्षक तथा सैकेण्डरी शिक्षा निदेशक ने उड़ीसा सरकार से प्राध्यापकों की नियुक्ति के लिए स्कूल के प्रबंधन को अनुमति देकर याचिकाकर्ता स्कूल में उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापक प्रदान करने की सिफारिश की थी । हैरानी की बात है कि राज्य ने राज्य के सक्षम प्राधिकारियों की उक्त सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया । अतः याचिकाकर्ता स्कूल की मंजूरशुदा पदों को समाप्त करने तथा प्रधानाध्यापक, उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों के पदों को भरने में प्रबंधन को अनुमति न देने की सरकार की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लंघन है ।

पूर्ववर्ती कारणों को देखते हुए, आयोग प्रधानाध्यापक उर्दू तथा पर्शियन प्राध्यापकों के पदों को भरने के लिए याचिकाकर्ता स्कूल के प्रबंधन को अनुमति देने की राज्य सरकार से कड़ी सिफारिश करता है ।

2010 का मामला संख्या 710

संबद्धता प्रदान करने के लिए राज्य/विश्वविद्यालय से निदेश मांगने संबंधी याचिका

याचिकाकर्ता : अलाना प्रबंध विज्ञान संस्थान 2390 बी न्यू मोदीखाना कैम्प, पुणे, महाराष्ट्र-411001

प्रतिवादी
1. सचिव, उच्च व तकनीकी शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार मंत्रालय, मुम्बई महाराष्ट्र-40032
2. रजिस्ट्रार पुणे विश्वविद्यालय, गणेशखीन्ड रोड, पुणे महाराष्ट्र- 400001 ।
3. निदेशक उच्च तथा तकनीकी शिक्षा, महाराष्ट्र सरकार, महाराष्ट्र, महानगर पालिका मार्ग, मुम्बई, महाराष्ट्र-400 001

यह याचिका राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम आयोग(संक्षेप में अधिनियम) की धारा 12 के अंतर्गत प्रयोजन से प्रस्तुत की गयी है । याचिकाकर्ता ने शैक्षिक वर्ष 2010-11 में मास्टर ऑफ मार्केटिंग प्रबंधन (एमएमएम) तथा मास्टर ऑफ पर्सनल प्रबंधन(एमपीएम) के पाठ्यक्रमों को चलाने के लिए याचिकाकर्ता संस्था को संबद्धता प्रदान करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय तथा राज्य सरकार को निदेश देने की मांग की । मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित महाराष्ट्र कॉस्मोपॉलिटन एजुकेशन सोसाइटी, पुणे (संक्षेप में सोसाइटी) एक पंजीकृत सोसाइटी है । यह सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1869 तथा बॉम्बे पब्लिक ट्रस्ट अधिनियम 1950 के तहत पंजीकृत है ।

याचिकाकर्ता संस्थान की स्थापना कर इसका संचालन सोसाइटी द्वारा किया जा रहा है। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने समादेश याचिका सं. 4094 वर्ष 1998 में पारित दिनांक 10.9.1998 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता संस्था को, अल्पसंख्यक संस्था घोषित किया है। बॉम्बे उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निष्कर्षों को उच्चतम न्यायालय द्वारा एसएलपी (सिविल सं. 7248/1999) से उत्पन्न सिविल अपील सं. 3654/99 में पारित दिनांक 21.6.1999 के आदेश के तहत उचित ठहराया गया है ।

दिनांक 26.10.2009 को, याचिकाकर्ता ने उपर्युक्त पाठ्यक्रमों की संबद्धता प्राप्त करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय को आवेदन किया तथा संबद्ध दस्तावेजों सहित संबद्धता शुल्क जमा कराया। 5.1.2010 को प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने संबद्धता प्रदान करने के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव पर राज्य सरकार से सिफारिश करने के लिए इंकार कर दिया । यह अभिकथित है कि राज्य सरकार से संबद्धता प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता के प्रस्ताव पर सिफारिश न करने की प्रतिवादी विश्वविद्यालय की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है । अतः याचिका दी गई है ।

नोटिस देने के बावजूद प्रतिवादी नं. 1 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरूप उसके विरूद्ध मामले में एक पक्षीय कार्यवाही की गई ।

प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने याचिका का इस आधार पर प्रतिरोध किया कि कॉलेज बोर्ड तथा प्रतिवादी विश्वविद्यालय की विश्वविद्यालय विकास की दिनांक 11 तथा 12 दिसम्बर,2009 को आयोजित बैठक में नीति संबंधी निर्णय लिया गया कि एआइसीटीइ के अनुमोदित पाठ्यक्रमों की सूची में शामिल पाठ्यक्रमों को ही मंजूरी दी जाएगी । चूंकि एमएमएम तथा एमपीएम पाठ्यक्रम ऐसे पाठ्यक्रम है जिनके

लिए एआइसीटीइ का अनुमोदन अपेक्षित है अतः उक्त नीति निर्णय के संदर्भ में उपर्युक्त पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर राज्य सरकार से सिफारिश नहीं की गई । यह भी अभिकथित है कि अल्पसंख्यक संस्था किसी भी नियंत्रण से मुक्त नहीं है तथा उसे विश्वविद्यालय के नियमों तथा विनियमों से बंधे रहना होता है । आगे अभिकथित है कि याचिकाकर्ता संस्था द्वारा उठाया गया विवाद इस आयोग के संज्ञान से बाहर है ।

प्रतिवादी नं. 3, सहायक निदेशक (गैर-तकनीकी) तकनीकी शिक्षा निदेशालय, महाराष्ट्र ने इस आधार पर याचिका का प्रतिरोध किया कि महाराष्ट्र विद्यालय अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित आदेश को अपास्त करने का क्षेत्राधिकार आयोग के पास नहीं है । अभिकथित है कि याचिकाकर्ता संस्था का मात्र अल्पसंख्यक स्तर का होना उसे मास्टर ऑफ मार्केटिंग मैनेजमेंट तथा मास्टर ऑफ पर्सनल मैनेजमेंट जैसे शैक्षणिक पाठ्यक्रमों को शुरू/ अथवा संचालित करने का ऐसा कोई मूल अधिकार प्रदान नहीं करता परन्तु उक्त पाठ्यक्रमों को नियंत्रित करने वाले नियम तथा विनियमों से इसका निवारण होता है । आगे यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता संस्थान द्वारा उठाए गए विवाद अधिनियम के दायरे में नहीं आते हैं ।

प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता कॉलेज ने जोर देकर कहा कि वह पहले से ही एआईसीटीइ द्वारा अनुमोदित मास्टर बिजनेस मैनेजमेंट पाठ्यक्रम चला रहा है तथा जो प्रतिवादी विश्वविद्यालय से संबद्ध है । याचिकाकर्ता संस्था एमएमएम तथा एमपीएम के दो और पाठ्यक्रम चलाना चाहती है और संबद्धता दिए जाने के लिए इसके आवेदन को प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा पूरी तरह से अमान्य आधार पर रद्द कर दिया गया है । पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को देखते हुए निम्नलिखित मुद्दे विचारार्थ उत्पन्न हुए :

(i) क्या याचिकाकर्ता संस्था द्वारा उठाए गए विवाद इस आयोग के संज्ञान से परे हैं ?

(ii) क्या राज्य सरकार से मास्टर ऑफ मार्केटिंग मैनेजमेंट तथा मास्टर ऑफ पर्सनल मैनेजमेंट नामक दो पाठ्यक्रमों के लिए संबद्धता प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर सिफारिश न करने की प्रतिवादी विश्वविद्यालय की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ?

(iii) राहत ?

मुद्दा संख्या 1: हमें यह ध्यान रखना होगा कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के प्रयोग को सुगम बनाने के लिए संसद के अधिनियम के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना की गई है । विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में स्पष्ट रूप से आयोग के गठन के उद्देश्य को दर्शाया गया है और इसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों के संबद्धता से संबंधित विवादों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र आयोग का होगा । इस अवसर पर हम उद्देश्यों और कारणों के कथन को उपयोगी रूप से उद्धृत कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं-

> "राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम की एक धारा में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग (जिसे इसके आगे राष्ट्रीय आयोग कहा गया है) की स्थापना करने का प्रावधान है जो केंद्रीय विश्वविद्यालयों के साथ अल्पसंख्यक व्यावसायिक संस्थाओं के सीधे संबद्धता का प्रावधान करेगा ।

अल्पसंख्यक समुदायों की लंबे समय से अनुभूत इस मांग को मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अल्पसंख्यक शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, प्रतिष्ठित नागरिकों और समुदाय नेताओं के साथ हुई बैठकों की शृंखला में भी रेखांकित किया गया था । अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दों में से एक अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन में पेश आ रही कठिनाइयां भी शामिल थीं, जबकि इस संबंध में उनको संवैधानिक गारंटी भी प्रदान की गई थी । मुख्य समस्या थी उनके द्वारा अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने का मुद्दा । राज्य विश्वविद्यालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार व अल्पसंख्यक आबादी का कतिपय विशेष क्षेत्रों में संकेंद्रण निरपवाद रूप से यह इंगित करता है कि ये संस्थाएं अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता स्थापित करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकीं ।

2. बाद में दिनांक 27 अगस्त, 2004 को आयोजित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा मानीट रिंग समिति की एक बैठक में भी अनेक विशेषज्ञों द्वारा ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए थे । विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के भागीदारों ने ऐसी संस्थाओं के संबंद्धता के संबंध में विश्वविद्यालयों के मौजूदा कानूनों द्वारा लगाई गई प्रायः प्रतिबंधात्मक शर्तों को ध्यान में रखते हुए ऐसे संबंद्धता तक पहुंच प्रदान करने की आवश्यकता की पुष्टि की । उन्होंने यह अनुभव किया कि इन शर्तों ने इन संस्थाओं को प्रदान किए गए उन अधिकारों को प्रभावित किया है जो इन संस्थाओं को अल्पसंख्यक होने के नाते प्रदान किए गए थे । यह तथ्य कि अपील और त्वरित निवारण के लिए कोई प्रभावी मंच नहीं था, अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर वंचन का बोध और अधिक बढ़ गया ।

3. राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम में व्यक्त की गई सरकार की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने का मुद्दा अत्यावश्यक था। संसद का सत्र नहीं चल रहा था और अगले अकादमिक सत्र से राष्ट्रीय आयोग के कार्यकरण को प्रभावी बनाने में निहित अत्याधिक आरंभिक कार्य को ध्यान में रखते हुए 11 नवम्बर, 2004 को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अध्यादेश, 2004 के प्रख्यापन के माध्यम से एक राष्ट्रीय आयोग के प्रख्यापन के सृजन का रास्ता चुना गया ।

4. उपरोक्त अध्यादेश की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(i) इससे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग का सृजन संभव हो पाया है ।

(ii) तत्समय प्रवृत अन्य किसी कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी यह किसी अनुसूचित विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध कॉलेज के रूप में मान्यता पाने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए अधिकार सृजित करता है ।

(iii) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और एक अनुसूचित विश्वविद्यालय के बीच संबंद्धता के मामलों के संबंध में यह एक सांविधिक आयोग के रूप में विवाद निपटान मंच की स्थापना करने की अनुमति प्रदान करता है । इस आयोग का निर्णय पक्षकारों के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा ।

(iv) अपने कार्यों के निष्पादन या निर्वहन के प्रयोजनार्थ किसी वाद पर विचारण करते समय आयोग को इसके अंतर्गत सिविल कोर्ट की शक्तियां प्राप्त होंगी, यह आयोग के निर्णयों को ऐसे प्रयोजन के लिए कानूनी मान्यता प्रदान करेगा; और

(v) यह केन्द्र सरकार के किसी विश्वविद्यालय को शामिल करने या उसे निकालने के लिए, अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार प्रदान करता है ।

5. यह विधेयक उपरोक्त अध्यादेश का स्थान लेगा ।

न्यायिक प्राधिकारी का मत भी इस विचार के पक्ष में जाता है कि विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन को संसद में विधेयक को पुनः स्थापित किए जाने के समय इस संविधि के सारभूत प्रावधानों के सच्चे अर्थ और प्रभाव के निर्धारण के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता । इस विधान को बनाए जाने के लिए उत्तरदायी पृष्ठभूमि तथा मामलों की पूर्व स्थिति को समझने और उस अहितकर स्थिति को समझने, जिसे यह संविधि समाप्त करना चाहती थी, के अलावा इनका अन्य किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता । तथापि उद्देश्यों और कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों का न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है जिन्हें अधिनियम पारित करते समय विधान के विचारण के अंतर्गत शामिल मान लिया गया होगा । यदि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम, 2004 (संक्षेप में अधिनियम) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए उस पृष्ठभूमि और संदर्भ, जिसमें अधिनियम को अधिनियमित किया गया था और उस प्रयोजन को भी ध्यान में रखा जाता है जिसे इस अधिनियमन द्वारा प्राप्त किया जाना था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अधिनियम' का अभिप्राय संबंधक विश्वविद्यालयों द्वारा संबद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अधिष्ठापित किए गए अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/वंचन, किसी शैक्षणिक संस्था का अल्पसंख्यक दर्जा निर्धारित करने और अनापत्ति प्रमाणपत्र आदि से संबंधित मामलों के त्वरित निपटान के लिए एक नई व्यवस्था का सृजन करना है । यह आयोग एक अर्ध-न्यायिक अधिकरण है और इसमें संविधान अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों को संबद्धता प्रदान करने तथा अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रदान किए गए अधिकारों से संबंधित विवादों के संबंध में क्षेत्राधिकार,शक्तियां तथा न्याय- निर्णय करने का प्राधिकार निहित किया गया है और यह प्रावधान भी किया गया है कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय आयोग सिविल प्रक्रिया संहिता के तकनीकी दांव-पेंचों में न फंस कर सुचारू रूप से अपना कार्य करे ।

अधिनियम की धारा 10 क अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अपनी पसंद के किसी विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता का अधिकार प्रदान करती है । धारा 10 क निम्नवत है

> "**10क. अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की सहबद्धता चाहने का अधिकार** ।
> (1) कोई अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अपनी पसंद के किसी विश्वविद्यालय से इस बात के अधीन रहते हुए सहबद्ध होने की मांग कर सकेगी कि ऐसी सहबद्धता उस अधिनियम के भीतर अनुज्ञेय है, जिसके अधीन उक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है ।
>
> (2) कोई व्यक्ति, जो अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया है, उपधारा (1) के अधीन सहबद्ध होने के लिए किसी विश्वविद्यालय को कोई आवेदन, उस विश्वविद्यालय के परिनियम, अध्यादेश, नियमों या विनियमों द्वारा विहित रीति में फाइल कर सकेगा :

इस अधिनियम की धारा 12 आयोग को किसी विश्वविद्यालय की संबद्धता से संबंध में किसी विवाद का निर्णय लेने के लिए शक्ति प्रदान करती है : धारा 12 को निम्नानुसार पढ़ा जाए:-

> "**12. आयोग की शक्तियां** -(1) यदि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और किसी विश्वविद्यालय के बीच उसके ऐसे विश्वविद्यालय से सहबद्ध होने के संबंध में कोई विवाद उठता है तो उस पर आयोग का विनिश्चय अंतिम होगा ।
>
> (2) आयोग को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, किसी वाद का विचारण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी, अर्थात् :-
>
> (क) भारत के किसी भाग से किसी व्यक्ति को सम्मन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;
> (ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;
> (ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;
> (घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 और 124, 1872(1872 का1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज अथवा ऐसे रिकार्ड अथवा दस्तावेज अथवा रिकार्ड की प्रति की अपेक्षा करना ;
> (ड.) साक्षियों या दस्तावेज की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और
> (च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए।
>
> [(3) आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत और धारा 196 (1860 का 45)के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (1974 का 2)की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।]
>
> (बल दिया गया)

यहां उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है कि एनसीएमईआई अधिनियम में यह व्यवस्था है कि आयोग प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन दिशा निर्देशित होगा तथा उसे अपनी स्वयं की प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति प्राप्त होगी । धारा 12 की उप धारा (2) आयोग को यह शक्ति प्रदान करती है कि आयोग सिविल प्रक्रिया कोड के तहत साक्षियों को सम्मन देने, उनके उपस्थित होने, किसी लोक रिकार्ड की मांग करने कमीशन निकालने जैसी विनिर्दिष्ट शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । धारा 12 की उप धारा (3) में यह विनिर्दिष्ट है कि आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता के संदर्भ में न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी तथा आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) की धारा 195 तथा अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा । धारा 12 - क तथा 12 - ख आयोग को अपील करने का अधिकार प्रदान करती है तथा यह भी

व्यवस्था करती है कि आयोग द्वारा पारित आदेश सिविल न्यायालय के आदेश की तरह कार्यान्वित किए जाएंगे । अधिनियम की धारा 12 - च में यह उल्लेख है कि किसी भी सिविल न्यायालय को ऐसे किसी मामले के संबंध में क्षेत्राधिकार नही है जिसका अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत निर्णय करने का आयोग को अधिकार प्राप्त है । अतः एनसीएमआई अधिनियम के प्रावधानों का संक्षिप्त सार स्पष्ट रुप से यह संकेत करता है कि संबद्धता से संबंधित विश्वविद्यालय तथा अल्पसंख्यक संस्थान के बीच विवाद इस अधिनियम के दायरे में आता है । अधिनियम की प्रस्तावना तथा अधिनियम को लागू करने वाले उद्देश्यों तथा कारणों के परिप्रेक्ष्य में एनसीएमईआई अधिनियम की धारा 10 - क का स्पष्ट रुप से पठन करने पर पता चलता है कि संबंधित पक्षकारों के बीच संबद्धता से संबंधित विवाद इस प्रयोजनार्थ गठित विशेष न्यायालय द्वारा निर्णित होंगे । सिविल न्यायालय का यह भी क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत आयोग को किसी मामले में निर्णय के लिए मिले अधिकार के संबंध में किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करे । अधिनियम की संरचना से स्वतः स्पष्ट होता है कि इसकी अध्यक्षता उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश द्वारा की जाती है । इस प्रकार एनसीएमईआई अधिनियम स्वतः पूर्ण संहिता है जिसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा अल्पसंख्यकों की शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता/ संबद्धता देने के संबंध में उत्पन्न सभी विवादों पर कार्रवाई करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है । ऐसी स्थिति में, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का किसी विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता के लिए उत्पन्न विवाद पर निर्णय देने का आयोग का अधिकार है । धारा 12 की उप धारा (1) में यह घोषणा की गई है कि ऐसे विवाद पर आयोग का निर्णय अंतिम होगा । यह विवादित नहीं हो सकता कि वर्तमान विवाद अधिनियम की धारा 12 के दायरे में आता है ।

तत्पश्चात् हम यह पाते तथा निर्णय देते हैं कि आयोग के पास वर्तमान याचिका पर विचार करने का क्षेत्राधिकार है क्योंकि पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवाद अधिनियम की धारा 10 क के साथ पठित धारा 12 के कार्य क्षेत्र के भीतर आता है ।

मुद्दा संख्या ।।

प्रारम्भ में यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को `अपनी पसंद' की शैक्षिक संस्था स्थापित करने और उसके संचालन का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के पीछे औचित्य अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की संस्था को चलाने की सुरक्षा प्रदान करना है । इन अधिकारों को उल्लंघन की स्थिति में प्रतिषेध के माध्यम और लागू करने के वचन से सुरक्षित किया गया है । प्रतिषेध अनुच्छेद 13 में समाहित है जो राज्य को ऐसे किसी भी कानून या नियम बनाने से रोकते है जो संविधान के अध्याय-III के तहत प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त या संकुचित करते हैं या इससे असंगत किसी कानून, नियम या विनियम को वीटों की धमकी देते हैं ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय `राष्ट्र के विवेक को दिया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने के प्रयोजन से अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं खोलने और चलाने से नहीं रोका गया है ताकि वे उन्हें सही अर्थों में देश के स्त्री-पुरुष बना सके । अल्पसंख्यकों को संविधान के इस अनुच्छेद 30 (1) के तहत सुरक्षा देने का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित तथा मजबूती देना है ।

सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का आशय अपने देश में बालक बालिकाओं का समन्वित विकास करना है। यह शिक्षा के माध्यम द्वारा स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व की सच्ची भावना है । यदि अल्पसंख्यकों को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के तहत अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार नहीं दिया तो वह स्वयं को अलग थलग और पृथक समझेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।

संदर्भ हेतु केरल शिक्षा विधेयक (उपर्युक्त) में श्री एस आर दास मुख्य न्यायाधीश ने निम्न टिप्पणी दी :-

> "विचाराधीन अनुच्छेद के सही अर्थ और प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए मुख्य शब्द `अपना पसंद` है˙ यह कहा जाता है कि प्रभावशाली शब्द `पसंद` है और इस अनुच्छेद का सारतत्व उतना ही व्यापक है जितना किसी अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद इसे बना सकती है ।"

सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एस एस सी 558 में सर्वोच्य न्यायालय ने यह माना है कि अनुच्छेद 30 (1) में `अपनी पसंद के` शब्द अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं, जिसकी वे स्थापना करना चाहते हैं, का स्वरुप चुनने के अपार विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण या सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या दोनों प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना कर सकते हैं ।

इस मौके पर पी ए इनामदार एंड ऑर्स बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का निम्नलिखित टिप्पणी का मुख्यांश देना उपयोगी होगा :-

'' ..... अनुच्छेद 30 (1) में निहित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की यह इच्छा पूरी होते हुए देखना है उनके बच्चों का पालन पोषण उचित प्रकार से तथा प्रभावी ढंग से हो तथा उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए वे योग्यता हासिल करें तथा संसार में वह ऐसी बौद्धिक उपलब्ध्यों के साथ भली-भांति तैयार होकर प्रवेश करें जिससे कि वे सार्वजनिक सेवाओं, सामान्य पंथ निरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च शिक्षा देने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए स्वयं को उपयुक्त पाएं । इस प्रकार अल्पसंख्यकों के हितार्थ निम्नानुसार है :-

> (i)ऐसे समुदाय को अपना धर्म और भाषा के संरक्षण के लिए योग्य बनाना (ii) तथा ऐसे समुदाय से संबंध प्रदान करना । जब तक ये संस्थान उपर्युक्त उक्त दो उद्देश्यों को हासिल करके और हासिल करते हुए अपने अल्पसंख्यक चरित्र को बनाए रखते है जब तक वे संस्थान एक अल्पसंख्यक संस्थान बने रहेंगे ।
>
> "अपनी इच्छा" के शैक्षिक संस्थान की स्थापना के अधिकार का तात्पर्य ऐसे संस्थान वास्तव में स्थापित करना है जो कारगर ढंग से अपने समुदाय और अपने शिक्षण संस्थानों के लिए समर्पित विद्धतजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956)

यह विवादरहित है कि याचिकाकर्ता कॉलेज, प्रतिवादी विश्वविद्यालय का एक संबद्ध कॉलेज है। यह भी विवाद से परे है कि राज्य सरकार से दो पाठ्यक्रमों एमएमएम तथा एमपीएम की संबद्धता प्राप्त

करने के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव की सिफारिश करने से प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने मना कर दिया । प्रतिवादी विश्वविद्यालय की ओर से यह तर्क है कि दिनांक 11 तथा 12 दिसम्बर, 2009 में आयोजित इसकी बैठक में एक नीति निर्णय लिया गया कि एआइसीटीइ के अनुमोदित पाठ्यक्रमों की सूची में शामिल पाठ्यक्रमों को ही मंजूरी दी जाएगी और चूंकि एमएमएम और एमपीएम पाठ्यक्रम वे पाठ्यक्रम हैं जिनके लिए एआइटीइ का अनुमोदन अपेक्षित होता है, अतः नीति निर्णयों के संदर्भ में पाठ्यक्रमों की संबद्धता प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन की राज्य सरकार से सिफारिश नहीं की गई थी।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने जोर देते हुए कहा कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के लिए कई कॉलेजों को संबद्धता प्रदान की है । उक्त दावे के समर्थन में प्रतिवादी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर प्रदर्शित शैक्षिक कार्यक्रमों के पृष्ठ सं. 2 का प्रबलता से आश्रय लिया गया है । विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर प्रदर्शित शैक्षिक कार्यक्रम स्पष्ट रूप से यह दर्शाते है कि यह दोनों पाठ्यक्रम प्रतिवादी विश्वविद्यालय की अनुमोदित सूची में हैं । लिखित प्रस्तुतियों में प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने माना है कि उसकी वेबसाइट को अद्यतन नहीं किया गया है और इसलिए उसके नवीनतम नीति निर्णय वेबसाइट पर परिलक्षित नहीं हुए हैं । प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने तर्क देते हुए कहा है कि उक्त दोषयुक्त वेबसाइट का आश्रय संबद्धता प्राप्त करने के याचिकाकर्ता के मामले के समर्थन में नहीं किया जा सकता । यह भी तर्क दिया गया है कि शैक्षिक वर्ष 2010-11 के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने इन पाठ्यक्रमों के लिए संबद्धता मांगने वाले 23 आवेदनों की सिफारिश नहीं की है और यदि संबद्धता प्रदान करने के याचिकाकर्ता के आवेदन को अनुमति दी जाती है तो यह स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण होगा तथा जो संवैधानिक नीति के विरूद्ध होगा । उक्त तर्क के समर्थन में पी.ए.इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 2005 एससी 3226 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा 97 का प्रबल आश्रय लिया गया है। हमारे सुविचारित मत में प्रतिवादी विश्वविद्यालय की उक्त प्रस्तुति में कोई दम नहीं है । यह भरोसा करना मुश्किल है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय की उक्त वेबसाइट दोषपूर्ण है । प्रतिवादी विश्वविद्यालय की लिखित प्रस्तुतियों का भाव यह दर्शाता है कि यह उन पाठ्यक्रमों की जांच करने वाला निकाय है जिनकी संबद्धता प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा आवेदन किया गया । यह स्वीकार्य है कि याचिकाकर्ता कॉलेज एआइसीटीइ द्वारा अनुमोदित एमबीए पाठ्यक्रम संचालित करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय का संबद्धता प्राप्त कॉलेज है । जब तक प्रतिवादी विश्वविद्यालय विचाराधीन पाठ्यक्रमों की जांच करने वाला निकाय है तब तक वह इस आधार पर संबद्धता से मना नहीं कर सकता कि उसने नीति निर्णय लिए हैं । यह भी सुस्थापित है कि कोई नियम अथवा कार्यकारी निदेश जो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अधिकारों के सार का अतिलंघन करते हैं, तो वे अतिलंघन की सीमा तक अमान्य हैं । अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत दिए गए मूल अधिकार प्रभावी होने के लिए अभीष्ट हैं तथा इन्हें किसी प्रशासनिक अत्यावश्यकता से कम नही किया जाना चाहिए । कोई प्रशासनिक तथा वित्तीय असुविधा अथवा कठिनाइयाँ, मूल अधिकारों के उल्लंघन को औचित्यपूर्ण नहीं बना सकतीं । मामले को इस नजरिए से देखते हुए एआईसीटीई के अनुमोदित पाठ्यक्रमों की सूची में इन पाठ्यक्रमों को शामिल न करते हुए राज्य सरकार से संबद्धता प्राप्त करने संबंधी याचिकाकर्ता के आवेदन की सिफारिश न करने की प्रतिवादी विश्वविद्यालय की आक्षेपित कार्रवाई पूरी तरह से स्वेच्छाचारी तथा असंगत है ।

प्रतिवादी विश्वविद्यालय संबद्धता प्रदान करने के याचिकाकर्ता के आवेदन को सिर्फ इस आधार पर भी रद्द नहीं कर सकता कि इसने इन पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने संबंधी 23 आवेदनों की सिफारिश नहीं की थी और अगर याचिकाकर्ता के आवेदन पर अनुमति दी जाती है तो यह समानता के

सिद्धांत का उल्लंघन होगा । यह ध्यान रखना होगा कि दो गलतियों से एक को सुधारा नहीं जा सकता कोई पक्षकार यह दावा नहीं कर सकता कि चूंकि अन्य मामले में गलती हुई है तो ऐसी ही एक ओर गलती करने के लिए निदेश दिए जाएं । यह गलत को सही ठहराना न होकर लगातार एक और गलती करना होगा । ऐसे मामले में अनुच्छेद 14 के तर्क पर समान व्यवहार की संकल्पना क्रियान्वित नहीं होती। इस स्थिति में, प्रतिवादी विश्वविद्यालय, नकारात्मक समानता के आधार पर याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार नहीं कर सकता ।

हालांकि, संविधान के अनुच्छेद में उन शर्तों का उल्लेख नही है जिनके तहत अल्पसंख्यक संस्थाओं को किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध किया जा सकता है, फिर भी अनुच्छेद 30(1) अपने स्वरूप से ही यह अर्थ देता है कि जहां कोई संबद्धता मांगी जाती है, तो संबंधित विश्वविद्यालय समुचित कारणों के बिना संबद्धता देने से मना नही कर सकता अथवा ऐसी शर्तें लगाने का प्रयास नहीं कर सकता, जिनसे शैक्षणिक संस्थाओं का स्वायत्त प्रशासन ही पूरी तरह से नष्ट हो जाता हो । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य(2002) 8 एससीसी 481 में लिए गए निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है ।

यहां इस बात पर बल देना होगा कि संबद्धता देने वाले विश्वविद्यालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत आने वाली किसी शैक्षणिक संस्था को उचित तथा पर्याप्त आधार के बिना संबद्धता प्रदान करने से मना करना अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत मूल अधिकारों का उल्लंघन है । तत्कालिक मामले में, प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा अपनाए गए अस्वीकृति आधार को यदि समाप्त कर दिया जाए तो रिकार्ड में यह दिखाने अथवा सुझाव देने के लिए कुछ नहीं बचता कि विचाराधीन पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज शर्तें पूरी नहीं करता है। परिणामस्वरूप हम यह पाते तथा निर्णय देते है कि राज्य सरकार से उपर्युक्त पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने के याचिकाकर्ता के आवेदन की सिफारिश न करने की प्रतिवादी विश्वविद्यालय की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन है । ऐसी स्थिति में, याचिकाकर्ता कॉलेज महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की उपधारा 5 के परन्तुक का आह्वान कर सकता है जो इस प्रकार है :

> "बशर्ते कि, तथापि, अपवादिक मामलों में और लिखित में इसके कारण देते हुए राज्य सरकार नया कॉलेज या उच्च अध्ययन वाली किसी संस्था को शुरू करने के किसी आवेदन, जो विश्वविद्यालय द्वारा संस्तुत न हो, का अनुमोदन दे सकता है ।"

हमारे सुविचारित मत में एमएमएम तथा एमपीएम पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को अनुमोदित करने में उक्त परन्तुक के तहत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए सरकार के लिए यह कदम उचित मामला है ।

पूर्ववर्ती कारणों को देखते हुए आयोग अधिनियम की धारा 12 के साथ पठित धारा 11(ख) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए आयोग दृढ़ता से राज्य सरकार से यह सिफारिश करता है कि वह शैक्षिक वर्ष 2010-11 के मास्टर ऑफ मार्केटिंग मैनेजमेंट(एमएमएम) तथा मास्टर ऑफ पर्सनल मैनेजमेंट पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1994 की धारा 82(5) के परन्तुक के अधीन अनुमति प्रदान करे । आयोग यह भी निदेश देता है कि उपर्युक्त धारा 82 पूर्वाक्त के अंतर्गत राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त करने पर प्रतिवादी विश्वविद्यालय, शैक्षिक वर्ष 2010-

11 के उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के लिए याचिकाकर्ता को महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1994 की धारा 83(1) के अंतर्गत पहली बार संबद्धता प्रदान करे ।

2008 का मामला सं. 442

बीबीए तथा बीसीए पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए संबद्धता प्रदान करने हेतु अल्पसंख्यक संस्था द्वारा याचिका

याचिकाकर्ता अल-सबा शैक्षणिक एवं कल्याण सोसाइटी सचिव, श्री शेख मंसूर पुत्र श्री शेख मुस्तफा निवासी वाहिद कॉलोनी, औरंगाबाद, महाराष्ट्र के माध्यम से

प्रतिवादी : 1. महाराष्ट्र राज्य, प्रधान सचिव, उच्च तथा तकनीकी शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मुम्बई में माध्यम से ।

2. कॉलेज डायरेक्टर तथा विश्वविद्यालय विकास बोर्ड, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र ।

भारत में मुस्लिम समुदाय को शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित याचिकाकर्ता अल-सबा शैक्षणिक एवं कल्याण सोसाइटी औरंगाबाद एक रजिस्टर्ड सोसाइटी है । इसे बॉम्बे सोसाइटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के तहत तथा बॉम्बे पब्लिक ट्रस्ट अधिनियम 1950 के तहत भी रजिस्टर्ड किया गया है । याचिकाकर्ता सोसाइटी ने औरंगाबाद में सूचना तथा प्रौद्योगिकी तथा प्रबंधन संबंधी वसंत काले मेमोरियल कॉलेज की स्थापना की है । याचिकाकर्ता सोसाइटी उक्त कॉलेज में बेचलर ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन(बीबीए) तथा बेचलर ऑफ कम्प्यूटर एप्लीकेशन(बीसीए) पाठ्यक्रमों को शुरू करना चाहती थी । दिनांक 31.10.2006 को याचिकाकर्ता ने डॉ. दादा साहेब अम्बेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद(प्रतिवादी सं.2) में उक्त कॉलेज की संबद्धता प्राप्त करने के लिए आवेदन किया तथा संबद्ध दस्तावेजों सहित संबद्धता शुल्क जमा कराया । प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति द्वारा निरीक्षण करने पर देखा गया कि कॉलेज के पास पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए पर्याप्त अवसंरचनात्मक तथा अनुदेशात्मक सुविधाएं उपलब्ध थीं तथा तदनुसार, महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1954(संक्षेप में विश्वविद्यालय अधिनियम) की धारा 82 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार राज्य सरकार से उपर्युक्त पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए कॉलेज के प्रस्ताव की सिफारिश की गई । प्रतिवादी विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की उप-धारा (5) के संदर्भ में याचिकाकर्ता को पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति प्रदान नहीं की । यह अभिकथित है कि राज्य सरकार ने प्रतिवादी विश्वविद्यालय से कोई सिफारिश प्राप्त किए बिना बीबीए पाठ्यक्रमों के लिए शिवा ट्रस्ट सहित अनेक कॉलेजों को अनुमति प्रदान की थी । अतः याचिकाकर्ता कॉलेज के साथ इस संबंध में भेदभाव किया गया है । यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त पाठ्यक्रम को शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति प्रदान करने से मना करने संबंधी राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है । अतः यह याचिका दी गई है ।

प्रतिवादी नं. 1 ने इस आधार पर याचिका का विरोध किया कि कला, विज्ञान तथा वाणिज्य में नए कॉलेजों की स्थापना के संबंध में संबंधित विश्वविद्यालयों से शैक्षिक वर्ष 2007-08, 2008-09 के लिए राज्य सरकार को प्राप्त प्रस्तावों की जांच सरकार द्वारा नियुक्त टास्क फोर्स समिति द्वारा की गई थी ।

टास्क फोर्स समिति की रिपोर्ट पर विचार करने पर राज्य सरकार ने शैक्षिक वर्ष 2008-09 में सीनियर कॉलेजों की स्थापना के लिए अनुमति न देने का नीतिगत निर्णय लिया । याचिकाकर्ता कॉलेज को, क्षेत्र में मौजूद कॉलेजों की आवश्यकता तथा उपलब्धता से जुड़ी राज्य स्तर की प्राथमिकताओं के आधार पर औरंगाबाद में बीबीए, बीसीए पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति नहीं दी गई थी । यह अभिकथित है कि किसी संस्था को अनुमोदन देने में अल्पसंख्यक बहुल जिला होने का मानदंड़ प्रक्रिया का हिस्सा नही है और यदि विश्वविद्यालय प्रस्ताव की संस्तुति करता भी है तो कॉलेज खोलने के लिए अनुमति देना राज्य सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह पूर्णतः राज्य सरकार के विवेक पर है कि वह विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 की उप धारा(5) के अनुसार नए कॉलेजों की स्थापना के लिए अनुमति दे अथवा न दे । आगे यह भी अभिकथित है कि राज्य सरकार ने औरंगाबाद में बीबीए तथा बीसीए पाठ्यक्रमों को शुरू करने के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को सरकार द्वारा नियुक्त टास्क फोर्स की रिपोर्ट के आधार पर अस्वीकृत किया था ।

प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता ने तर्क किया कि चूंकि याचिकाकर्ता का प्रस्ताव विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 में उल्लिखित प्रक्रिया के अनुसार था इसलिए उपर्युक्त पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति पाने के लिए याचिकाकर्ता हकदार है । चूंकि याचिकाकर्ता ने स्थायी रूप से गैर-अनुदान आधार पर उक्त पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति मांगी है अतः याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थित अनुमति के मामले में राज्य सरकार के बजटीय संसाधनों के प्रश्न की भी कोई प्रासंगिक नहीं है । स्थान, अवसंरचना तथा वित्त को लेकर जहां तक राज्य स्तर पर प्राथमिकताओं का संबंध है, प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने स्वयं द्वारा गठित निरीक्षण समिति द्वारा किए गए निरीक्षण के आधार पर राज्य सरकार से याचिकाकर्ता के प्रस्ताव की सिफारिश की थी । आगे यह अभिकथित है कि औरंगाबाद में नए कॉलेज शुरू करने के लिए राज्य सरकार ने किसी अल्पसंख्यक संस्था को अनुमति प्रदान नहीं की तथा राज्य सरकार ने उपर्युक्त पाठ्यक्रम शुरू करने के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को मनमाने ढंग से रÿ किया है ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को देखते हुए, निम्नलिखित विचारार्थ मुद्दे सामने आएः

(i) क्या बीबीए तथा बीसीए नामक दो पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को रद्द करके राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में आक्षेपित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है ?

(ii) राहत ?

मुद्दा संख्या 1ः आरम्भ में हमने यह स्पष्ट किया है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के प्रयोग को सुगम बनाने के लिए संसद के अधिनियम के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना की गई है । विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में स्पष्ट रूप से आयोग के गठन के उद्देश्य को दर्शाया गया है और इसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों के संबद्धता से संबंधित विवादों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र आयोग का होगा । इस अवसर पर हम उद्देश्यों और कारणों के कथन को उपयोगी रूप से उद्धृत कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं-

"राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम की एक धारा में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग(जिसे इसके आगे राष्ट्रीय आयोग कहा गया है) की स्थापना करने का प्रावधान है जो केंद्रीय विश्वविद्यालयों के साथ अल्पसंख्यक व्यावसायिक संस्थाओं के सीधे संबद्धता का प्रावधान करेगा।

अल्पसंख्यक समुदायों की लंबे समय से अनुभूत इस मांग को मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अल्पसंख्यक शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, प्रतिष्ठित नागरिकों और समुदाय नेताओं के साथ हुई बैठकों की श्रृंखला में भी रेखांकित किया गया था । अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दों में से एक अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन में पेश आ रही कठिनाइयां भी शामिल थीं, जबकि इस संबंध में उनको संवैधानिक गारंटी भी प्रदान की गई थी । मुख्य समस्या थी उनके द्वारा अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने का मुद्दा । राज्य विश्वविद्यालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार व अल्पसंख्यक आबादी का कतिपय विशेष क्षेत्रों में संकेंद्रण निरपवाद रूप से यह इंगित करता है कि ये संस्थाएं अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता स्थापित करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकीं ।

2. बाद में दिनांक 27 अगस्त, 2004 को आयोजित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा मानीटरिंग समिति की एक बैठक में भी अनेक विशेषज्ञों द्वारा ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए थे । विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के भागीदारों ने ऐसी संस्थाओं के संबंद्धता के संबंध में विश्वविद्यालयों के मौजूदा कानूनों द्वारा लगाई गई प्रायः प्रतिबंधात्मक शर्तों को ध्यान में रखते हुए ऐसे संबंद्धता तक पहुंच प्रदान करने की आवश्यकता की पुष्टि की। उन्होंने यह अनुभव किया कि इन शर्तों ने इन संस्थाओं को प्रदान किए गए उन अधिकारों को प्रभावित किया है जो इन संस्थाओं को अल्पसंख्यक होने के नाते प्रदान किए गए थे । यह तथ्य कि अपील और त्वरित निवारण के लिए कोई प्रभावी मंच नहीं था, अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर वंचन का बोध और अधिक बढ़ गया ।

3. राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम में व्यक्त की गई सरकार की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने का मुद्दा अत्यावश्यक था। संसद का सत्र नहीं चल रहा था और अगले अकादमिक सत्र से राष्ट्रीय आयोग के कार्यकरण को प्रभावी बनाने में निहित अत्याधिक आरंभिक कार्य को ध्यान में रखते हुए 11 नवम्बर, 2004 को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अध्यादेश, 2004 के प्रख्यापन के माध्यम से एक राष्ट्रीय आयोग के प्रख्यापन के सृजन का रास्ता चुना गया ।

4. उपरोक्त अध्यादेश की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(i) इससे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग का सृजन संभव हो पाया है ।

(ii) तत्समय प्रवृत अन्य किसी कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी यह किसी अनुसूचित विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध कॉलेज के रूप में मान्यता पाने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए अधिकार सृजित करता है ।

(iii) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और एक अनुसूचित विश्वविद्यालय के बीच संबंद्धता के मामलों के संबंध में यह एक सांविधिक आयोग के रूप में विवाद निपटान मंच की स्थापना करने की अनुमति प्रदान करता है । इस आयोग का निर्णय पक्षकारों के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा ।

(iv) अपने कार्यों के निष्पादन या निर्वहन के प्रयोजनार्थ किसी वाद पर विचारण करते समय आयोग को इसके अंतर्गत सिविल कोर्ट की शक्तियां प्राप्त होंगी, यह आयोग के निर्णयों को ऐसे प्रयोजन के लिए कानूनी मान्यता प्रदान करेगा; और

(v) यह केन्द्र सरकार के किसी विश्वविद्यालय को शामिल करने या उसे निकालने के लिए, अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार प्रदान करता है ।

5. यह विधेयक उपरोक्त अध्यादेश का स्थान लेगा ।

न्यायिक प्राधिकारी का मत भी इस विचार के पक्ष में जाता है कि विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन को संसद में विधेयक को पुनः स्थापित किए जाने के समय इस संविधि के सारभूत प्रावधानों के सच्चे अर्थ और प्रभाव के निर्धारण के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता । इस विधान को बनाए जाने के लिए उत्तरदायी पृष्ठभूमि तथा मामलों की पूर्व स्थिति को समझने और उस अहितकर स्थिति को समझने, जिसे यह संविधि समाप्त करना चाहती थी, के अलावा इनका अन्य किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता । तथापि उद्देश्यों और कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों का न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है जिन्हें अधिनियम पारित करते समय विधान के विचारण के अंतर्गत शामिल मान लिया गया होगा । यदि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम, 2004 (संक्षेप में अधिनियम) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए उस पृष्ठभूमि और संदर्भ, जिसमें अधिनियम को अधिनियमित किया गया था और उस प्रयोजन को भी ध्यान में रखा जाता है जिसे इस अधिनियमन द्वारा प्राप्त किया जाना था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अधिनियम' का अभिप्राय संबंधक विश्वविद्यालयों द्वारा संबद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अधिष्ठापित किए गए अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/वंचन, किसी शैक्षणिक संस्था का अल्पसंख्यक दर्जा निर्धारित करने और अनापत्ति प्रमाणपत्र आदि से संबंधित मामलों के त्वरित निपटान के लिए एक नई व्यवस्था का सृजन करना है । यह आयोग एक अर्ध-न्यायिक अधिकरण है और इसमें संविधान अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों को संबद्धता प्रदान करने तथा अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रदान किए गए अधिकारों से संबंधित विवादों के संबंध में क्षेत्राधिकार, शक्तियां तथा न्याय-निर्णय करने का प्राधिकार निहित किया गया है और यह प्रावधान भी किया गया है कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय आयोग सिविल प्रक्रिया संहिता के तकनीकी दांव-पेंचों में न फंस कर सुचारू रूप से अपना कार्य करे ।

अधिनियम की धारा 10 क अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अपनी पसंद के किसी विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता का अधिकार प्रदान करती है । धारा 10 क निम्नवत है

"**10क. अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की सहबद्धता चाहने का अधिकार** ।

(1) कोई अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अपनी पसंद के किसी विश्वविद्यालय से इस बात के अधीन रहते हुए सहबद्ध होने की मांग कर सकेगी कि ऐसी सहबद्धता उस अधिनियम के भीतर अनुज्ञेय है, जिसके अधीन उक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया है, उपधारा (1) के अधीन सहबद्ध होने के लिए किसी विश्वविद्यालय को कोई आवेदन, उस विश्वविद्यालय के परिनियम, अध्यादेश, नियमों या विनियमों द्वारा विहित रीति में फाइल कर सकेगा :

इस अधिनियम की धारा 12 आयोग को किसी विश्वविद्यालय की संबद्धता से संबंध में किसी विवाद का निर्णय लेने के लिए शक्ति प्रदान करती है : धारा 12 को निम्नानूसार पढ़ा जाए:-

'**12. आयोग की शक्तियां** -(1) यदि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और

किसी विश्वविद्यालय के बीच उसके ऐसे विश्वविद्यालय से सहबद्ध होने के संबंध में कोई विवाद उठता है तो उस पर आयोग का विनिश्चय अंतिम होगा ।

(2) आयोग को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, किसी वाद का विचारण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी, अर्थात् :-

(क) भारत के किसी भाग से किसी व्यक्ति को सम्मन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथ - पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 और 124, 1872(1872 का1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज अथवा ऐसे रिकार्ड अथवा दस्तावेज अथवा रिकार्ड की प्रति की अपेक्षा करना ;

(ड.) साक्षियों या दस्तावेज की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए।

[(3) आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत और धारा 196 (1860 का 45) के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (1974 का 2)की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।]

(बल दिया गया)

यहां उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है कि एनसीएमईआई अधिनियम में यह व्यवस्था है कि आयोग प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन दिशा निर्देशित होगा तथा उसे अपनी स्वयं की प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति प्राप्त होगी । धारा 12 की उप धारा (2) आयोग को यह शक्ति प्रदान करती है कि आयोग सिविल प्रक्रिया कोड के तहत साक्षियों को सम्मन देने, उनके उपस्थित होने, किसी लोक रिकार्ड की मांग करने कमीशन निकालने जैसी विनिर्दिष्ट शक्तियों का प्रयोग कर सकता है ।धारा 12 की उप धारा (3) में यह विनिर्दिष्ट है कि आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता के संदर्भ में न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी तथा आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) की धारा 195 तथा अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा। धारा 12 - क तथा 12 - ख आयोग को अपील करने का अधिकार प्रदान करती है तथा यह भी व्यवस्था करती है कि आयोग द्वारा पारित आदेश सिविल न्यायालय के आदेश की तरह कार्यान्वित किए जाएंगे । अधिनियम की धारा 12 - च में यह उल्लेख है कि किसी भी सिविल न्यायालय को ऐसे किसी मामले के संबंध में क्षेत्राधिकार नही है जिसका अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत निर्णय करने का आयोग को अधिकार प्राप्त है ।अतः एनसीएमआई अधिनियम के प्रावधानों का संक्षिप्त सार स्पष्ट रुप से यह संकेत करता है कि संबद्धता से संबंधित विश्वविद्यालय तथा अल्पसंख्यक संस्थान के बीच विवाद इस अधिनियम के दायरे में आता है । अधिनियम की प्रस्तावना तथा अधिनियम को लागू करने वाले उद्देश्यों तथा कारणों के परिप्रेक्ष्य में एनसीएमईआई अधिनियम की धारा 10 - क का स्पष्ट रुप से पठन करने पर पता चलता

है कि संबंधित पक्षकारों के बीच संबद्धता से संबंधित विवाद इस प्रयोजनार्थ गठित विशेष न्यायालय द्वारा निर्णित होंगे । सिविल न्यायालय का यह भी क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत आयोग को किसी मामले में निर्णय के लिए मिले अधिकार के संबंध में किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करे । अधिनियम की संरचना से स्वतः स्पष्ट होता है कि इसकी अध्यक्षता उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश द्वारा की जाती है । इस प्रकार एनसीएमईआई अधिनियम स्वतः पूर्ण संहिता है जिसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा अल्पसंख्यकों की शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता/संबद्धता देने के संबंध में उत्पन्न सभी विवादों पर कार्रवाई करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है । ऐसी स्थिति में, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का किसी विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता के लिए उत्पन्न विवाद पर निर्णय देने का आयोग का अधिकार है । धारा 12 की उप धारा (1) में यह घोषणा की गई है कि ऐसे विवाद पर आयोग का निर्णय अंतिम होगा । यह विवादित नहीं हो सकता कि वर्तमान विवाद अधिनियम की धारा 12 के दायरे में आता है ।

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को `अपनी पसंद`की शैक्षिक संस्था स्थापित करने और उसके संचालन का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के पीछे औचित्य अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की संस्था को चलाने की सुरक्षा प्रदान करना है । इन अधिकारों को उल्लंघन की स्थिति में प्रतिषेध के माध्यम और लागू करने के वचन से सुरक्षित किया गया है । प्रतिषेध अनुच्छेद 13 में समाहित है जो राज्य को ऐसे किसी भी कानून या नियम बनाने से रोकते है जो संविधान के अध्याय-III के तहत प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त या संकुचित करते हैं या इससे असंगत किसी कानून, नियम या विनियम को वीटों की धमकी देते हैं ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय `राष्ट्र के विवेक को दिया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने के प्रयोजन से अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं खोलने और चलाने से नहीं रोका गया है ताकि वे उन्हें सही अर्थों में देश के स्त्रा्-पुरुष बना सके । अल्पसंख्यकों को संविधान के इस अनुच्छेद 30 (1) के तहत सुरक्षा देने का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित तथा मजबूती देना है । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का आशय अपने देश में बालक बालिकाओं का समन्वित विकास करना है। यह शिक्षा के माध्यम द्वारा स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व की सच्ची भावना है । यदि अल्पसंख्यकों को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के तहत अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार नहीं दिया तो वह स्वयं को अलग थलग और पृथक समझेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी।

संदर्भ हेतु केरल शिक्षा विधेयक (उपर्युक्त) में श्री एस आर दास मुख्य न्यायाधीश ने निम्न टिप्पणी दी :-

"विचाराधीन अनुच्छेद के सही अर्थ और प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए मुख्य शब्द "अपनी पसंद" हैं यह कहा जाता है कि प्रभावशाली शब्द `पसंद` है और इस अनुच्छेद का सारतत्व उतना ही व्यापक है जितना किसी अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद इसे बना सकती है ।"

सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एस एस सी 558 में सर्वोच्य न्यायालय ने यह माना है कि अनुच्छेद 30 (1) में `अपनी पसंद के` शब्द अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं, जिसकी वे स्थापना करना चाहते हैं, का स्वरुप चुनने के अपार विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण या सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या दोनों प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना कर सकते हैं ।

इस मौके पर पी ए इनामदार एंड अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का निम्नलिखित टिप्पणी का मुख्यांश देना उपयोगी होगा :-

> "……अनुच्च्छेद 30 (1) में निहित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की यह इच्छा पूरी होते हुए देखना है उनके बच्चों का पालन पोषण उचित प्रकार से तथा प्रभावी ढंग से हो तथा उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए वे योग्यता हासिल करें तथा संसार में वह ऐसी बौद्धिक उपलब्ध्यों के साथ भली-भांति तैयार होकर प्रवेश करें जिससे कि वे सार्वजनिक सेवाओं, सामान्य पंथ निरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च शिक्षा देने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए स्वयं को उपयुक्त पाएं । इस प्रकार अल्पसंख्यकों के हितार्थ निम्नानुसार है :-
>
> (i)ऐसे समुदाय को अपना धर्म और भाषा के संरक्षण के लिए योग्य बनाना (ii) तथा ऐसे समुदाय से संबंध प्रदान करना । जब तक ये संस्थान उपर्युक्त उक्त दो उद्देश्यों को हासिल करके और हासिल करते हुए अपने अल्पसंख्यक चरित्र को बनाए रखते है जब तक वे संस्थान एक अल्पसंख्यक संस्थान बने रहेंगे ।"

"अपनी इच्छा" के शैक्षिक संस्थान की स्थापना के अधिकार का तात्पर्य ऐसे संस्थान वास्तव में स्थापित करना है जो कारगर ढंग से अपने समुदाय और अपने शिक्षण संस्थानों के लिए समर्पित विद्धतजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956)

यह अविवादित है कि औरंगाबाद जिले की पहचान एक अल्पसंख्यक जिले के तौर पर की गई। ऐसा मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक स्तर का संवर्धन और उसमें सुधार करने के लिए किया गया है। यह विवाद से परे है कि विचाराधीन पाठ्यक्रम शुरू करने के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव की संवीक्षा प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति द्वारा की गई थी । विशेषज्ञ समिति ने याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण किया और यह पाया कि उसके पास उक्त पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए अवसरंचनात्मक और अनुदेशात्मक सुविधाएं मौजूद थी और तदनुसार निरीक्षण समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने विचाराधीन पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज के प्रस्ताव को संस्तुति दे दी । राज्य सरकार विचाराधीन पाठ्यक्रम शुरु करने के लिए याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को इस आधार पर अस्वीकार नही कर सकता कि विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की उप-धारा (5) के अंतर्गत उसे ऐसा करने का पूर्णतः विवेकाधिकार है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता है कि इन पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज ने राज्य सरकार से कोई वित्तीय सहायता नहीं मांगी है । इसके विपरीत, याचिकाकर्ता ने स्थायी गैर अनुदान आधार पर इन पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति मांगी है । मामले को इस नजरिए से देखते हुए कि राज्य सरकार के बजट संबंधी संसाधनों की कोई प्रासंगिकता नही है । हालांकि, संविधान के अनुच्छेद में उन शर्तों का उल्लेख नही है जिनके तहत अल्पसंख्यक संस्थाओं को किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध किया जा सकता है, फिर भी अनुच्छेद 30(1)

अपने स्वरूप से ही यह अर्थ देता है कि जहां कोई संबद्धता मांगी जाती है, तो संबंधित विश्वविद्यालय समुचित कारणों के बिना संबद्धता देने से मना नही कर सकता अथवा ऐसी शर्तें लगाने का प्रयास नहीं कर सकता, जिनसे शैक्षणिक संस्थाओं का स्वायत्त प्रशासन ही पूरी तरह से नष्ट हो जाता हो । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य(2002) 8 एससीसी 481 में लिए गए निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है ।

इस बात पर बल देना होगा कि संबद्धता देने वाले विश्वविद्यालय द्वारा अनुच्छेद 30(1) के तहत आने वाली किसी शैक्षणिक संस्था को उचित तथा पर्याप्त आधार के बिना संबद्धता प्रदान करने से इंकार करना, अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत मूल अधिकारों का उल्लंघन है । तत्कालिक मामले में, प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा अपनाए गए अस्वीकृति आधार को यदि समाप्त कर दिया जाए तो रिकार्ड में यह दिखाने अथवा सुझाव देने के लिए कुछ नहीं बचता कि विचाराधीन पाठ्यक्रमों को संबद्धता प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज शर्तें पूरी नहीं करता है ।

याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया विवाद, संबद्धता के क्षेत्र के भीतर आता हे । संबद्धता एक सांविधिक संकल्पना है तथा सांविधियों द्वारा इसके लिए निर्धारित शर्तों को पूरा करने पर यह प्राप्त की जा सकती है । विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82तथा 83 के प्रावधानों में किसी कॉलेज को संबद्धता प्रदान करने की प्रक्रिया निर्धारित है ।

यहां यह बताए जाने की आवश्यकता है कि प्रतिवादी नं. 1 ने विचाराधीन पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति देने की प्रतिवादी विश्वविद्यालय की सिफारिशों को रद्द करने संबंधी राज्य सरकार के आक्षेपित आदेश का रिकार्ड प्रस्तुत नहीं किया है । प्रतिवादी नं. 1 की ओर से तर्क दिया गया है कि राज्य सरकार ने, सरकार द्वारा नियुक्त टास्क फोर्स समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी विश्वविद्यालय की उक्त सिफारिशें रद्द की हैं । यहां उल्लेख करना संगत है कि विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 के प्रावधान में विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की उप धारा (5) के तहत अपने स्व-निर्णय का प्रयोग करने के लिए सरकार द्वारा टास्क फोर्स समिति की नियुक्ति की संकल्पना नही है । हालांकि, टास्क फोर्स समिति की उक्त रिपोर्ट हमारे समक्ष दिखाने के लिए नहीं रखी गई कि आक्षेपित आदेश तैयार करते समय राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने उस सामग्री को ध्यान में रखा था, जिसके आधार पर प्रतिवादी विश्वविद्यालय की सिफारिशों को रद्द करने का निर्णय लिया गया था । संक्षेप में, रिकार्ड में कहीं यह दिखाने के लिए नहीं है कि अस्वीकृति का आक्षेपित आदेश समक्ष प्राधिकारी द्वारा विवेक का यथोचित प्रयोग करने के बाद तैयार किया गया था । मोहिन्दर सिंह गिल तथा अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त एआइआई 1978 एसीसी 851 में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि "जब सांविधिक प्राधिकारी कतिपय कारणों के आधार पर आदेश जारी करता है तो उसकी वैधता को ऐसे उल्लिखित कारणों से आंकना चाहिए तथा उनका सम्पूरण नए हल्फनामें अथवा अन्यथा के रूप में नहीं किया जाए ।"

इस संबंध में ईस्ट कोस्ट रेलवे बनाम महादेव आपा राव 2010 एआईआर एससीडब्ल्यू 4210 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला भी दिया जा सकता है जहां उच्चतम न्यायालय ने 'स्वेच्छाचारिता' शब्द के वास्तविक अर्थ को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है :-

> "18 'स्वेच्छाचारिता' शब्द की कोई सही-सही सांविधिक या अन्य परिभाषा नहीं है। कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य(एआइआर 1991

एससी 537):(1993 एआइआर एससीडब्ल्यू 77) में, न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि "स्वेच्छाचारिता" शब्द के वास्तविक अर्थ का सही-सही उल्लेख करने या पारिभाषित करने की तुलना में अधिक सरलता से दृष्टिक रूप में कल्पना की जा सकती है और यह कि कोई कार्य स्वेच्छाचारी है या नही इसका निर्धारण किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए ही किया जा सकता है । इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की कः

"स्वेच्छाचारिता" के अर्थ और वास्तविक आयात की सही-सही उल्लेख करने या पारिभाषित करने की तुलना में अधिक सरलता से दृष्टिक रूप से कल्पना की जा सकती है । यह प्रश्न कि कोई आक्षेपित कार्रवाई स्वेच्छाचारी है अथवा नहीं, का अंततः उत्तर दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखकर किया जा सकता है । एक स्पष्ट परीक्षण यह किया जा सकता है कि यह देखा जाए कि क्या आक्षेपित कार्रवाई से कोई विवेकपूर्ण सिद्धांत प्रकट होते हैं और यदि होते हैं, तो क्या वे तर्कसंगततता की कसौटी पर खरे उतरते हैं । जहाँ किसी कार्य को करने के लिए कोई पद्धति विहित की जाती है और उस प्रक्रिया का अनुसरण करने में कोई बाधा नहीं है, परन्तु जहाँ कार्य का निष्पादन अन्यथा उस रूप में किया जाता है जिससे कोई विवेकपूर्ण सिद्धांत प्रकट नही होते, जो कि युक्तियुक्त हों, तो उनसे स्वेच्छाचारिता का दोष होता है । राज्य द्वारा की गई प्रत्येक कार्रवाई कारणों पर आधारित होनी चाहिए और इससे यह पता चलता है कि कारणों के बिना की गई कोई कार्रवाई स्वेच्छाचारी है । विधि के नियम में कानून द्वारा शासन संकल्पित है न कि किसी व्यक्ति की मनोदशा, सनक या चंचलता द्वारा जिसे तत्समय शासन का दायित्व सौंपा गया है । यह टिप्पणी की जा सकती है कि "आप कितने ही बड़े क्यों न हो जाए, कानून आपसे बड़ा ही रहेगा"। इन शब्दों को सत्ता में बैठे व्यक्ति को सदैव ध्यान में रखना होगा"

19. शासकीय शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत का उल्लेख करते हुए प्रोफेसर डी. स्मिथ वुल्ड एंड जोवैल ने अपनी विख्यात पुस्तक "प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा" पुस्तक में इस बात पर बल दिया है कि किस प्रकार व्यापक विवेकाधिकार से संपन्न एक निर्णयकारी व्यक्ति से जब तक कि निस्संदेह रूप से वह सांविधि जिसके तहत उस अधिकार के प्रयोग से अन्यथा इंगित न होता हो, एक संवैधानिक लोकतंत्र में शक्तियों के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धांतों के अनुसार अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की आशा की जाती है । सभी लोकतांत्रिक प्रणालियों में स्वीकार किया जाने वाला सर्वाधिक मूलभूत विधिक नियम यह है कि किसी भी सक्षम प्राधिकारी में विहित शक्ति का मनमाने ढंग से प्रयोग नही किया जाएगा और यह कि उस शक्ति के प्रयोग से कोई अनुचित भेदभाव न होता हो। इस संबंध में उपरोक्त से निम्नलिखित उद्धरण समुचित है :

"हमने अनेक स्थितियों में यह देखा है कि शासकीय शक्ति के कार्यक्षेत्र की व्याख्या, संवैधानिक लोकतंत्र में शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले आम सिद्धांतों से पृथक करके नहीं की जा सकती । न्यायालय यह मान लेते हैं कि ये सिद्धांत सभी शक्तियों के प्रयोग के लिए लागू होते हैं और यह कि वहां जहां निर्णय देने वालों के

पास व्यापक विवेकाधिकार की शक्ति होती है, इस विवेकाधिकार का प्रयोग उन सिद्धांतों के आधार पर किया जाना होता है जब तक कि संसद अन्यथा स्पष्ट संकेत न दे । विधि का नियम, एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें कई अपेक्षाएं विहित हैं जैसे कि प्रत्येक को कानून की सुविधा प्राप्त करने का अधिकार और इस शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं करना चाहिए । विधि का नियम सबसे ऊपर विधिक सुनिश्चितता के सिद्धांत पर आधारित है जिनका यहां उस सिद्धांत के साथ विचार किया जाएगा जो अनुचित भेदभाव के बिना समानता अथवा समान व्यवहार के सिद्धांत नामक कानून के नियम के भीतर पूर्णरूप से नहीं परन्तु आंशिक रूप से शामिल है ।"

20. "किसी प्राधिकारी द्वारा किए जाने वाले आदेश में की गई स्वेच्छाचारिता को अलग-अलग रूपों में व्यक्त किया जा सकता है । किसी प्राधिकारी द्वारा आदेश जारी करने में अविवेकपूर्ण ढंग से काम करना उनमें से एक है । किसी लोक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से यह प्रकट होना चाहिए कि उसने विवेकपूर्ण ढंग से यह आदेश जारी किया है । किसी प्राधिकारी ने विवेकपूर्ण ढंग से कार्य किया है अथवा नहीं यह सर्वाधिक उपयुक्त रूप से उसके द्वारा जारी किए गए आदेश से प्रकट होता है । कोई भी प्रकटीकरण तभी सर्वाधिक उपयुक्त होता है, जब उसके साथ उन कारणों का भी उल्लेख हो जिनके कारण प्राधिकारी ने विचाराधीन आदेश पारित किए हैं । प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में कारणों की गैर-मौजूदगी अथवा उसी समय उन कारणों को दर्ज न कराने से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि यह आदेश स्वेच्छाचारिता से जारी किए गए हैं अतः विधिक दृष्टि से ये टिक नही सकते ।"

यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 85(5) के तहत शक्तियां पूरी तरह से वैवेविक है जिनका उपयोग कारणों तथा न्याय के सुस्थापित सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक मामले की परिस्थिति विशेष में किया जाना होता है परन्तु स्वेच्छाचारी अथवा मनमाने ढंग से नहीं। लार्ड हल्सवरी के अनुसार "विवेकाधिकार" का तात्पर्य है कि जब यह कहा जाता है कि प्राधिकारियों के विवेकाधिकार से कुछ किया जाना है परन्तु निजी मत के अनुसार नहीं बल्कि कारण तथा न्याय के अनुसार, परिहास से नहीं बल्कि कारणों और न्याय के नियम से किया जाना हैं, यह स्वेच्छाचारिता अस्पष्ट तथा मनमाने ढंग से न हो परन्तु विधिक और नियमित ढंग से हो (शार्पे बनाम वर्कफील्ड 1891 एसी 173)

प्रतिवादी सं. 1 द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की उप-धारा (5) में विहित अपने विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करके राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को रद्द कर दिया था । जैसे कि पहले कहा गया है कि राज्य सरकार का आक्षेपित आदेश हमारे समक्ष नहीं रखा गया । प्रतिवादी सं. 1 विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 82 की धारा (5) के तहत आदेश पारित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी है । आक्षेपित आदेश की वैधता प्रतिवादी सं. 1 द्वारा अपनी ओर से प्रस्तुत प्रत्युत्तर में दिए गए कारणों से नहीं आंकी जा सकती । आक्षेपित आदेश के न होने पर यह मान लेना कठिन होता है कि सक्षम प्राधिकारी ने, याचिकाकर्ता कॉलेज में विचाराधीन पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय की सिफारिशों को रद्द करके आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले अपने विवेक का इस्तेमाल किया है ।

पूर्ववर्ती कारणों को देखते हुए हम यह पाते तथा निर्णय देते हैं कि याचिकाकर्ता कॉलेज को पाठ्यक्रमों को शुरू करने की अनुमति देने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय की सिफारिशों को रद्द करने के राज्य सरकार के आक्षेपित आदेश से, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है ।

पूर्ववर्ती कारणों को देखते हुए आयोग अधिनियम की धारा 12 के साथ पठित धारा 11(ख) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करके राज्य सरकार से दृढ़ता से सिफारिश करता है कि वह प्रतिवादी विश्वविद्यालय की सिफारिशों के संदर्भ में शैक्षिक वर्ष 2011-12 के लिए बीबीए तथा बीसीए में पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को महाराष्ट्र विश्वविद्यालय 1994 की धारा 82 के परन्तुक के तहत अनुमति प्रदान करे । आयोग यह भी निदेश देता है कि उपर्युक्त 82 पूर्वोक्त के तहत राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त कर लेने पर प्रतिवादी विश्वविद्यालय पहली बार शैक्षिक वर्ष 2011-12 के उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के लिए महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम 1994 की धारा 83(1) के तहत याचिकाकर्ता कॉलेज को संबद्धता प्रदान करेगा ।

2010 का मामला संख्या 1383

मेडिकल विद्यार्थियों की प्रवेश संख्या बढ़ाने के लिए राज्य सरकार को निदेश देने संबंधी याचिका

याचिकाकर्ता : अल करीम शैक्षणिक ट्रस्ट, अध्यक्ष अहमद अश्फाक करीम, निवासी वीएयू ऑटोमोबाइल आशीयाना रोड के सामने पी ओ बी वी कॉलेज, पटना-14 बिहार के माध्यम से ।
कटिहार मेडिकल कॉलेज कटिहार, इसके अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, पी.एस. मुफ्फासिल कटिहार, जिला कटिहार के माध्यम से ।

प्रतिवादी : 1. प्रधान सचिव, स्वास्थ्य, चिकित्सा शिक्षा तथा परिवार कल्याण, बिहार सरकार, पटना।

2. बी एन मंडल विश्वविद्यालय माधेपुरा, जिला माधेपुरा बिहार अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से।

याचिकाकर्ता के विद्वान काउंसलर का पक्ष सुना गया

याचिकाकर्ता कालेज राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम (संक्षेप में अधिनियम) के अर्थ के अंतर्गत एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । याचिकाकर्ता मेडिकल कालेज के पास भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद द्वारा निर्धारित मानदंडो के अनुसार समस्त आधुनिक उपकरणों और सुविधाओं से युक्त 750 बिस्तरों वाले अस्पताल सहित समस्त अवसंरचनात्मक और शिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं । प्रवेश पाने वाले छात्रों की संस्वीकृत संख्या 60 से बढ़ाकर 150 करने के प्रयोजन से याचिकाकर्ता कालेज ने राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को दिनांक 20-11-2008 को अनिवार्यता प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए आवेदन किया । याचिकाकर्ता कालेज द्वारा बार-बार अनुस्मारक भेजे जाने के बावजूद राज्य सरकार ने न तो उक्त प्रमाणपत्र देने से मना किया और न ही उक्त प्रमाणपत्र दिया । उसका परिणाम यह हुआ कि याचिकाकर्ता कालेज प्रवेश पाने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए संबद्धता हेतु सहमति प्राप्त करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय को आवेदन नहीं कर पाया । इस आधार पर, याचिकाकर्ता कालेज ने आयोग को यह घोषणा प्राप्त करने के लिए आवेदन किया है कि अधिनियम की धारा 10 की उप धारा (3) के अनुसार सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्रदान कर दिया गया मान लिया गया है ।

याचिकाकर्ता प्रतिवादी विश्वविद्यालय के लिए यह निदेश भी चाहता है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय, याचिकाकर्ता कालेज में प्रवेश पाने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए संबद्धता हेतु सहमति प्रदान करने के लिए अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के अनुसार आयोग द्वारा की गई घोषणा के संबंध में कार्रवाई करे ।

कई नोटिस तामील किए जाने के बावजूद प्रतिवादी की ओर से कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ ।अतः मामले पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 33 के साथ पठित धारा 10 क के अंतर्गत बनाए गए विनियमों के अनुसार मेडिकल कालेज में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् की अनुमति प्राप्त करने के लिए राज्य सरकार का अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्राप्त करने की आवश्यकता अनिवार्य है । दिनांक 20-11-2008 को याचिकाकर्ता कालेज ने एम बी बी एस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या 60 से बढ़ाकर 150 करने के लिए अनिवार्यता प्रमाणपत्र जारी करने के लिए राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को आवेदन किया । याचिकाकर्ता ने उक्त आवेदन पत्र की एक फोटो कॉपी दाखिल है । उसने दिनांक 16-7-2010 के अपने उस अनुस्मारक की एक प्रति भी दाखिल की है जो उसने राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को उसके द्वारा मांगे गए अनिवार्यता प्रमाण पत्र को जारी करने के लिए भेजी थी । याचिकाकर्ता के विद्वान काउंसलर ने यह प्रबल तर्क दिया है कि दिनांक 20-11-2008 के आवेदन पत्र और दिनांक 16-7-2010 के अनुस्मारक, जो राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को भेजे गए थे, का प्राधिकारी ने कोई जवाब नहीं दिया । अतः उसने यह निवेदन किया कि याचिकाकर्ता कालेज अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा के धारणा उपबंध का अवलंब लेने का अधिकारी है । धारा 10 की उप-धारा (3) इस प्रकार है :-

> "(3) जहां अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए उप-धारा (1)के अंतर्गत आवेदन पत्र की प्राप्ति के 90 दिनों की अवधि के भीतर'
>
> (क) सक्षम प्राधिकारी ऐसा प्रमाणपत्र प्रदान नहीं करता, अथवा (ख) जहां कोई आवेदन पत्र रद्द कर दिया गया है और इसकी सूचना उस व्यक्ति को नहीं दी गई है जिसने ऐसा प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन किया था, वहां यह समझा जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी ने आवेदक को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान कर दिया है ।

रिकार्ड में उपलब्ध सामग्री स्पष्ट रुप से यह सिद्ध करती है कि 20-11-2008 को याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को, एम बी बी एस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाकर 60 से 150 करने के लिए अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए आवेदन किया था और सक्षम प्राधिकारी को बार-बार अनुस्मारक जारी किए जाने के बावजूद इस संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है । मामले के इस पक्ष को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता कालेज अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के धारणा उपबंध का अवलंब लेने का अधिकारी है । धारा 10 की उप-धारा का (4) आधार तत्व यह है कि अनापत्ति प्रमाणपत्र/अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने पर याचिकाकर्ता, या जहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनापत्ति प्रमाणपत्र/अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्रदान किया गया मान लिया गया है, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए निर्धारित नियमों और विनियमों के अनुसार अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था शुरु करने तथा उसकी स्थापना के संबंध में आगे की कार्यवाही करने के लिए पात्र होगा ।

याचिकाकर्ता संस्था संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंर्तगत आने वाली एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । अनुच्छेद 30 (1) अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और उनको संचालित करने का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है । संचालित करने के अधिकार का अर्थ है, संस्था के कार्यों का प्रबंधन और काम-काज चलाना । इसमें इसके द्वारा अपनी शासी निकाय चुनने, अध्यापन और गैर-अध्यापन स्टाफ का चयन करने और अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने का अधिकार शामिल है । संचालन की संकल्पना में किसी व्यावसायिक कालेज में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाने का चुनाव भी शामिल है । ये सब अधिकार मिल कर संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अर्थ के भीतर शैक्षणिक संस्था स्थापित और संचालित करने की समेकित संकल्पना का निर्माण करते हैं । (टी एम ए पई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य 2002 (8) एस सी सी 481 तथा पी ए ईनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 एस सी सी 537।

पूर्वोक्त कारणों से हम यह घोषणा करते हैं कि राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के अनुसार, याचिकाकर्ता कालेज द्वारा एम बी बी एस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या 60 से बढ़ाकर 150 करने की मांग के अनुरुप अनिवार्यता प्रमाणपत्र दे दिया, मान लिया गया है । अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) के उपबंध को दृष्टिगत करते हुए हम विश्वविद्यालय को आदेश देते हैं कि वह अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) के अनुसार अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के संबंध में इस आयोग द्वारा की गई पूर्वोक्त घोषणा पर कार्रवाई करे तथा जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा मांग की गई है, एम बी बी एस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या 60 से बढ़ाकर 150 करने के लिए याचिकाकर्ता कालेज को संबद्धता के लिए सहमति प्रदान करे । इस आदेश की प्रतियां पक्षकारों को भेजी जाएं।

2010 का मामला संख्या 1556

अल्पसंख्यक संस्था में छात्रों को उर्दू का अध्ययन करने की अनुमति देने संबंधी याचिका

याचिकाकर्ता : शिक्षा सेवा समिति, के-8, न्यू सीलमपुर, दिल्ली-110053

प्रतिवादी : 1. उप निदेशक, शिक्षा, उत्तर पूर्वी जिला, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार ।

2. प्रधानाचार्य, सी आर दास सर्वोदय कन्या विश्वविद्यालय नंबर-1, न्यू सीलमपुर, दिल्ली-110053

इस याचिका द्वारा श्री हाशिम उद्दीन, शिक्षा सेवा समिति, के-8, न्यू सीलमपुर, दिल्ली चाहते हैं कि सी आर. दास, प्रधानाचार्य, सर्वोदय कल्या विद्यालय नंबर 1, न्यू सीलमपुर , दिल्ली को इस आशय का निदेश दिया जाए कि इस शैक्षणिक सत्र अर्थात् 2010-11 से वे 11वीं कक्षा के छात्रों को उर्दू का अध्ययन करने की अनुमति प्रदान करें । यह अभिकथित है कि 70 से अधिक लड़कियों ने उक्त विद्यालय से सी बी एस परीक्षा की कक्षा X, उर्दू विषय सहित उत्तीर्ण की है । लगभग 40 प्रतिशत छात्र 11वीं कक्षा में एक विषय के बतौर उर्दू पढ़ना चाहते हैं और उनके अभिभावकों ने भी इस संबंध में अपनी सहमति दे दी है । उर्दू अकादमी से एक उर्दू पी जी टी की इस विद्यालय में 10वीं कक्षा तक को उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्ति की गई है और यह शिक्षक 11वीं कक्षा के छात्रों को भी उर्दू पढ़ा सकता है ।

नोटिस तामील किए जाने के बावजूद प्रतिवादियों ने कार्यवाही में भाग नहीं लिया । परिणामतः याचिका में किए गए प्रकथनों को दंड प्रक्रिया संहित के आदेश 8, नियम 5 की शर्तों के अनुसार प्रतिवादियों द्वारा स्वीकृत किया गया मान लिया गया है । चूंकि उक्त विद्यालय के लगभग 40 छात्र 11वीं कक्षा में एक विषय के रुप में उर्दू पढ़ना चाहते हैं और इस विद्यालय में एक उर्दू अध्यापक पहले से ही नियुक्त है, अतः वह 11वीं कक्षा के छात्रों को भी उर्दू भाषा पढ़ा सकता है । अतएव, उक्त प्रयोजनार्थ किसी अतिरिक्त उर्दू शिक्षक की आवश्कता नहीं पड़ेगी । संविधान के अनुच्छेद 29 (1) में भाषायी तथा सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षित रखने का मूल अधिकार प्रदान किया गया है । सी आर दास सर्वोदय कन्या विद्यालय नंबर 1, न्यू सीलमपुर, दिल्ली के प्रधानाचार्य का 11वीं कक्षा में एक विषय के बतौर छात्राओं को उर्दू पढ़ने की अनुमति न देने की आक्षेपित कार्रवाई छात्राओं को संविधान के अनुच्छेद 29 में उपबंधित उनके संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन है ।

पूर्वोक्त कारणों से सी आर. दास सर्वोदय कन्या विद्यालय नंबर 1, न्यू सीलमपुर, दिल्ली के प्रधानाचार्य को यह निदेश दिया जाता है कि वे इस शैक्षणिक सत्र अर्थात् 2010-11 में उन छात्रों को 11वीं कक्षा में एक विषय के बतौर उर्दू पढ़ने की अनुमति प्रदान करें जिन्होंने वैकल्पिक भाषा के रुप में उर्दू का चुनाव किया था । उप निदेशक (शिक्षा), उत्तर पूर्व जिला को यह निदेश दिया जाता है कि वे उक्त विद्यालय के प्रधानाचार्य को इस शैक्षणिक सत्र में 11वीं कक्षा में एक विषय के रुप में छात्राओं को उर्दू पढ़ने की अनुमति देने के लिए निदेश देकर आयोग के पूर्वेक्त निष्कर्ष को कार्यान्वित करें ।

2010 का मामला संख्या 1557

एक डेंटल कालेज के एम डी एस पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए अनुमति

याचिकाकर्ता : एम ए रंगूनवाला कालेज ऑफ डेंटल साइंसेज एंड रिसर्च सेंटर, 2390-बी, के बी हिदायतुल्लाह रोड, कैम्प, पूणे ।

प्रतिवादी : 1. संयुक्त सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, निर्माण भवन, नई दिल्ली ।

2. सचिव, भारतीय दंत चिकित्सा परिषद, एवाने गालिब, कोटला रोड, नई दिल्ली।

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पारित दिनांक 6-8-2010 के आदेश को रद्द करवाना चाहता है । याचिकाकर्ता यह भी चाहता है कि प्रतिवादी संख्या 1 को यह निदेश दिया जाए कि वह याचिकाकर्ता का दिनांक 16-6-2010 का आवेदन पत्र, मामले में उपयुक्त कार्रवाई के लिए प्रतिवादी संख्या 2 को अग्रेषित करे । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता कालेज संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत आने वाली अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है। याचिकाकर्ता कालेज की स्थापना 2001 में की गई थी तथा यहां बी डी एस और एम डी एस पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। बी डी एस पाठ्यक्रम के लिए आरंभिक वर्षों में ही अनुमोदन/अनुमति प्राप्त कर ली गई है और कालेज की स्थापना के चार वर्षों के उपरांत कालेज को मान्यता प्रदान की गई है । शैक्षणिक वर्ष 2007-08 में याचिकाकर्ता कालेज ने 7 विषयों में एम डी एस पाठ्यक्रम आरंभ किया और 8वें विषय में पाठ्यक्रम 2008-09 में आरंभ किया गया । भारतीय दंत चिकित्सा परिषद् ने याचिकाकर्ता कालेज का निरीक्षण

किया है और समस्त आवश्यक अवसंरचनात्मक तथा शिक्षण सुविधाओं से संतुष्ट हो जाने के उपरांत केन्द्र सरकार ने अनुमोदन प्रदान कर दिया है । वर्तमान में याचिकाकर्ता कालेज निम्नलिखित 8 विषयों में एम डी एस पाठ्यक्रम चलाता है ।

क्रम सं	विषय का नाम	प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अनुमत इनटेक	आरंभ किए जाने का वर्ष
1.	आर्थोडोंटिक्स	4	2007-2008
2.	ओरल मेडिसिन	2	2007-2008
3.	कंजरवेटिव डेंटिस्ट्री	4	2007-2008
4.	पीरियोडोंटिक्स	4	2007-2008
5.	प्रोस्थोडोंटिक्स	3	2007-2008
6.	ओरल पैथोलॉजी	2	2007-2008
7.	ओरल मैक्सिलोफेशियल सर्जरी	3	2007-2008
8.	पेडोडोंटिक्स	3	2008-2009

यह अभिकथित है कि शैक्षणिक वर्ष 2011-12 के लिए याचिकाकर्ता ने दिनांक 16-6-2010 के आवेदन पत्र द्वारा प्रत्येक विषय में 3 अतिरिक्त सीटों सहित एम डी एस पाठ्यक्रम के अंतर्गत 7 विषयों के संबंध में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए सीटें बढ़ाने (इनटेक) के लिए एक आवेदन पत्र दिया है । याचिकाकर्ता ने दिनांक 22-7-2010 के डिमांड ड्राफ्ट द्वारा 21 लाख रु की अपेक्षित फीस भी जमा करा दी है । दिनांक 9-7-2010 को प्रतिवादी संख्या 1 ने अतिरिक्त जानकारी मांगी जो 22-7-2010 को याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत कर दी गई । याचिकाकर्ता का आवेदन पत्र प्रतिवादी संख्या 2 को अग्रेषित करने के स्थान पर प्रतिवादी संख्या 1 ने गलत ढंग से आवेदनपत्र याचिकाकर्ता को, दिनांक 6-8-2010 के आदेश द्वारा 21 लाख रु के डिमांड ड्राफ्ट सहित लौटा दिया । यह अभिकथित है कि दिनांक 6-8-2010 की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में उपबंधित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

नोटिस तामील किए जाने के बावजूद प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ जिसके परिणामस्वरुप मामले में उसके विरुद्ध एकपक्षीय रुप से कार्यवाही हुई । प्रतिवादी संख्या 2 ने इस आधार पर याचिका का प्रतिरोध किया कि याचिकाकर्ता कालेज भारतीय दंत चिकित्सा परिषद् (नए डेंटल कालेजों की स्थापना, अध्ययन या प्रशिक्षण के नए या उच्चतर पाठ्यक्रम आरंभ करना तथा डेंटल कालेजों में प्रवेश क्षमता बढ़ाना) विनियम, 2006 (संक्षेप में विनियम) के अंतर्गत निर्धारित आवश्यक दस्तावेज जमा कराने में असफल रही है अतः प्रतिवादी संख्या 1 ने उसके अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार आवेदनपत्र लौटा दिया ।

पक्षकारों के विरोधी तर्को के मद्देनजर जो प्रश्न विचार के लिए पैदा होता है वह यह है कि क्या दिनांक 6-8-2010 की आक्षेपित कार्रवाई अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ?

यह बात निर्विवाद है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था होने के नाते याचिकाकर्ता कालेज संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत संवैधानिक सुरक्षा पाने का हकदार है ।

यह बात विवाद से परे है कि याचिकाकर्ता के प्रस्ताव के साथ संलग्न दिनांक 15-6-2006 का अनिवार्यता प्रमाणपत्र केवल 3 वर्षों के लिए वैध है और विश्वविद्यालय से संबद्धता का दिनांक 5-7-2008 का पत्र 7-10-2010 तक वैध है । स्वीकार्य रुप में, याचिकाकर्ता कालेज के पास वैद्य अनिवार्यता प्रमाणपत्र तथा कम्युनिटी डेंटिस्ट्री के विषय में एम डी एस कोर्स आरंभ करने के लिए विश्वविद्यालय से संबद्धता की सहमति नहीं है । दिनांक 9-7-2010 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता कालेज को उक्त दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था । यद्यपि याचिकाकर्ता ने दिनांक 22-7-2010 के पत्र द्वारा 21 लाख रु की अपेक्षित फीस भेज दी है तथापि अनिवार्यता प्रमाणपत्र तथा संबंधित विश्वविद्यालय की अस्थायी संबद्धता का पत्र सक्षम प्राधिकारी के समक्ष जमा नहीं कराया गया जिसके परिणामस्वरुप विनियमों के नियम 20 के अनुसार आवेदनपत्र याचिकाकर्ता को लौटा दिया गया । श्री इमानदार दिनांक 6-8-2010 के आक्षेपित आदेश को इस आधार पर रद्द कराना चाहते हैं कि अनिवार्यता प्रमाणपत्र तथा विश्वविद्यालय संबंधन प्रमाणपत्र लौटाने का दिनांक 6-8-2010 का आक्षेपित आदेश अपरिपक्व है । उन्होंने हमारा ध्यान 16-1-2006 को अधिसूचित विनियमों की अनुसूची की ओर आकर्षित किया है । अनुसूची के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा एम डी एस के लिए आवेदन पत्र 1 मई से 30 जून तक प्राप्त किए जाने थे । तकनीकी संवीक्षा के लिए केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय दंत चिकित्सा परिषद् को आवेदन पत्र भेजने की अंतिम तिथि 31 जुलाई है । भारतीय दंत चिकित्सा परिषद् द्वारा केन्द्र सरकार को सिफारिशें भेजने की अंतिम तिथि 28 फरवरी है तथा केन्द्र सरकार द्वारा 31 मार्च तक अनुमति पत्र जारी किया जा सकता है । प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा नियत की गई सीटों की संख्या बढ़ाने के लिए स्वमूल्यांकन रिपोर्ट प्रस्तुत करने की तिथि निर्धारित करने वाले दिनांक 13-7-2010 के परिपत्र में यह तिथि 15 अक्तूबर से 30 अक्तूबर निर्धारित की गई है । इस बात का विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि दिनांक 13-7-2010 का परिपत्र संविधिक नियमों का स्वरुप ग्रहण नहीं कर सकता । यह केवल एक मार्गदर्शी सिद्धांत है और सांविधिक पृष्ठभूमि के अभाव में मार्गदर्शी सिद्धांत स्वरुप में परामर्शी होते हैं (पूनम वर्मा बनाम डी डी ए 2008 ए आई आर एस सी डब्ल्यू 199) । नरेन्द्र कुमार माहेश्वरी बनाम भारत का संघ तथा अन्य, ए आई आर, 1989 एस सी 2138 में भी उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि मार्गदर्शी सिद्धांत अपने स्वरुप में प्रत्यक्ष अधीनस्थ या आनुषंगिक विधान के अंतर्गत नहीं आते हैं । वे केवल परामर्शक की भूमिका निभाते हैं। परिणामतः प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी किया गया दिनांक 13-7-2010 का परिपत्र विनियमों के उस नियम 20 पर अधिभावी नहीं हो सकता जो केन्द्र सरकार को अपूर्ण आवेदनपत्र या स्कीम को लौटाने का अधिकार प्रदान करता है । परिणामतः विनियमों के नियम 20 के अंतर्गत निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा पारित दिनांक 6-8-2010 के आक्षेपित आदेश का कोई अपवाद नहीं हो सकता । आयोग प्रतिवादी संख्या 1 को नियम 20 का उल्लंघन कर कार्य करने के लिए आदेश जारी नहीं कर सकता क्योंकि इसका अर्थ होगा प्राधिकारियों को कानून का उल्लंघन करने के लिए बाध्य करना । ऐसे आदेशों की परिणिति कानून के नियम को नष्ट करने में हो सकती है ।

पूर्वोक्त कारणों से याचिका खारिज की जाती है ।

2010 का मामला संख्या 950

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार तथा पंजाबी/उर्दू अकादमी दिल्ली को उर्दू और पंजाबी भाषाएं पढ़ाने के लिए निदेश देने हेतु अनुरोध

याचिकाकर्ता : लेफ्टिनेंट कर्नल ए एस बरार (सेवानिवृत्त) 194, हरगोविंद एनक्लेव, दिल्ली- 92

प्रतिवादी : 1. सचिव, उर्दू अकादमी, सी पी ओ बिल्डिंग, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

2. सचिव, पंजाबी अकादमी, डी डी ए कम्युनिटी सेंटर, सदर थाना रोड, मोतियाखान, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55

3. उप निदेशक (पूर्व), शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार, आनंद विहार, दिल्ली ।

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता लेफ्टिनेंट कर्नल ए एस बरार (सेवानिवृत्त) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार तथा पंजाबी/उर्दू अकादमी, दिल्ली के लिए यह निदेश चाहते हैं कि ये सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में उर्दू तथा पंजाबी भाषाएं पढ़ाने के लिए शिक्षक उपलब्ध कराएं । इस संबंध में उन्होंने पंजाबी और उर्दू अकादमी के सचिवों को अलग-अलग पत्र लिखे हैं । याचिकाकर्ता के अनुसार विद्यालय के प्रधानाचार्यों/मुख्याध्यापकों को पंजाबी/उर्दू भाषा का विकल्प चुनने की छात्रों को अनुमति प्रदान करने का निदेश दिया जाए । सचिव, पंजाबी अकादमी को लिखे अपने पत्र में उन्होंने निम्नलिखित 18 विद्यालयों को भी सूचीबद्ध किया है :-

1. सर्वोदय कन्या विद्यालय, सूरजमल विहार
2. सर्वोदय कन्या विद्यालय, किरण विहार
3. सर्वोदय कन्या विद्यालय, विश्वास नगर
4. राजकीय सह-शिक्षा विद्यालय, प्रीत विहार
5. सर्वोछय विद्यालय, आनंद विहार
6. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, झिलमिल कॉलोनी
7. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, विवेक विहार, फेज-II
8. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, विवेक विहार, फेज-II
9. सर्वोदय कन्या विद्यालय, भोला नाथ नगर-I
10. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, भोला नाथ नगर-III
11. राजकीय सह-शिक्षा उच्चतर माध्यमिक स्कूल, ललिता पार्क
12. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, भोला नाथ नगर-II
13. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, तेलीवाड़ा
14. सर्वोदय कन्या विद्यालय, शकरपुर-I
15. सर्वोदय कन्या विद्यालय, कृष्ण नगर
16. सर्वोदय कन्या विद्यालय, राजगढ़ कालोनी
17. राजकीय कन्या माध्यमिक कन्या विद्यालय, ब्लॉक शकरपुर
18. राजकीय सह-शिक्षा विद्यालय, विनोद नगर

सचिव, उर्दू अकादमी, दिल्ली को सम्बोधित उनके पत्र में निम्नलिखित 11 विद्यालयों का उल्लेख किया गया है :-

1. सर्वोदय कन्या विद्यालय, विश्वास नगर
2. राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल विद्यालय, विश्वास नगर
3. सर्वोदय कन्या विद्यालय, किरण विहार
4. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, विवेक विहार-II
5. राजकीय सह-शिक्षा विद्यालय, प्रीत विहार
6. राजकीय उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, ब्लॉक शकरपुर
7. राजकीय सह-शिक्षा विद्यालय, विनोद नगर
8. राजकीय सह-शिक्षा विद्यालय, तेलीवाड़ा
9. राजकीय सह-शिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, ललिता पार्क
10. सर्वोदय कन्या विद्यालय, शकरपुर, नंबर-2
11. राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, सूरजमल विहार

आयोग द्वारा जारी किए गए नोटिस के प्रत्युत्तर में उप निदेशक, शिक्षा, पूर्वी जिला, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली ने यह कहा है कि आवश्यक कार्रवाई के लिए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन सचिव, पंजाबी/उर्दू अकादमी को भेज दिए गए हैं ।

पूरक याचिका में याचिकाकर्ता ने यह कहा है कि वह अनेक बार पूर्वोक्त स्कूलों में गया और उसने छात्रों से बात की और उससे यह बात निकल कर सामने आई है कि पूर्वोक्त विद्यालयों में पंजाबी/उर्दू शिक्षकों की तत्काल नियुक्ति करने की आवश्यकता है । याचिकाकर्ता के अनुसार पंजाबी और उर्दू शिक्षकों की अनुपस्थिति में छात्रों को बाध्य होकर संस्कृत भाषा का विकल्प चुनना होगा ।

प्रत्युत्तर में उर्दू अकादमी के सचिव ने यह कहा है कि उर्दू अकादमी की स्थापना का मुख्या उद्देश्य था दिल्ली में साहित्य तथा सामासिक भाषायी संस्कृति को बढ़ावा देना, उसका प्रचार तथा विकास करना। अपनी स्थापना के तुरंत बाद अकादमी ने शिकायतों के आधार पर, उर्दू शिक्षा के अध्यापन के लिए बेहतर सुविधाएं प्रदान करने के लिए मामले को शिक्षा निदेशालय के साथ उठाया जिसके परिणामस्वरुप मानदंड शिथिल किए गए और उर्दू भाषा को विद्यालयों में पढ़ाने की अनुमति प्रदान की गई बशर्ते कि कक्षा III, IV, V, VI, VII और VIII के 6 विद्यार्थियों ने उर्दू भाषा का चुनाव किया होता किन्तु उर्दू का अध्यापक तभी दिया जा सकता था यदि एक सप्ताह में कम से कम 18 पीरियड हों । चूंकि प्रति सप्ताह 18 पीरियड से कम पीरियड होने पर एक टी जी टी के पद को मंजूरी देना संभव नहीं था, अतः अकादमी अंशकालिक शिक्षक नियुक्त कर रही थी । वर्ष 1991 में दिल्ली प्रशासन द्वारा यह निर्णय लिया गया कि उर्दू अकादमी और पंजाबी अकादमी को आगामी आदेशों तक अंशकालिक शिक्षकों की नियुक्ति नहीं करनी चाहिए । तदनुसार तब से उर्दू अकादमी द्वारा किसी शिक्षक की नियुक्ति नहीं की जा रही है और उर्दू शिक्षकों की संख्या घट कर 103 रह गई है ।

अपने उत्तर में सचिव, पंजाबी अकादमी ने उक्त अकादमी की स्थापना की पृष्ठभूमि दी है । यह अभिकथित है कि 1978 में गृह मंत्रालय के अनुदेशों के अनुसार पंजाबी भाषा को संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली में वही दर्जा दिया गया था जो उर्दू भाषा को दिया गया था । पंजाबी अकादमी द्वारा नियुक्त अंशकालिक पंजाबी शिक्षकों के माध्यम से विद्यालयों में पढ़ाई जा रही पंजाबी भाषा की सफलता को ध्यान में रखते हुए एक स्वायत निकाय के रुप में 1981 में तदनुसार एक पंजाबी प्रकोष्ठ की स्थापना की गई । शिक्षा निदेशालय, एम सी डी, एन डी एम सी तथा सहायता प्राप्त विद्यालयों में अंशकालिक शिक्षक प्रदान करने

के लिए योजना आयोग पंजाबी अकादमी को अलग से निधि उपलब्ध करा रहा है । तथापि, 1991 में राज्य सरकार द्वारा पंजाबी भाषा के अंशकालिक शिक्षकों की नई भर्ती पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय किया गया। तब से पंजाबी भाषा के पंजाबी अकादमी द्वारा नियुक्त शिक्षकों की संख्या घटनी शुरु हो गई है और पंजाबी शिक्षकों की मौजूदा संख्या 706 है । मामले की लंबितता के दौरान सचिव, पंजाबी अकादमी ने पंजाबी भाषा पढ़ाने के लिए 7 शिक्षकों की नियुक्ति की है और उन्होंने याचिका में वर्णित विद्यालयों में कार्यभार भी ग्रहण कर लिया है ।

यहां इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार ने शासकीय ज्ञापन जारी कर उर्दू और पंजाबी भाषाओं को पढ़ाने की अनुमति दे दी है बशर्ते कि कक्षा III, IV, V, VI,VII और VIII के छः विद्यार्थियों ने उर्दू या पंजाबी भाषा को वैकल्पिक विषय के रुप में चुना हो। यह सरकारी ज्ञापन इस उपरिका के अध्यधीन जारी किया गया कि उक्त भाषाओं को पढ़ाने के लिए शिक्षक की व्यवस्था की जा सकती है यदि एक सप्ताह में कम से कम 18 पीरियड हो । उर्दू अकादमी की ओर से यह तर्क व्यक्त किया गया कि चूंकि प्रति सप्ताह में 18 से कम पीरियड होने के कारण एप टी जी टी को मंजूरी देना संभव नहीं था अतः अकादमी अंशकालिक शिक्षकों की नियुक्ति कर रही थी । 1991 में दिल्ली प्रशासन ने उर्दू और पंजाबी अकादमी द्वारा की जा रही अंशकालिक शिक्षकों की भर्ती पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय किया । उर्दू अकादमी द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि उक्त निर्णय के बाद उर्दू शिक्षकों की संख्या घट कर 103 रह गई है । पंजाबी अकादमी के अनुसार पंजाबी भाषा के शिक्षकों की संख्या इस समय 706 है । जैसा कि पहले कहा गया था, 1991 में दिल्ली प्रशासन ने उर्दू और पंजाबी भाषाएं पढ़ाने वाले शिक्षकों की भर्ती पर प्रतिबंध लगा दिया था । उर्दू और पंजाबी भाषाओं की सरकार उपेक्षा का यह बहुत बड़ा उदाहरण है । यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उर्दू और पंजाबी भाषाओं को, विद्यालयों में शिक्षण के माध्यम से विलुप्त होने से बचाने की जरुरत है । जो भी छात्र इन दोनों भाषाओं में से किसी भाषा का अध्ययन करना चाहता है उसे इसके अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। राज्य द्वारा नियंत्रित शिक्षा प्रणाली में उर्दू और पंजाबी भाषाएं पढ़ाने के लिए अवसर उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता है । उर्दू भाषा और साहित्य हमारे देश की सामासिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग है जिसके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम, दोनों ही प्रकार के व्यक्ति साझीदार हैं । इस भाषा को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि उन लोगों के इस पूर्वग्रह का विरोध किया जाए जो यह मानते हैं कि शिक्षण माध्यम के रुप में उर्दू भाषा का चुनाव करना राष्ट्रीय अस्मिता को धोखा देने के समान है ।

इस बात पर विशेष रुप से प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि उर्दू और पंजाबी भाषाएं वैकल्पिक विषय बनती जा रही हैं और इन्हें संस्कृत के विकल्प के मुकाबले में खड़ा कर दिया गया है जिससे छात्रों को बाध्य होकर व्यावहारिक कारणों से संस्कृत का ही चुनाव करना पड़ रहा है । इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि छोटी आयु में बच्चे के पास कैरियर को लेकर निर्णय करने के लिए पर्याप्त जानकारी नहीं होती । अतः उसे तीसरी भाषा के रुप में संस्कृत पढ़ने के लिए कहना उस पर अतिरिक्त बोझ डालना है । जो छात्र प्राथमिक स्तर पर उर्दू या पंजाबी पढ़ना चाहते थे उनको संस्कृत पढ़ाने से उनकी शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में कृत्रिम अवरोध पैदा हो जाएगा क्योंकि उन्हें भाषा को लेकर ही संघर्ष करना पड़ेगा और अपनी उस ऊर्जा का इसमें अपव्यय करना पड़ेगा जिसका प्रयोग अन्यथा विश्व को समझने में किया जा सकता था ।

इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा के लिए संविधान के अनुच्छेद 350 क के अंतर्गत संवैधानिक निदेश होने के बावजूद उर्दू और पंजाबी भाषाएं पढ़ाने के लिए इनके शिक्षकों की भर्ती पर दिल्ली सरकार द्वारा दिनांक 29-4-1991 के आदेश द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था । संविधान का अनुच्छेद 29 (1) सरकार के लिए यह बाध्यकारी प्रावधान करता है कि 14 वर्ष तक

की आयु के प्रत्येक बच्चे को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए । बालकों का निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 11 और 12 भी समुचित सरकार को 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चे को निशुल्क तथा अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रबंध करने के लिए बाध्य करती है । अतः उर्दू और पंजाबी भाषाओं को 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए शिक्षण माध्यम के रुप में प्रस्तावित किया जा सकता है । संविधान में यह भी उपबंधित किया गया है कि कम से कम प्राथमिक स्तर तक शिक्षण माध्यम के रुप में मातृभाषा का प्रयोग किया जा सकता है और संविधान का अनुच्छेद 29 (1) भाषायी तथा सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, संस्कृति और लिपि का संरक्षण करने के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है । इसलिए दिल्ली प्रशासन के मुख्य सचिव द्वारा जारी किया गया दिनांक 29-4-1991 का आदेश संविधान के अनुच्छेद 29 (1), अनुच्छेद 350 क तथा `बालकों का निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार` अधिनियम, 2009 की धारा 11 और 12 के विरोध में है । ऐसा कोई कारण नहीं है कि उर्दू और पंजाबी समुदायों को, राज्य शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत अपने बच्चों को कम से कम प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा के माध्यम से दिलाने के उनके अधिकार से वंचित किया जाए । यद्यपि उर्दू और पंजाबी भाषाओं को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में, शिक्षा की महत्वपूर्ण संस्था, शिक्षा प्रक्रिया और प्रशासन के साथ समेकित किए बिना, राज्य सरकार द्वारा सरकारी दर्जा प्रदान किया गया है, किंतु ऐसी मान्यता को दिल्ली में उर्दू और पंजाबी शिक्षा की खराब स्थिति द्वारा क्षति पहुंचाई गई है । जब तक राज्य द्वारा इन भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए कुछ सकारात्मक कदम नहीं उठाए जाते तब तक दिल्ली में इन्हें विलुप्त होने कोई नहीं बचा सकता ।

सूची में वर्णित विद्यालयों में पंजाबी भाषा पढ़ाने के लिए 7 शिक्षकों की व्यवस्था करने के लिए हम सचिव, पंजाबी अकादमी द्वारा की गई त्वरित कार्रवाई की सराहना करते हैं किंतु हम यह देख कर क्षुब्ध हैं कि उर्दू अकादमी ने उर्दू भाषा के साथ अत्यंत भद्दा व्यवहार किया है । जो बात विस्मित करने वाली है वह यह है कि उर्दू अकादमी भी सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में उर्दू को स्थान दिलाने के लिए चिंतित नहीं है। उर्दू अकादमी की स्थापना कार्य भाषा के रुप में उर्दू को बढ़ावा और प्रोत्साहन देने के लिए की गई थी । सम्मेलन कराना तथा मुशायरों का आयोजन करना मात्र ही उर्दू अकादमी के कार्य नहीं है । आश्चर्य इस बात का है कि दिनांक 29-4-1991 के ज्ञापन द्वारा लगाए गए उक्त सरकारी प्रतिबंध को हटवाने के लिए उर्दू अकादमी ने कोई कदम नहीं उठाया । जैसा कि ऊपर कहा गया है कि संविधान का अनुच्छेद 29 (1) अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है । संविधान का अनुच्छेद 350 क शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराने का आदेश देता है । अतः दिल्ली प्रशासन के मुख्य सचिव का दिनांक 29-4-1991 का आक्षेपित ज्ञापन संविधान के अनुच्छेत 350 क के साथ पठित अनुच्छेद 29 (1) का उल्लंघन करता है और साथ ही यह बालकों का निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार` अधिनियम, 2009 की धारा 11 और 12 का भी उल्लंघन करता है । हम यह देखकर भी क्षुब्ध हैं कि सचिव, उर्दू अकादमी ने सूची में वर्णित विद्यालयों में उर्दू अध्यापक उपलब्ध कराने के लिए कुछ नहीं किया । उन्होंने इस मामले को बहुत हलके स्तर पर लिया । इस मुद्दे पर उनका निरुत्साही रवैया उर्दू अकादमी के कार्यकरण पर एक दुखद टिप्पणी है ।

पूर्वोक्त कारणों से हम राज्य सरकार से दृढ़तापूर्वक यह सिफारिश करते हैं कि वह दिनांक 29-4-1991 के दिल्ली प्रशासन के मुख्य सचिव के उल्लंघनकारी ज्ञापन को तत्काल प्रभाव से वापस ले । हम राज्य सरकार से यह सिफारिश भी करते हैं कि वह पंजाबी और उर्दू अकादमी, दिल्ली को भी राज्य सरकार, दिल्ली नगर निगम और नई दिल्ली नगरपालिका द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में पंजाबी और उर्दू भाषाएं पढ़ाने के लिए शिक्षकों की व्यवस्था करें ।

2009 का मामला संख्या 383

ड़ी एड पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए कालेज खोलने के लिए अनुरोध

याचिकाकर्ता : 1. मातोश्री सोनाबाई गोस्वामी अध्यापक विद्यालय, गेट सं 148, तालुका साजा संख्या 15, कोड संख्या 453, तहसील गोटेगांव, जिला गोंदिया, महाराष्ट्र

2. सुशांत शिक्षण संस्कार संस्था, भीलवाड़ा भंडारा, भाग्य लक्ष्मी निवास, जिला परिषद चौक, भंडारा, महाराष्ट्र

प्रतिवादी : 1. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल, मध्य प्रदेश (इसके अध्यक्ष के माध्यम से)

2. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, मानस भवन, , श्यामला हिल्स, भोपाल, मध्य प्रदेश (इसके निदेशक के माध्यम से)

इस याचिका द्वारा मातोश्री सोनाबाई गोस्वामी अध्यापक विद्यालय, टेधा, जिला गोंदिया, महाराष्ट्र के अध्यक्ष ने यह कहा है कि सोसायटी एक ड़ी एड़ कालेज आरंभ करना चाहती थी और इसके लिए उसने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन सी टी) को आवेदन किया था । याचिकाकर्ता सोसायटी को महाराष्ट्र सरकार द्वारा अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान किया गया है । 25-4-2007 को सोसायटी ने आवश्यक फीस सहित आवेदन पत्र प्रस्तुत किया और बाद में 23-7-2007 को आवश्यक अतिरिक्त दस्तावेज प्रस्तुत किए । दिनांक 9-2-2008 को याचिकाकर्ता को एन सी टी से एन सी टी अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत 1-3-2008 से 15-3-2008 तक अंनतिम रुप से विशेषज्ञों की एक टीम द्वारा निरीक्षण किए जाने के बारे में एक पत्र प्राप्त हुआ । याचिकाकर्ता ने यह उल्लेख किया है कि दौरे के उपरांत विशेषज्ञों की टीम याचिकाकर्ता कालेज की सुविधाओं और अवसंरचना के बारे में अत्यधिक संतुष्ट थी । 3-9-2008 को याचिकाकर्ता को एन सी टी ई से एक कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ, जिसमें नोटिस की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर निम्नलिखित कमियों को दूर करने के लिए कहा गया था :-

1. भूमि दस्तावेज एन सी टी आ मानदंडों के अनुसार नहीं थे (पट्टा विलेख केवल नोटरीकृत थे)

याचिकाकर्ता ने यह कहा है कि उन्होंने दर्शाई गई कमी को दूर कर दिया है और उन्होंने पुनः एन सी टी को लिखा । तथापि, याचिकाकर्ता को कोई अनुमोदन प्राप्त नहीं हुआ । बाद में एन सी टी ने याचिकाकर्ता को यह सूचित किया कि एन सी टी द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की वृद्धि को नियंत्रित करने के निर्णय को ध्यान में रखते हुए इस संबंध में आगे अनुमति न दी जाए और महाराष्ट्र सरकार ने राज्य में अतिरिक्त अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र न खोले जाने का निर्णय लिया है । 3-2-2009 को याचिकाकर्ता को एक अन्य पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह कहा गया था कि वर्ष 2009-10 के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के मामलों को पुनः खोला जाए । 8-4-2009 को याचिकाकर्ता को एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह कहा गया था कि ड़ी एड. पाठ्यक्रमों के संबंध में महाराष्ट्र सरकार राज्य सरकार से नकारात्मक सिफारिशें प्राप्त होने को दृष्टिगत करते हुए यह निर्णय किया गया है कि याचिकाकर्ता के मामले में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी और प्रस्ताव को बंद मान लिया गया है । तदनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा जमा कराए गए एम डी आर उसे लौटा दी गई । याचिकाकर्ता ने आयोग से इस अनुरोध के साथ संपर्क किया कि वह एन सी टी को याचिकाकर्ता कालेज को अनुमति प्रदान करने का निदेश दे क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत आता है ।

उत्तर में प्रतिवादी ने यह कहा है कि वह पहले ही याचिकाकर्ता का आवेदन पत्र बंद कर चुका है क्योंकि उसे जो कमियां बतलाई गई थी उसने उन कमियों को दूर नहीं किया था । एन सी टी मानदंडों के अनुसार भूमि या तो संस्था के स्वामित्व में होनी चाहिए या यदि यह पट्टे पर है तो सरकार/सरकारी संस्थाओं की होनी चाहिए । चूंकि अपीलकर्ता कमी को दूर करने में असफल रहा है अतः एन सीटी ने मामले को बंद कर दिया है । अपनी 125वीं बैठक में एन सी टी ने इस आधार पर मान्यता देने से मना कर दिया कि एन सी टी विनियम, 2007 के खंड 8(7) के अनुसार संस्था के पास सोसायटी के नाम पर पंजीकृत विलेख/पट्टा विलेख नहीं था । प्रतिवादी ने यह दावा किया है कि उसने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत प्रदान किए गए किसी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया है ।

प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी द्वारा लगाए गए आरोपों का खंडन किया है और कहा है कि एन सी टी विनियम, 2005 के खंड 8 (5) के अनुसार सोसायटी के पास एक निजी पक्षकार से ली गई भूमि थी और पंजीकृत पट्टा विलेख के अनुसार यह भूमि सोसायटी के नाम थी। दिनांक 3-9-2008 का कारण बताओ नोटिस जारी करते हुए याचिकाकर्ता को संप्रेषित की गई मनाही में केवल एक कमी का उल्लेख था और वह यह थी कि -`भूमि दस्तावेज एन सी टी ई मानदंडों के अनुसार नहीं थे`(पट्टा विलेख केवल नोटरीकृत था)। याचिकाकर्ता ने तुरन्त उल्लिखित कमी को दूर किया और पुनः एन सी टी से संपर्क किया । यहां एन सी टी विनियम, 2005 के खंड 7(4) के अंतर्गत आवेदन की तारीख को ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि याचिकाकर्ता ने एन सी टी विनियम, 2007 के संशोधित विनियम 8(7) के लागू होने से बहुत पहले आवेदन पत्र जमा कर दिया था । आवेदक 4800 वर्ग मीटर क्षेत्रफल के भूखंड पर एक कालेज की स्थापना कर चुका है जिसका निर्मित क्षेत्र 1519 वर्ग मीटर है और यह भूमि 30 वर्ष के पंजीकृत पट्टे पर है । कालेज की पूर्णतया सुसज्जित लाइब्रेरी और प्रयोगशालाएं हैं और कालेज में योग्य तथा अनुभवी शिक्षण स्टाफ को नियुक्त किया गया है । प्रतिवादी बाद में एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8 (7) के अंतर्गत सरकारी पट्टे की शर्त नहीं लगा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता को एन सी टी ई विनियम, 2005 के खंड 8 (5) द्वारा नियंत्रित माना गया है । याचिकाकर्ता ने कुछ अन्य मामलों में एन सी टी ई द्वारा पारित आदेश को भी उद्धृत किया है जिनमें एन सी टी ई ने अपने पास लंबित पड़े पहले के मामलों को एन सी टी ई विनियम 2007 के खंड 8 (7) के प्रावधानों को ध्यान में रखे बिना, अनुमति प्रदान की है । याचिकाकर्ता ने 2009 के मामला संख्या 276 में आयोग द्वारा पारित आदेश को भी उद्धृत किया है जिसमें एन सी टी ई को नई जमीन की शर्त पर बल दिए बिना एक अतिरिक्त पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए मौजूदा संस्था के आवेदन पत्र पर विचार करने का आदेश दिया गया था ।

बहस के दौरान प्रतिवादी के विद्वान काउंसेल ने यह बात सामने रखी कि याचिकाकर्ता का मामला एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8(7) के प्रावधान द्वारा नियंत्रित होता है और चूंकि पट्टा एक निजी पक्षकार से लिया गया है इसलिए आक्षेपित आदेश को किसी भी कानूनी आधार पर दोषपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता । याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8 (7) के प्रावधान भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू होने चाहिए और चूंकि खंड 8(7) के संशोधित प्रावधान के लागू होने के समय याचिकाकर्ता का आवेदन पत्र पहले से ही लंबित था, अतः याचिकाकर्ता का आवेदन पत्र एन सी टी ई विनियम, 2005 के खंड 8(5) के प्रावधान द्वारा नियंत्रित होता है ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को ध्यान में रखते हुए यहां जो मुद्दा विचारार्थ खड़ा होता है वह यह है कि क्या एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8(7) का संशोधित प्रावधान एन सी टी ई अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के मान्यता प्रदान करने के आवेदन पत्र पर लागू किया जा सकता है क्योंकि यह एन सी टी विनियम, 2005 के उक्त खंड 8 (5) के संशोधक प्रावधान से पूर्व दाखिल किया गया था । यह प्रावधान इस प्रकार है :-

"8 (5) किसी भी संस्था को इन विनियमों के अंतर्गत तब तक मान्यता न दी जाए जब तक कि इनके पास आवेदन की तारीख को आवश्यक भूमि का कब्जा न हो। समस्त विल्लंगमों से मुक्त भूमि स्वामित्व आधार पर या सरकार/सरकारी संस्थाओं से पट्टे के आधार पर ली गई हो और यह पट्टा 30 वर्ष से कम अवधि का न हो । ऐसे मामलों में जहां संबंधित राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के कानूनों के अंतर्गत अधिकतम अनुमेय पट्टा अवधि 30 वर्ष से कम है, वहां राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन का कानून अधिभावी होगा ।"

यह बात विवाद से परे है कि 25-4-2007 को याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी को एन सी टी ई अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत प्रस्तावित ड़ी एड़ कालेज को मान्यता प्रदान करने के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता का आवेदन पत्र लंबित रहने के दौरान एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8 (7) को संशोधित किया गया जो कि इस प्रकार है :-

"8(7) किसी भी संस्था को इन विनियमों के अंतर्गत तब तक मान्यता प्रदान न की जाए जब तक कि उनके पास आवेदन की तारीख को आवश्यक भूमि न हो । समस्त विल्लंगमों से मुक्त भूमि स्वामित्व के आधार पर हो सकती है या सरकारी/सरकारी संस्थाओं से 30 वर्ष की कम से कम अवधि के लिए पट्टे पर ली गई हो सकती है । ऐसे मामलों में जहां संबंधित राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के कानूनों के अंतर्गत अधिकतम अनुमेय पट्टा अवधि 30 वर्ष से कम है, वहां राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन का कानून अभिभावी होगा । तथापि किसी भी अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के संचालन के लिए कोई भी भवन पट्टे पर नहीं लिया जा सकता ।"

खंड 8(7) के संशोधित प्रावधान के अनुसार भूमि या तो संस्था स्वामित्व में होनी चाहिए अथवा यदि भूमि पट्टे पर है तो यह सरकार/सरकारी संस्थाओं से पट्टे पर ली गई होनी चाहिए । वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने एक निजी पक्षकार से भूमि पट्टे पर ली है । प्रतिवादी ने केवल इसी आधार पर याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र पर विचार करने से मना कर दिया है कि संदर्भाधीन भूमि सरकार/सरकारी संस्था से पट्टे पर नहीं ली गई है ।

याचिकाकर्ता के विद्वान काउंसेल ने बलपूर्वक यह तर्क दिया है कि एन सी टी ई विनियम, 2007 के संशोधित खंड 8(7) को याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन पत्र पर लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि यह आवेदन एन सी टी ई विनियम के संशोधित खंड 8(7) के लागू होने से पूर्व दाखिल किया जा चुका था । यहां इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक है कि एन सी टी ई विनियम 2007 के खंड 8(7) के संशोधनकारी प्रावधान से पूर्व कालेज की स्थापना के लिए आवश्यक भूमि या तो स्वामित्व आधार पर होनी चाहिए या कम से कम 30 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर होनी चाहिए । एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8(7) का संशोधित प्रावधान याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल किए गए आवेदनपत्र की लंबितता अवधि के दौरान प्रभाव में आया । कानून का यह मूलभूत सिद्धांत है कि प्रत्येक संविधि प्रथम दृष्टि में ही भविष्यलक्षी प्रभाव रखती है जब तक कि इसे स्पष्ट रुप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से लागू या प्रचालित न किया गया हो। जब तक संविधि में यह इंगित करने वाले पर्याप्त शब्द न हों कि विधानमंडल का आशय मौजूदा अधिकार को प्रभावित करने का है तब तक इसे केवल भविष्यलक्षी प्रभाव से ही प्रभावी समझा जाए। `एक नया कानून जिससे यह अभिप्रेत है कि वह विगत को नहीं बल्कि किसका अनुपालन किया जाना है उसको विनियमित करें ।' आस्बोर्न कंसाइज विधि शब्दकोष, पृष्ठ 224 ।

एन सी टी ई विनियम, 2007 के संशोधित खंड 8(7) को पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कम से कम 30 वर्ष की अवधि के लिए सरकार/सरकारी संस्थाओं से पट्टे पर भूमि प्राप्त करने के

लिए आवेदक के लिए एक नई बाध्यता सृजित करता है या उस पर यह नया कर्तव्य अधिरोपित करता है । यह बात सुस्थापित है कि नई बाध्यता सृजित करने वाले या नया दायित्व अधिरोपित करने वाले संशोधित प्रावधान से यह अर्थ लिया जाए कि इसका प्रचालन भूतलक्षी प्रभाव से नहीं होगा (अमीरेड्डी राजा गोपाल राव बनाम अमीरेड्डी सीमाराम्मा ए आई आर 1965 एस सी 1790) । सामान्य नियम के तार्किक निष्कर्ष के रुप में यह माना जाए कि जब तक शब्दाभिव्यक्ति द्वारा या आवश्यक निहितार्थ द्वारा इस आशय को व्यक्त न किया जाए भूतलक्षी प्रभाव से प्रचालन का अर्थ न लिया जाए । (एस एस गाडगिल बनाम लाल एंड कंपनी, ए आ आर 1965 एस सी 171, हितेन्द्र बिष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए आई आर 1994 एस सी 2623)। परिणामतः हम यह पाते हैं और निर्णय देते हैं कि एन सी टी ई विनियम, 2007 के खंड 8(7) के संशोधित प्रावधान को एन सी टी ई अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत दाखिल किए याचिकर्ता के आवेदन पत्र पर लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि यह उक्त प्रावधान के लागू होने से पूर्व दाखिल किया गया था । इस आवेदन पत्र पर एन सी टी ई, विनियम, 2005 के खंड 8(5) के प्रावधान के अनुसार निर्णय किया जाए ।

पूर्वोक्त कारणों से आयोग प्रतिवादी को एन सी टी ई विनियम, 2005 के खंड 8(5) के असंशोधित प्रावधान के अनुसार याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र पर पुनर्विचार करने की संस्तुति करता है । यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि महानगरों तथा अन्य बड़े शहरों में अल्पसंख्यकों के लिए सरकार या सरकारी संगठनों से पट्टे पर भूमि प्राप्त करना संभव नहीं होगा । अतः राज्य सरकार को एन सी टी ई के अध्यक्ष को यह संस्तुति करने का परामर्श दिया जाता है कि वह विनियमों के विनियम 8(7) के संशोधित प्रावधान में ढील देने के लिए विनियम 11 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करे क्योंकि यह प्रावधान अल्पसंख्यकों द्वारा बीएड़/ड़ी एड़ कालेजों की स्थापना में बाधा उत्पन्न कर रहा है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों की रक्षा के लिए आयोग अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए यह निदेश दे रहा है ।

2010 का मामला संख्या 87

प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा के लिए मानदंडों और मानकों में पात्रता मानदंडों को शिथिल करने का निदेश चाहने वाला अनुरोध ।

याचिकाकर्ता : नोत्रे डेम जूनियर कालेज आफ एजुकेशन मार्फत सोफिया हाई स्कूल 70, पैलेस रोड, बंगलौर ।

प्रतिवादी : राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, हंस भवन, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली ।

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता नोत्रे डेम जूनियर कालेज ऑफ एजुकेशन, बंगलौर ने, जो कि संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत आने वाली एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है, ने प्रतिवादी से इस आशय का निदेश मांगा है कि शिक्षा में डिप्लोमा (ड़ी एड़) के प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के लिए वह मानदंडों तथा मानकों के पात्रता मानदंडों को शिथिल करे । याचिकाकर्ता कालेज प्रतिवादी द्वारा 50 छात्रों के इनटेक सहित अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित करने के लिए विधिवत् मान्यता प्राप्त है । याचिकाकर्ता संस्था शिक्षा के उच्च मानकों को बनाए रखती है जैसा कि इसके परीक्षा परिणामों से स्पष्ट होता है । 2006 तक टी टी सी के लिए योग्यता उच्चतर माध्यमिक (10+2) उत्तीर्ण होना थी । अतः शैक्षणिक वर्ष 2007 में प्रतिवादी द्वारा 50 प्रतिशत अंकों का पात्रता मानदंड आरंभ किया गया । उससे याचिकाकर्ता कालेज में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या में अत्यधिक कमी आ गई । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता कालेज निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के छात्रों को दाखिला देता था और चूंकि उनकी

शैक्षिक सुविधाएं अपर्याप्त होती हैं अतः वे प्रतिवादी द्वारा निर्धारित किए पात्रता मानदंड के अनुसार 50 प्रतिशत अंक लाने में असमर्थ होते हैं । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा निर्धारित पात्रता मानदंड के अनुसार याचिकाकर्ता कालेज अल्पसंख्यक समुदाय को सेवा प्रदान नहीं कर पाता है । अतः प्रतिवादी को यह निदेश दिलाने के लिए इसने आयोग से संपर्क किया है कि सामान्य अभ्यर्थियों के लिए पात्रता मानदंड 50 प्रतिशत से घटाकर 45 प्रतिशत कर दिया जाए ।

प्रतिवादी ने याचिका का इस आधार पर विरोध किया कि अध्यापकों की गुणवत्ता सुधारने के लिए प्रतिवादी ने अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश हेतु पात्रता मानदंड 45 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया है क्योंकि प्रशिक्षण के अंतर्गत अच्छी शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले सक्षम अध्यापक छात्रों को बेहतर तथा संपूर्ण प्रकार से शिक्षा प्रदान करने की बेहतर स्थिति में होंगे। यह अभिकथित किया गया है कि 50 प्रतिशत अंकों का पात्रता मानदंड निर्धारण यादृच्छिक या अनुचित नहीं है और यह संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में उपबंधित किए गए अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों का हनन नहीं करता है । यह भी अभिकथित किया गया है कि पात्रता मानदंडों में कोई भी कमी करने से मानकों का स्तर गिरेगा और उन शिक्षकों की गुणवत्ता भी गिरेगी जिनके हाथों में बच्चों और देश का भविष्य है । यह भी अभिकथित किया गया है कि पात्रता मानदंडों के निर्धारण से संबंधित नियमों का निर्माण करते समय मंतव्य यह था कि प्रशिक्षण के उपरांत जो शिक्षक शिक्षा प्रदान करने के योग्य हैं उनका स्तर ऐसा होना चाहिए कि वे छात्र समुदाय को ज्ञान समाज में रुपांतरित कर सकें ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को ध्यान में रखते हुए जो प्रश्न विचारार्थ पैदा होता है वह यह है कि क्या पात्रता मानदंड के रुप में 50 प्रतिशत अंकों का निर्धारण संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन है । उच्चतम न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की खंडपीठ ने टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य ((2002) 8 एस सी सी 481)में यह निर्णय दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत प्रत्याभूत मूल अधिकार एक विनियामक अधिकार है । उक्त अधिकार के प्रयोग से सुगमीकरण के लिए सरकार विनियमों का प्रावधान कर सकती है । किंतु विनियमों को इन दो कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए । (1) पहली यह कि विनियमों को तर्कसंगत होना चाहिए और (2) ये अकादमिक उत्कृष्टता के लिए होने चाहिए । उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए एक निर्णय में यह टिप्पणी की गई थी कि हितकारक रुप से विनियमित स्वतंत्रता जो स्वायत्तता को न तो कम करती है और न ही उसे अतिरंजित करती है बल्कि बेहतर कार्य निष्पादन को बढ़ावा देती है, संविधान के अनुच्छेद 30 की सही व्याख्या है । उच्चतम न्यायालय द्वारा व्याख्यापित कानून की उक्त प्रस्तावना को ध्यान में रखते हुए यह नहीं माना जा सकता कि पात्रता मानदंड के बतौर 50 प्रतिशत अंकों का निर्धारण अनुचित है । यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जब कोई शिक्षक बच्चों को शिक्षित करता है तो वह उनके चरित्र को भी गढ़ता है, उनके व्यक्तित्व का निर्माण करता है और उन्हें आधुनिक विश्व में प्रतिस्पर्धा करने के लिए योग्य बनाता है । एक शिक्षक के नाते उसे ऐसी बौद्धिक क्षमताओं से पूर्णतया युक्त होना चाहिए जो उसे बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए योग्य बनाएगा । समाज तथा व्यक्ति दोनों के विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है। सोल ट्रस्टी लोक शिक्षण ट्रस्ट बनाम सी आई टी (1976) । एस सी सी 254 मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि `शिक्षा` शब्द का अर्थ है "जीवन के कार्यों को निभाने की तैयारी के लिए युवाओं को व्यवस्थित रुप से शिक्षण, विद्यालयी शिक्षा या प्रशिक्षण प्रदान करना। यह उस विद्यालयी शिक्षण के संपूर्ण पाठ्यक्रम को भी व्यंजित करता है जो व्यक्ति ने प्राप्त की है ----- शिक्षा से यह अर्थ व्यंजित होता है ---- यह औपचारिक विद्यालयी शिक्षा द्वारा छात्रों को प्रशिक्षण प्रदान करने की तथा उनके ज्ञान, कौशल, मस्तिष्क और चरित्र को विकसित करने की प्रक्रिया है ।"

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अधिकार की आड़ में शैक्षिक संस्थाओं से अपेक्षित उत्कृष्टता मानकों को कायम रखने के लिए निर्धारित कानून या विनियमों को धोखा देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । पात्रता मानदंडों के बतौर 50 प्रतिशत अंकों का निर्धारण स्पष्ट रुप से अकादमिक उत्कृष्टता के हित में है । अतः हमने यह पाया और निर्णय किया है कि पात्रता मानदंड के बतौर 50 प्रतिशत अंकों का निर्धारण संविधान के अनुच्छेद 30 (1)में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं है ।

पूर्वेक्त कारणों से याचिका में कोई वैध आधार या तर्क नहीं है अतः इसे खारिज किया जाता है ।

2010 का मामला संख्या 1735

किसी अल्पसंख्यक संस्था द्वारा इंजीनियरिंग डिग्री पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए निदेश चाहने वाली याचिका

याचिकाकर्ता : 1. एजुकेशन रिसर्च एंड डवेलपमेंट फाउंडेशन (आर ड़ी फाउंडेशन, सेन्ट्रल आ टी कालेज परिसर, ड़ॉ आर. पी रोड, दिसपुर, गुवाहाटी, जिसका प्रतिनिधित्व इसके अध्यक्ष श्री महबूबुल हक ने किया ।

2. क्षेत्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, टेक्नोसिटी, किलिंग रोड, 9वां माडल बरीदुआ, रेड मार्वेट्म, जिला रिभोई, मेघालय

3. श्री महबूबुल हक, सुपुत्र स्व इब्राहिम अली, अध्यक्ष आर. डी फाउंडेशन, निवासी नव मिलन पथ, दिसपुर, गुवाहाटी

प्रतिवादी : अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्, भारत सरकार, सातवां तल, चंद्रलोक बिल्डिंग, जनपथ, नई दिल्ली-110001

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता प्रतिवादी अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (संक्षेप में परिषद) के लिए यह निदेश चाहता है कि यह परिषद याचिकाकर्ता कालेज को अकादमिक सत्र 2010-11 के लिए बी टेक प्रोग्राम के अंतर्गत मैकिनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए अनुमोदन प्रदान करे । याचिकाकर्ता कॉलेज एनसीएमइआई अधिनियम(संक्षेप में अधिनियम) की धारा 2(छ) के अर्थ में एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । 24.03.10 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी परिषद् को अकादमिक सत्र 2010-2011 के लिए बी.टेक.प्रोग्राम में मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए आवेदन किया । बार-बार अनुस्मारक दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी ने उक्त पाठ्यक्रम के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा दाखिल किए गए आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता की इच्छानुसार बी.टेक कार्यक्रम में मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम के लिए अनुमोदन प्रदान न करने की प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित किए गए याचिकाकर्ता के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

नोटिस दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी ने कोई उत्तर दाखिल नहीं किया ।

यहां जो प्रश्न विचारार्थ खड़ा होता है वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता कॉलेज को बी.टेक. प्रोग्राम में मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अनुमोदन प्रदान न करने की प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं है ।

आरम्भ में हम यह स्पष्ट करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के प्रयोग को सुगम बनाने के लिए संसद के अधिनियम के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना की गई है । विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में स्पष्ट रुप से आयोग के गठन के उद्देश्य को दर्शाया गया है और इसमें यह स्पष्ट रुप से यह उल्लेख किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों के संबंधन से संबंधित विवादों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र आयोग का होगा । इस अवसर पर हम विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन को उपयोगी रुप से उद्धृत कर सकते हैं, जो कि इस प्रकार है :-

"राष्ट्रीय न्यूनतम साम्य कार्यक्रम की एक धारा में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग(जिसे इसके बाद राष्ट्रीय आयोग कहा गया है) की स्थापना करने का प्रावधान है जो केंद्रीय विश्वविद्यालयों के साथ अल्पसंख्यक व्यावसायिक संस्थाओं की सीधी संबद्धता का प्रावधान करेगा । अल्पसंख्यक समुदायों की लम्बे समय से अनुभूत इस मांग को मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अल्पसंख्यक शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, प्रतिष्ठित नागरिकों और समुदाय नेताओं के साथ हुई अनेक बैठकों में भी रेखांकित किया गया था । अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दों में से एक मुद्दा अल्पसंख्यक समदायों को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन में पेश आ रही कठिनाईयों का था, जबकि इस संबंध में उनको संवैधानिक गारंटी भी प्रदान की गई थी । मुख्य समस्या थी उनके द्वारा अपनी पंसद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने का मुद्दा । राज्य विश्वविद्यालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार तथा अल्पसंख्यक आबादी का कतिपय विशेष क्षेत्रों में संकेंद्रण निरपवाद रुप से यह इंगित करता है कि संस्थाएं अपनी पसंद के विश्वविद्यालयों के साथ संबद्धता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त कर सकीं ।

2. बाद में दिनांक 27 अगस्त, 2004 को आयोजित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा मानीटरिंग कमेटी की एक बैठक में भी अनेक विशेषज्ञों द्वारा ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए थे । विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के भागीदारों ने ऐसी संस्थाओं के साथ संबद्धता के संबंध में विश्वविद्यालयों के मौजूदा कानूनों द्वारा लगाई गई प्रायः प्रतिबंधात्मक शर्तों को ध्यान में रखते हुए ऐसी संबद्धता पाने की आवश्यकता की पुष्टि की। उन्होंने यह अनुभव किया कि इन शर्तों ने इस संस्थाओं को प्रदान किए गए उन अधिकारों को प्रभावित किया है जो इन संस्थाओं को अल्पसंख्यक होने के नाते प्रदान किए गए थे । यह तथ्य कि अपील और त्वरित निवारण के लिए कोई प्रभावी मंच नहीं था, अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर वंचन का बोध और अधिक बढ़ गया ।

3. राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम में व्यक्त की गई सरकार की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने का मुद्दा अत्यावश्यक था। संसद का सत्र नहीं चल रहा था और अगले अकादमिक सत्र से राष्ट्रीय आयोग के कार्यकरण को प्रभावी बनाने में निहित अत्याधिक आरंभिक कार्य को ध्यान में रखते हुए 11 नवम्बर, 2004 को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अध्यादेश,2004 के प्रख्यापन के माध्यम से एक राष्ट्रीय आयोग के सृजन का रास्ता चुना गया ।

4. उपरोक्त अध्यादेश की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(i) इससे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग का सृजन संभव हो पाया है ।
(ii) तत्समय प्रवृत अन्य किसी कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी यह किसी अनुसूचित विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध कॉलेज के रूप में मान्यता पाने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए अधिकार सृजित करता है ।

(a) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और एक अनुसूचित विश्वविद्यालय के बीच संबंद्धता के मामलों के संबंध में यह एक सांविधिक आयोग के रूप में विवाद निपटान मंच की स्थापना करने की अनुमति प्रदान करता है । इस आयोग का निर्णय पक्षकारों के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा ।

(b) अपने कार्यों के निष्पादन या निर्वहन के प्रयोजनार्थ किसी वाद पर विचारण करते समय आयोग को इसके अंतर्गत सिविल कोर्ट की शक्तियां प्राप्त होंगी, यह आयोग के निर्णयों को ऐसे प्रयोजन के लिए कानूनी मान्यता प्रदान करेगा; और

(c) यह केन्द्र सरकार के किसी विश्वविद्यालय को शामिल करने या उसे निकालने के लिए, अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार प्रदान करता है ।

5. यह विधेयक उपरोक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित करेगा ।

न्यायिक प्राधिकारी का मत भी इस विचार के पक्ष में जाता है कि विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन को संसद में विधेयक को पुनः स्थापित किए जाने के समय इस संविधि के सारभूत प्रावधानों के सच्चे अर्थ और प्रभाव के निर्धारण के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता । इस विधान को बनाए जाने के लिए उत्तरदायी पृष्ठभूमि तथा मामलों की पूर्व स्थिति को समझने और उस अहितकर स्थिति को समझने, जिसे यह संविधि समाप्त करना चाहती थी, के अलावा इनका अन्य किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता । तथापि उद्देश्यों और कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों का न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है जिन्हें अधिनियम पारित करते समय विधान के विचारण के अंतर्गत शामिल मान लिया गया होगा । यदि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम, 2004 (संक्षेप में अधिनियम) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए उस पृष्ठभूमि और संदर्भ, जिसमें अधिनियम को अधिनियमित किया गया था और उस प्रयोजन को भी ध्यान में रखा जाता है जिसे इस अधिनियमन द्वारा प्राप्त किया जाना था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अधिनियम' का अभिप्राय संबंधक विश्वविद्यालयों द्वारा संबंद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अधिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/वंचन, किसी शैक्षणिक संस्था का अल्पसंख्यक दर्जा निर्धारित करने और अनापत्ति प्रमाणपत्र आदि से संबंधित मामलों के त्वरित निपटान के लिए एक नई व्यवस्था का सृजन करना है । यह आयोग एक अर्ध-न्यायिक अधिकरण है और इसमें संविधान अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों को संबद्धता प्रदान करने तथा अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रदान किए गए अधिकारों से संबंधित विवादों के संबंध में क्षेत्राधिकार,शक्तियां तथा न्याय- निर्णय करने का प्राधिकार निहित किया गया है और यह प्रावधान भी किया गया है कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय आयोग सिविल प्रक्रिया संहिता के तकनीकी दांव-पेंचों में न फंस कर सुचारू रूप से अपना कार्य करे ।

यहां यह कहने का आवश्यकता नहीं है कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को 'अपनी पंसद' की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित और संचालित करने का मूल अधिकार प्रदान करता है । संविधान का अनुच्छेद 30(1) के पीछे औचित्य अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं संचालित करने की सुरक्षा प्रदान करने का है । इन अधिकारों को इनके उल्लंघन के निषेध से संरक्षण प्रदान किया गया है तथा इन अधिकारों के इनके प्रवर्तन की वचनबद्धता द्वारा समर्थन दिया गया है । ये निषेध अनुच्छेद 13 में दिए गए है जो राज्य को ऐसा कोई भी कानून या नियम या विनियम बनाने से रोकता है जो संविधान के अध्याय-।।। के अंतर्गत प्रत्याभूत किसी भी मूल अधिकार को संक्षिप्त या सीमित करते हैं । साथ ही यह ऐसे किसी भी कानून, नियम या विनियम को वीटो करने की बात भी कहता है जो इन मूल अधिकारों के संबंध में असंगत हो ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी बनाम् गुजरात राज्य ए आई आर 1974, एस सी 1389 मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने संविधान का अनुच्छेद 30(1) के वास्तविक प्रयोजन का आधार "राष्ट्र की इस अंतरात्मा को बतलाया है कि धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यकों द्वारा अपने बच्चों को देश का वास्तविक अर्थों में पुरुष या महिला बनाने के लिए सर्वोत्तम सामान्य शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उन्हें अपनी "पसन्द की शैक्षणिक संस्था की स्थापना और उनका संचालन करने से नहीं रोका गया है । अल्पसंख्यकों को यह सुरक्षा अनुच्छेद 30 के अंतर्गत प्रदान की गई है ताकि वे देश की अखंडता और एकता को सुरक्षित और सुदृढ़ बना सकें । सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का उद्देश्य है हमारे समाज के लड़कों और लड़कियों में सामान्यता का विकास करना । शिक्षा के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की यह सच्ची भावना है । यदि धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यकों को अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित और उनका संचालन करने की सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है तो वे स्वयं को अलग-थलग और कटा हुआ अनुभव करेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा उनके लिए ज्ञान के द्वारा खोलेगी तथा हमारे देशवासियों के लिए बुद्धि के नैसर्गिक आलोक के रूप में कार्य करेगी ताकि वे एक समग्र और संपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें ।

केरल शिक्षा विधेयक(ऊपर) के संबंध में मुख्य न्यायाधीश एस.आर.दास ने निम्नलिखित टिप्पणी की :-

> "विचाराधीन अनुच्छेद 30(1) के सच्चा अर्थ और विवक्षा समझने की कुंजी 'अपनी पसंद' के शब्दों में निहित है । यह कहा गया है कि प्रभावी शब्द 'पसंद' है और इस अनुच्छेद की अंतर्वस्तु उतनी ही व्यापक है जितनी कि किसी अल्पसंख्यक समुदाय विशेष की पसंद इसे बना सके ।"

सेंट स्टीफन्स कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय(1992)1 एससीसी558 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 30(1) 'अपनी पसंद के' शब्द, अल्पसंख्यकों के लिए, जो भी शैक्षिक संस्थाएं वे स्थापित करना चाहें उनके स्वरुप का चयन करने के व्यापक विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के लिए संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं ताकि सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान की जा सके या दोनों प्रयोजनों को पूरा किया जा सके ।

इस अवसर पर पी.ए. इनामदार तथा अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य तथा अन्य(ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करना उपयोगी होगा :

> .....अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की इच्छाओं को पूरा करने से है कि उनके बच्चे समुचित ढंग से पढ़ लिख कर उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें तथा ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों के साथ बाहरी दुनिया में जाएं जो उन्हें लोक सेवा में प्रवेश दिलाने, सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च अनुदेश देने वाली शैक्षणिक संस्थाओं के योग्य बनाए । अतः अल्पसंख्यकों के हित में अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अपेक्षित दो उद्देश्य इस प्रकार है :
>
> (i) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे अपने धर्म तथा भाषा का संरक्षण कर सके, तथा
>
> (ii) इन अल्पसंख्यक के बच्चों को संपूर्ण अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करना । जब तक संस्था उपर्युक्त दो उद्देश्यों को प्राप्त कर और प्राप्त करते हुए अपना अल्पसंख्यक स्वरूप बनाए रखती है तब तक संस्थान अल्पसंख्यक संस्था ही बनी रहेगी ।"

अतः "अपनी पसंद की" शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के अधिकार का अर्थ हुआ ऐसी वास्तविक संस्थाओं की स्थापना करना जो प्रभावी रुप से अपने समुदाय और उन विद्वानों की जरूरतों को पूरा कर सकें जो उनकी शैक्षणिक संस्थाओं का प्रयोग करते हैं (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956)

वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा याचिका में निम्नलिखित तथ्यों की दलील दी गई :

(क) कि दिनांक 12.06.09 के आदेश द्वारा प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता कॉलेज को कम्प्यूटर साइंस और इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रॉनिक्स और कम्युनिकेशन इंजीनिरिंग, इलैक्ट्रिकल और इलैक्ट्रॉनिक्स इंजीनिरिंग तथा सूचना प्रौद्योगिकी में पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अनुमोदन प्रदान किया ।

(ख) कि 24.3.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी के समक्ष (i) बी.टेक. प्रोग्राम में चार मौजूदा पाठ्यक्रमों के अनुमोदन के विस्तार के लिए (ii) कम्प्यूटर साइंस और इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रॉनिक्स और कम्युनिकेशन इंजीनिरिंग में छात्रों के लिए सीटों में वृद्धि करने तथा (iii) सिविल और मैकेनिकल इंजीनियरिंग में नए बी. टेक. पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया ।(अनुबंध 5)

(ग) कि प्रतिवादी ने अपने वेब पोर्टल पर कुछ स्व अंतर्विरोधी सूचना प्रदर्शित की । दिनांक 5.7.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने कोलकाता स्थित प्रतिवादी परिषद् के क्षेत्रीय कार्यालय को सुधारी गई कमियों के प्रमाणपत्र सहित परिशोधित/ओवरकम रिपोर्ट प्रस्तुत की । (अनुबंध 6 और 7)

(घ) कि नार्थ ईसटर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग द्वारा स्थापित निरीक्षण समिति द्वारा प्रस्तुत की गई निरीक्षण रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद यूनिवर्सिटी ने याचिकाकर्ता कॉलेज को अकादमिक वर्ष 2010-2011 के लिए सिविल इंजीनियरिंग, मैकेनिकल इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रिकल और इलैक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग में बी.टेक. पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अस्थायी संबद्धता प्रदान की । (अनुबंध 9)

(ङ) कि प्रतिवादी परिषद् के वेब पोर्टल पर उपलब्ध जानकारी के प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता कॉलेज ने, अपने द्वारा जमा कराई गई परिशोधन रिपोर्ट के संदर्भ में आवेदन पत्र की पुनः संवीक्षा के लिए अनुरोध किया ।आवेदन पत्र की एक प्रति प्रतिवादी परिषद् के कोलकाता स्थित पूर्वी क्षेत्रीय कार्यालय के समक्ष भी 19.6.2010 को प्रस्तुत की गई थी । (अनुबंध 10)

(च) कि प्रतिवादी के वेब पोर्टल को ब्राउज करते हुए याचिकाकर्ता कॉलेज ने अकादमिक वर्ष 2010-11 के लिए नए पाठ्यक्रमों (सिविल तथा मैकेनिकल इंजीनियरिंग) को आरंभ करने के संबंध में भ्रामक जानकारी पाई । यह पाया गया कि याचिकाकर्ता के मैकेनिकल इंजीनियरिंग कोर्स आरंभ करने के अनुरोध पर प्रतिवादी परिषद् ने विचार नहीं किया था । दिनांक 23.8.2010 का औपचारिक अनुमोदन पत्र 8.9.2010 को कोलकाता स्थित क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा याचिकाकर्ता कॉलेज को प्रेषित किया गया था । (अनुबंध 11)

(छ) कि 1.7.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी परिषद् के सलाहकार (ईएंडटी) को अनुमोदन विस्तार, सीटों की संख्या में वृद्धि तथा मैकेनिकल इंजीनियरिंग में नए पाठ्यक्रमों को शुरू करने के लिए एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था (अनुबंध 12)

(ज) दिनांक 5.7.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिकृति(फैक्स प्रेषण) के माध्यम से निर्धारित फार्मेट में और असेवरनाइट कुरियर द्वारा 23.7.2010 को क्षेत्रीय कॉलेज, कोलकाता को एक अपील दाखिल की । इसके अलावा अपील की एक हार्ड कॉपी भी प्रतिवादी द्वारा दर्शायी गई कमी के सुधार से संबंधित प्रमाणपत्र सहित 6.7.2010 को उक्त कार्यालय को प्रस्तुत की गई (अनुबंध 13)

(झ) कि 5.8.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी परिषद् के अध्यक्ष को एक पत्र लिखकर 30 दिन की नियत अवधि के भीतर अपनी अपील के निपटान का अनुरोध किया। (अनुबंध 14) कि 10.8.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी परिषद् के अध्यक्ष को, मैकेनिकल इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रमों के लिए अनुमोदन प्रदान करने का पुनः अनुरोध किया (अनुबंध 15)

(ञ) कि 17.8.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी परिषद् के कोलकाता स्थित क्षेत्रीय कार्यालय को पुनः एक आवेदन पत्र सिविल तथा मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम को शुरू करने के लिए अनुमोदन प्राप्ति हेतु भेजा ।

(ट) कि प्रतिवादी परिषद् के क्षेत्रीय कार्यालय को बार-बार अनुस्मारक भेजे जाने के बावजूद प्रतिवादी की ओर से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ ।

यहां इस बात पर विशेष रूप से प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल की गई याचिका के साथ एक शपथपत्र भी है जो याचिकाकर्ता कॉलेज के प्रायोजक निकाय के अध्यक्ष श्री महबूबुल हक का है ।

नोटिस की तामिल किए जाने के बावजूद प्रतिवादी परिषद् ने मामले की तथ्यात्मक उत्पत्ति का प्रतिवाद करने के लिए कोई उत्तर दाखिल नहीं किया । चूंकि याचिकाकर्ता कॉलेज ने जिन पूर्वोक्त तथ्यों की दलील दी है उनका प्रतिवादी परिषद् द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं किया गया है अतः यह मामने में कोई हानि नहीं है कि प्रतिवादी परिषद् ने निहितार्थ द्वारा इन तथ्यों को स्वीकार कर लिया है । याचिकाकर्ता द्वारा जिन पूर्वोक्त तथ्यों की दलील दी गई है वे स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित करते हैं कि याचिकाकर्ता कॉलेज के पास मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए समस्त अवसंरचनात्मक और शिक्षण सुविधाएं मौजूद हैं । प्रतिवादी परिषद् द्वारा दर्शाई गई कमियों को याचिकाकर्ता कॉलेज ने दूर कर दिया है । मामले की इस स्थिति को देखते हुए प्रतिवादी परिषद् द्वारा याचिकाकर्ता कॉलेज के अकादमिक सत्र 2010-11 से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में पाठ्यक्रम आरम्भ करने के अनुरोध को अनुमोदित न किए जाने का कोई औचित्य नहीं था । यहां यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि नार्थ ईस्टर्न हिल्स यूनिवर्सिटी, शिलांग द्वारा गठित समिति द्वारा जमा कराई गई निरीक्षण रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद यूनिवर्सिटी ने याचिकाकर्ता कॉलेज को सिविल और मैकेनिकल इंजीनियरिंग में पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अस्थायी संबद्धता प्रदान की । याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा बार-बार प्रतिवादी परिषद् के अध्यक्ष को अनुस्मारक भेजे जाने के बावजूद प्रतिवादी परिषद् की ओर से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । आवेदन प्राप्त होने पर प्रतिवादी के क्षेत्रीय कार्यालय को याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण करना चाहिए था ताकि वह अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् अधिनियम और इसके अंतर्गत बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित किए गए मानदंडों के अनुसार अवसंरचनात्मक तथा शिक्षण सुविधाओं उपलब्धता के बारे में अपनी संतुष्टि कर सकता । उक्त क्षेत्रीय कार्यालय ने उक्त प्रयोजनार्थ याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण नहीं किया, इसके क्या कारण थे ये तो यह क्षेत्रीय कार्यालय ही जाने, अतः रिकॉर्ड

में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि याचिकाकर्ता कॉलेज का आवेदन पत्र प्राप्त होने के उपरांत उक्त क्षेत्रीय कार्यालय ने कभी याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण भी किया था ।

यहां इस बात का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ता कॉलेज मेघालय राज्य में स्थित है जो कि एक पिछड़ा राज्य है, जहां जनजातीय आबादी रहती है । पूर्वोत्तर क्षेत्र के मुसलमान शैक्षणिक रूप से वंचित तथा अल्पप्रतिनिधित हैं और समकालीन शैक्षणिक विकास और विस्तार में उनकी पर्याप्त रूप से भागीदारी नहीं हो पा रही है । मुसलमानों की साक्षरता दर अन्य समुदायों और धार्मिक समूहों की तुलना में कहीं कम है । वे अपने शैक्षणिक पिछड़ेपन या शिक्षा के अभाव के उन्मूलन के लिए पूर्णतया राज्य की कार्रवाई पर आश्रित हैं । यदि उनका समुदाय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के माध्यम से उन्हें सशक्त बनाने की पहल करता है तो प्रतिवादी परिषद् जैसे नियंत्रक प्राधिकारियों का उनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण या रवैया होता है । मामले के इस पहलू को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी को याचिकाकर्ता कॉलेज के मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम को आरम्भ करने के संबंध में अनुमति प्रदान करने के लिए किए गए अनुरोध पर रहस्यमयी मौन धारण नहीं करना चाहिए था । मैकेनिकल इंजीनियरिंग में पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा किए गए अनुरोध पर प्रतिवादी परिषद् का रहस्यमयी मौन, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित संवैधानिक संरक्षण की सीधे-सीधे मनाही है ।

पूर्वोक्त कारणों से हम यह पाते हैं और निर्णय देते हैं कि मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को प्रतिवादी परिषद् द्वारा अनुमति प्रदान न करने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लघंन है । अतः हम प्रतिवादी को दृढ़तापूर्वक यह सिफारिश करते हैं कि वह शीघ्र ही याचिकाकर्ता कॉलेज को मैकेनिकल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए कानून के अनुसार अनुमति प्रदान करने की उपयुक्त कार्रवाई करे ।

2010 का मामला सं. 779

उर्दू पढ़ाने के लिए अल्पसंख्यक संस्था आरम्भ करने के लिए अनुमति प्रदान करने हेतु राज्य का आदेश प्राप्त करने के लिए अनुरोध

याचिकाकर्ता : अक्वा मगस्वर्गीय महिला शिक्षण व सामाजिक मंडल करंजा(लैड) जिला वाशिम, महाराष्ट्र अपने अध्यक्ष सकीना एस के. मन्नन के माध्यम से

प्रतिवादी : 1. सचिव, विद्यालय शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मंत्रालय, मुम्बई ।

2. निदेशक,शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, पुणे ।

3. उप निदेशक, शिक्षा, अमरावती डिवीजन, अमरावती तहसील, और जिला अमरावती।

4. जिला समिति, प्राथमिक शिक्षा जिला परिषद् वाशिम, शिक्षा अधिकारी के माध्यम से (प्राथमिक), जिला परिषद्, वाशिम, जिला वाशिम, महाराष्ट्र ।

5. शिक्षा अधिकारी(प्राथमिक), जिला परिषद्, तहसील एवं जिला वाशिम, महाराष्ट्र ।

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता विद्यालय प्रतिवादियों के लिए यह आदेश चाहता है कि वे ग्वालीपुर करंजा(लाड) में बालिका उर्दू प्राथमिक विद्यालय आरम्भ करने के लिए याचिकाकर्ता सोसायटी को अनुमति प्रदान करें । करंजा, वाशिम जिले की एक तहसील है जिसमें 50 प्रतिशत से अधिक आबादी मुस्लिम है । करंजा नगर निगम द्वारा संचालित निकटतम उर्दू प्राथमिक विद्यालय ग्वालीपुरा से 1.5 कि.

मी. से भी अधिक दूरी पर है । यह अभिकथित है कि उक्त क्षेत्र में 90 प्रतिशत परिवार निरक्षर हैं तथा नए उर्दू प्राथमिक विद्यालय की स्थापना से समाज के अल्पसुविधा प्राप्त वर्ग को लाभ होगा । याचिकाकर्ता सोसायटी स्थायी गैर-अनुदान आधार पर उर्दू प्राथमिक विद्यालय शुरू करना चाहती है ।

याचिकाकर्ता सोसायटी ने समस्त आवश्यक दस्तावेजों सहित निर्धारित फार्मेट में शिक्षा अधिकारी, जिला परिषद्, वाशिम को ग्वालीपुरा में उर्दू प्राथमिक विद्यालय आरम्भ करने के लिए अनुमति प्रदान करने हेतु आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था । याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा जमा कराया गया प्रस्ताव शपथपत्र के अभाव में जिला स्तर की समिति द्वारा संस्तुत नहीं किया गया था । उसके बाद याचिकाकर्ता सोसायटी ने 1,10,500 रु. के सोसायटी के बैंक बैलेंस सहित और ब्योरा देते हुए नोटरीकृत शपथपत्र जमा किया था । तथापि प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता को प्रस्तावित उर्दू प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने की अनुमति नहीं प्रदान की । यह अभिकथित है कि उक्त विद्यालय स्थापित करने के लिए याचिकाकर्ता को अनुमति प्रदान न करने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकार का उल्लघंन है ।

जिला शिक्षा अधिकारी (प्राथमिक), शिक्षा निदेशालय, पुणे ने याचिका का इस आधार पर विरोध किया कि जिला स्तरीय समिति ने शपथपत्र तथा सोसायटी के बैंक बैलेंस संबंधी आवश्यक ब्योरों के अभाव में याचिकाकर्ता के प्रस्ताव को संस्तुत नहीं किया था । राज्य स्तरीय समिति, जिला स्तरीय समिति की संस्तुति से सहमत थी । यह भी अभिकथित है कि करंजा नगर निगम द्वारा संचालित उर्दू मीडियम प्राथमिक विद्यालय भी वहां मौजूद है जो ग्वालीपुरा क्षेत्र के छात्रों की आवश्यकता को पूरा करता है। महाराष्ट्र सरकार ने वर्ष 2008-09 के लिए नए प्राथमिक उर्दू माध्यम विद्यालयों की स्थापना के लिए प्रस्ताव आमंत्रित किए थे । विभिन्न शैक्षणिक सोसायटियों द्वारा 28 प्रस्ताव जमा कराए गए थे और समस्त आवेदनपत्र जिला स्तरीय समिति को प्रस्तुत किए गए थे । उक्त प्रस्तावों का मूल्यांकन करने पर कमेटी ने वे प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए थे जो सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों और मानकों के अंतर्गत नहीं थे । यह भी अभिकथित है कि चूंकि याचिकाकर्ता सोसायटी ने शपथपत्र जमा नहीं किया था और 1,00,000 रू. का बैंक बैलेंस नहीं दर्शाया था अतः प्रस्तावित विद्यालय की स्थापना का आवेदनपत्र अस्वीकार कर दिया गया । आगे यह भी अभिकथित है कि प्रस्तावित प्राथमिक विद्यालय के आसपास के क्षेत्र में 4 उर्दू माध्यम विद्यालय पहले से ही विद्यमान हैं और इसलिए मानदंड उसी क्षेत्र में एक अन्य विद्यालय की स्थापना की अनुमति प्रदान नहीं करतें, इसलिए याचिकाकर्ता का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को ध्यान में रखते हुए जो प्रश्न जहां विचारार्थ पैदा होता है वह यह है कि क्या ग्वालीपुरा में बालिका उर्दू प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता सोसायटी को अनुमति न प्रदान करने की प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है । याचिकाकर्ता सोसायटी ने यह शपथपत्र दाखिल किया है कि ग्वालीपुरा क्षेत्र की जनसंख्या लगभग 10,000 है और इस क्षेत्र में कोई उर्दू प्राथमिक विद्यालय नहीं है । याचिकाकर्ता के अनुसार नगर निगम उर्दू प्राथमिक विद्यालय नम्बर 1, नगर निगम उर्दू प्राथमिक विद्यालय नम्बर 2 तथा जिला परिषद् उर्दू प्राथमिक विद्यालय, ये सब एक ही क्षेत्र में स्थित हैं और यह क्षेत्र शहर के मध्य में और याचिकाकर्ता के प्रस्तावित विद्यालय से 1.5 कि.मी. दूर है । अलम्मा इकबाल उर्दू प्राथमिक विद्यालय उक्त क्षेत्र से 2 कि.मी. की दूरी पर है । यह अभिकथित है कि इस क्षेत्र में उर्दू प्राथमिक विद्यालय की आवश्यकता है तथा याचिकाकर्ता के विद्यालय की स्थापना हो जाने से अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा नही होगी । यह भी अभिकथित है कि याचिकाकर्ता सोसायटी के पास प्रस्तावित उर्दू प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए समस्त अवसंरचना और शिक्षा प्रदान करने संबंधी सुविधाएं उपलब्ध हैं ।

बालकों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम 2009(संक्षेप में अधिनियम) की धारा 8 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 21 क द्वारा राज्य सरकार के लिए यह बाध्यकारी बनाया गया है कि वह प्रत्येक बच्चे को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करे । बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियमों की आदर्श भूमिका यह भी अनुबंधित करती है कि अधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र में राज्य सरकार/स्थानीय प्राधिकारी ऐसे क्षेत्रों में 6-14 वर्षों के आयु वर्ग के बच्चों की संख्या को ध्यान में रखते हुए एक से अधिक निकटवर्ती विद्यालयों की स्थापना करने पर, विचार कर सकता है । हमारे मत से याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा जमा कराए गए प्रस्तावित विद्यालय की स्थापना संबंधी प्रस्ताव को स्वीकृति दी जा सकती है क्योंकि इसका उद्देश्य मुस्लिम समुदाय की कन्याओं को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना है।

संविधान के अनुच्छेद 21क तथा बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की धारा 8 के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए हम राज्य सरकार से यह सिफारिश करते हैं कि वह स्थायी गैर-अनुदान आधार पर चलाए जाने वाले और ग्वालीपुरा में स्थापित किए जाने वाले उर्दू प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा जमा कराए गए प्रस्ताव को मंजूरी प्रदान करने पर पुनर्विचार करे ।

2010 का मामला सं. 767

पदोन्नति के लिए एक कॉलेज के शिक्षकों के मामलों पर विचार हेतु जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा के लिए निदेश चाहने वाली याचिका

याचिकाकर्ता : जेड.ए.इस्लामिया कॉलेज, अहमद गनी नगर, सिवान बिहार

प्रतिवादी : 1. प्रधान सचिव, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार, पटना, बिहार ।

2. निदेशक, उच्चतर शिक्षा, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार, पटना

3. रजिस्ट्रार, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

4. कुलपति, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार ।

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता विद्यालय जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा के प्राधिकारियों के लिए यह निदेश चाहता है कि याचिकाकर्ता कॉलेज में कार्यरत शिक्षकों के मामलों पर पदोन्नति के लिए समयबद्ध पदोन्ननति योजना तथा योग्यता पदोन्नति योजना के अंतर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार विचार किया जाए ।

याचिकाकर्ता द्वारा चाही गई राहत सेवा मामलों के क्षेत्र के भीतर आती है जो कि इस आयोग के संज्ञान से बाहर है । परिणामतः अधिकार क्षेत्र न होने के कारण यह याचिका खारिज की जाती है ।

2006 का मामला सं. 1604

एक नए उर्दू माध्यम हाई स्कूल की स्थापना के लिए अनुमति प्रदान करने संबंधी निदेश चाहने वाली याचिका

याचिकाकर्ता मोहम्मदिया मल्टी पर्पज एजुकेशन एंड वेल्फेयर सोसाइटी, डाकघर वसंत नगर, आजाद वार्ड, पुसाद, जिला यवतमाल, महाराष्ट्र

प्रतिवादी 1 सचिव, विद्यालय शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मुम्बई ।

2. शिक्षा निदेशक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, केन्द्रा्य भवन, पुणे

3. शिक्षा अधिकारी(माध्यमिक) जिला परिषद्, यवतमाल, तहसील और जिला यवतमाल, महाराष्ट्र

4. शिक्षा अधिकारी (माध्यमिक), जिला परिषद् नांदेड, नांदेड, महाराष्ट्र

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता मोहम्मदिया मल्टी पर्पज एजुकेशन एंड वेल्फेयर सोसाइटी, डाकघर वसंत नगर, आजाद वार्ड, पुसाद, जिला यवतमाल, महाराष्ट्र राज्य सरकार के लिए निदेश चाहता है जिसमें राज्य सरकार को याचिकाकर्ता सोसायटी को हिमायत नगर, जिला नांदेड में एक नए उर्दू माध्यम हाई स्कूल की स्थापना के लिए अनुमति प्रदान करने के लिए कहा जाए । याचिकाकर्ता सोसायटी, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के और बॉम्बे लोक न्यास पंजीकरण अधिनियम 1950 के अंतर्गत पंजीकृत एक सोसायटी है जो दो स्कूल चला रही है , पहला है मोहम्मदिया उर्दू माध्यम, प्री-प्राइमरी(बलवाडी) स्कूल जो आजाद वार्ड पुसाद, जिला यवतमाल, महाराष्ट्र में है तथा दूसरा है बसंत नगर, पुसाद, जिला यवतमाल(एम.एस) में स्थित के.जी.एन. उर्दू माध्यम प्री-प्राइमरी(बलवाडी) स्कूल । शिक्षा अधिकारी(माध्यमिक) जिला परिषद्, नांदेड द्वारा 1998 में जारी किए गए एक विज्ञापन के अनुसरण में याचिकाकर्ता सोसायटी ने शैक्षणिक वर्ष 1999-2000 से हिमायत नगर में उर्दू माध्यम का एक नया हाई स्कूल खोलने के लिए अपेक्षित दस्तावेजों तथा 5000/-रू. फीस के साथ एक आवेदन पत्र जमा किया था । उक्त आवेदन पत्र पर राज्य सरकार से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । राज्य सरकार ने शैक्षणिक सत्र 2000-2001 के लिए पुनः प्रस्ताव आमंत्रित किया और याचिकाकर्ता सोसायटी ने पुनः हिमायत नगर में प्रस्तावित उर्दू माध्यम हाई स्कूल के लिए नया प्रस्ताव जमा किया । तत्पश्चात् सोसायटी ने शैक्षणिक सत्र 2003-2004 के लिए 30.1.2003 को एक बार फिर अपना प्रस्ताव जमा किया । बार-बार अनुस्मारक दिए जाने के बावजूद राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को मांगी गई अनुमति प्रदान नहीं की । यह अभिकथित है कि हिमायत नगर में प्रस्तावित उर्दू माध्यम हाई स्कूल की स्थापना के लिए राज्य सरकार द्वारा अनुमति प्रदान न करने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लघंन है ।

शिक्षा अधिकारी (माध्यमिक) जिला परिषद् नांदेड ने याचिका का इस आधार पर प्रतिरोध किया कि प्रस्तावित स्कूल की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता द्वारा 1999-2000 और 2000-2001 में जमा कराए गए प्रस्तावों को सोसायटी के पर्याप्त बैंक बैलेंस के अभाव में जिला स्तरीय समिति द्वारा संस्तुत नहीं किया गया था ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को ध्यान में रखते हुए जो बात विचारार्थ सामने आती है वह यह है कि क्या प्रतिवादी की याचिकाकर्ता सोसायटी को हिमायत नगर में प्रस्तावित स्कूल की स्थापना के लिए अनुमति न देने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ? याचिकाकर्ता सोसायटी के सचिव श्री शेख महमूद ने अपना शपथपत्र दाखिल किया है जिसमें उन्होंने कहा है याचिकाकर्ता सोसायटी के पास 1,15,591.04रू. का बैंक बैलेंस है, और यह कि 5 कि.मी. के भीतर वहां केवल एक ही उर्दू माध्यम का जिला परिषद् माध्यमिक विद्यालय है; और यह कि हिमायत नगर में प्रस्तावित उर्दू माध्यम स्कूल की स्थापना स्थानीय आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है और प्रस्तावित स्कूल की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता

सोसायटी के पास समस्त अवसंरचना सुविधाएं उपलब्ध हैं । जैसा कि पहले कहा गया है याचिकाकर्ता का प्रस्ताव जिला स्तरीय समिति द्वारा सोसायटी का अपर्याप्त बैंक बैलेंस होने के आधार पर संस्तुत नहीं किया गया था, अब याचिकाकर्ता सोसायटी ने 1,00,000रू. से अधिक का बैंक बैलेंस, जो कि प्रस्तावित स्कूल की स्थापना के लिए पर्याप्त है, दर्शाने वाला साक्ष्य प्रस्तुत किया है ।

बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009(संक्षेप में अधिनियम) की धारा 8 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 21 क द्वारा राज्य सरकार के लिए यह बाध्यकारी बनाया गया है कि वह प्रत्येक बच्चे को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करे । बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियमों की आदर्श भूमिका भी यह अनुबंधित करती है कि अधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र में राज्य सरकार/स्थानीय प्राधिकारी ऐसे क्षेत्रों में 6-14 वर्षों के आयु वर्ग के बच्चों की संख्या को ध्यान में रखते हुए एक से अधिक निकटवर्ती विद्यालयों की स्थापना करने पर, विचार कर सकता है । हमारे मत से याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा जमा कराए गए प्रस्तावित विद्यालय की स्थापना संबंधी प्रस्ताव को स्वीकृति दी जा सकती है क्योंकि इसका उद्देश्य मुस्लिम समुदाय की कन्याओं को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना है।

संविधान के अनुच्छेद 21क तथा बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम,2009 में निहित अधिदेश को ध्यान में रखते हुए हम राज्य सरकार से यह सिफारिश करते हैं कि वह हिमायत नगर, जिला नांदेड, महाराष्ट्र में गैर-अनुदान आधार पर उर्दू माध्यम हाई स्कूल की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता सोसायटी द्वारा जमा कराए गए प्रस्ताव पर पुनः विचार करे और उसे इस विद्यालय की स्थापना के लिए अनुमति प्रदान करे ।

2008 का मामला संख्या 432

अल्पसंख्यक संस्थाओं में अल्पसंख्यकों के लिए छात्रावास का निर्माण करने के लिए राज्य को निदेश देने हेतु याचिका

याचिकाकर्ता : जेड.ए. इस्लामिया कॉलेज,अहमद गनी नगर, सिवान, बिहार

प्रतिवादी : 1. सचिव, अल्पसंख्यक कल्याण विभाग, बिहार सरकार, पटना ।

2. सचिव, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार, सचिवालय, पटना बिहार ।

3. जिला मजिस्ट्रेट, जिला सिवान, बिहार ।

इस याचिका द्वारा सचिव, जेड.ए. इस्लामिया कॉलेज, अहमद गनी नगर, सिवान, बिहार सरकार के संबंधित प्राधिकारियों के लिए याचिकाकर्ता संस्था के परिसर के भीतर अल्पसंख्यकों के लिए एक छात्रावास का निर्माण करने के लिए अनुमति प्रदान करने हेतु निदेश चाहते हैं । यह अभिकथित है कि अल्पसंख्यक कल्याण विभाग, बिहार सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 21.4.1999 के पत्र द्वारा विभिन्न प्राधिकारियों को मान्यताप्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में अल्पसंख्यकों के लिए छात्रावास का निर्माण करने हेतु निदेश दिए गए थे । उक्त पत्र के प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता कॉलेज ने जिला मजिस्ट्रेट, सिवान को अपने परिसर में छात्रावास के निर्माण के लिए आवेदन किया । तत्पश्चात् जिला प्राधिकारियों ने याचिकाकर्ता को प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि उपलब्ध कराने के लिए लिखा । 13.02.2002 को याचिकाकर्ता ने प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के लिए भूमि के संबंध में बिहार सरकार के पक्ष में दान विलेख निष्पादित किया ।

राज्य सरकार प्रस्तावित छात्रावास के अनुरक्षण का दायित्व लेने पर सहमत हो गई । बार-बार अनुस्मारक दिए जाने के बावजूद प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के लिए जिला मजिस्ट्रेट, सिवान द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई । बिहार सरकार ने भी जिला मजिस्ट्रेट सिवान को दिनांक 21.8.2008 के पत्र द्वारा प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के लिए याचिकाकर्ता के अनुरोध पर विचार करने का निदेश दिया ।

दिनांक 20.10.2008 के पत्र द्वारा जिला मजिस्ट्रेट,सिवान ने छात्रावास के निर्माण पर यह शर्त लगा दी कि छात्रावास का अनुरक्षण,सुरक्षा आदि यूजीसी द्वारा निर्धारित किए गए नियमों के अनुसार किए जाएंगे । यह अभिकथित है कि प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के मामले में यू जी सी की कोई भूमिका नहीं है तथा जिला मजिस्ट्रेट, सिवान प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण में केवल बाधा पैदा कर रहे हैं । याचिकाकर्ता के अनुसार जिला मजिस्ट्रेट, सिवान की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

जिला मजिस्ट्रेट, सिवान ने इस आधार पर याचिका का विरोध किया कि याचिकाकर्ता कॉलेज चूंकि यू.जी.सी. से अनुदान प्राप्त करता है अतः उसे यू जी सी के विनियमों का पालन करना होगा । यह अभिकथित है कि छात्रावास का निर्माण करने करने के लिए आवश्यक भूमि याचिकाकर्ता के नाम होनी चाहिए । चूंकि विचाराधीन भूमि कॉलेज के नाम पर नहीं है अतः प्रस्तावित भूमि पर छात्रावास का निर्माण करना संभव न होगा । यह भी अभिकथित है कि भूमि राज्यपाल के नाम बंधक रखी जाए और छात्रावास के निर्माण के उपरांत छात्रावास अनुरक्षण और प्रशासन के लिए याचिकाकर्ता कार्यालय को सौंप दिया जाएगा । इसके अलावा यह भी अभिकथित किया गया है कि चूंकि भूमि वक्फ की संपत्ति है अतः जिला मजिस्ट्रेट के लिए प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण पर सहमत होना संभव नहीं होगा ।

प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता ने यह आरोप लगाया है कि राज्य सरकार अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के परिसर के भीतर छात्रावास निर्माण के प्रस्ताव को पहले ही मंजूरी प्रदान कर चुकी है । जिला मजिस्ट्रेट, सिवान को सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का पालन करना होगा । यह भी अभिकथित किया गया है कि इस मामले में यू जी सी की कोई भूमिका नहीं है ।

यह बात विवाद से परे है कि बिहार सरकार ने अल्पसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में परिसर के भीतर छात्रावास का निर्माण करने का नीतिगत निर्णय लिया था और अल्पसंख्यक कल्याण विभाग में राज्य सरकार ने जिला मजिस्ट्रेट, सिवान को याचिकाकर्ता कॉलेज में एक छात्रावास का निर्माण करने के लिए अनुमति देने का निदेश दिया है जो स्वीकृत रुप से संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाली एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । जिला मजिस्ट्रेट ने दो आधारों पर याचिका का प्रतिरोध किया है, पहला यह कि याचिकाकर्ता चूंकि यू जी सी से अनुदान प्राप्त करता है अतः उसे यू जी सी के मार्गदर्शी सिद्धांतों/विनियमों का पालन करना होगा । दूसरी बात यह कि चूंकि भूमि वक्फ संपत्ति है अतः उसके लिए याचिकाकर्ता कालेज के परिसर के भीतर प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण की अनुमति देना संभव नहीं होगा । याचिकाकर्ता कॉलेज की ओर से यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता कॉलेज के परिसर के भीतर छात्रावास का निर्माण करने के मौजूदा मामले में यू जी सी की कोई भूमिका नहीं है । हमारे मत से पूर्वोक्त प्रस्तुतीकरण छात्रावास के निर्माण के लिए अनुमति प्रदान करने को उचित ठहराता है। चूंकि राज्य सरकार पहले ही अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में अल्पसंख्यकों के लिए छात्रावास निर्मित करने का निर्णय ले चुकी है अतः राज्य सरकार के उक्त नीतिगत निर्णय में यू जी सी की कोई भूमिका नहीं है । जिला मजिस्ट्रेट, सिवान द्वारा की गई दूसरी आपत्ति के संबंध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अल्पसंख्यक कल्याण विभाग में राज्य सरकार ने पहले ही जिला मजिस्ट्रेट सिवान को यह निदेश दिया है कि वह प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण के याचिकाकर्ता कॉलेज के अनुरोध पर विचार करे और

वह राज्य सरकार के उक्त आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अवलोकन करने के उपरांत हमारा यह मत है कि जिला मजिस्ट्रेट, सिवान याचिकाकर्ता कॉलेज के परिसर के भीतर प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण में बाधाएं उत्पन्न कर रहा है । चूंकि जिला मजिस्ट्रेट अल्पसंख्यक कल्याण विभाग में राज्य सरकार के निदेशों उल्लंघन कर रहा है अतः बिहार के मुख्यमंत्री से मामले में हस्तक्षेप करने का अनुरोध करना उपयुक्त होगा ।

पूर्वोक्त कारणों से हम बिहार राज्य सरकार के मुख्यमंत्री से मामले में हस्तक्षेप करने तथा जिला मजिस्ट्रेट, सिवान को याचिकाकर्ता कॉलेज परिसर के भीतर प्रस्तावित छात्रावास के निर्माण द्वारा राज्य सरकार के निर्णय को लागू करने के लिए निदेश देने की सिफारिश करते हैं ।

2011 की अपील सं. 1

किसी अल्पसंख्यक संस्था को पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र न देने के राज्य के निर्णय के विरूद्ध अपील

याचिकाकर्ता : मौलाना आजाद मानविकी, विज्ञान और प्रौधोगिकी संस्थान, रेलवे स्टेशन रोड, महमूदाबाद(अवध) सीतापुर(उत्तर प्रदेश) ।

प्रतिवादी :
1. अपने प्रधान सचिव के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य, उच्चतर शिक्षा विभाग, उ.प्र. सरकार, लखनऊ ।
2. आयुक्त, लखनऊ डिवीजन, लखनऊ ।
3. क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा अधिकारी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।
4. जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर, उत्तर प्रदेश ।

आवेदक कॉलेज संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाली एक अल्पसंख्यक संस्था है । 01.08.2003 को राज्य सरकार ने आवेदक को बी.एड. पाठ्यक्रम शुरु करने के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र दिया था जिसके परिणामस्वरूप इसने छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर से संबद्धता प्राप्त की । तत्पश्चात् अपीलकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा प्रदान किए गए अनापत्ति प्रमाणपत्र के आधार पर बी.ए और बी.एस.सी. पाठ्यक्रमों के लिए भी संबद्धता प्राप्त कर ली । दिनांक 21.02.2009 को अपीलकर्ता ने राज्य सरकार को एम.ए.(समाजशास्त्र), एम.एस.सी. (रसायन विज्ञान) तथा बी.कॉम में पाठ्यक्रमों के लिए उक्त विश्वविद्यालय से संबद्धता प्राप्त करने के लिए, अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए आवेदन किया ताकि मुस्लिम समुदाय की शैक्षणिक आवश्यकता पूरी की जा सके ।

उत्तर प्रदेश सरकार ने दिनांक 12 मई, 2009 को छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर के रजिस्ट्रार को एक पत्र जारी कर यह सूचित किया कि कतिपय शर्तों के पूरा न होने के कारण आवेदक को अनापत्ति प्रमाणपत्र नहीं दिया जा सकता । इस पत्र के अनुसरण में आवेदक ने 4.6.2009 को बिंदुवार उत्तर प्रस्तुत किया और इसके साथ आवश्यक दस्तावेज संलग्न करते हुए अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए अनुरोध किया । जिला विद्यालय निरीक्षक सीतापुर ने दिनांक 23 जुलाई,2009 के पत्र द्वारा निम्नलिखित आपत्तियां उठाईः-

1. अनुमोदित शिक्षकों के 3 वर्ष के सेवा ब्योरे संलग्न नहीं थे,
2. सोसायटी का बैंक बैलेंस ब्योरा संलग्न नहीं है ।

अपीलकर्ता संस्था ने दिनांक 31.7.2009 के उत्तर द्वारा, शिक्षकों के ब्योरे और बैंक बैलेंस विवरण को संलग्न करते हुए, दर्शायी गई कमियों को दूर किया ।

तत्पश्चात् जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर ने दिनांक 12.8.2009 के पत्र द्वारा निम्नलिखित तीन आपत्तियां उठाईः-

1. प्रस्तुत किए गए भूमि विलेख ब्योरों में संपत्ति के आर-पार गुजरती रेलवे लाइन है ।
2. वर्ष 2009 का तुलन पत्र संलग्न नहीं है ।
3. बी.एड पाठ्यक्रम के शिक्षकों का अनुमोदन संलग्न नहीं है ।

अपीलकर्ता ने उठाई गई आपत्तियों का पूरा ब्योरा देते हुए 16.08.2009 को एक उत्तर भेजा। तत्पश्चात् जिला विद्यालय निरीक्षक ने दिनांक 27.10.2009 के पत्र द्वारा दिनांक 22.10.2009 को हुई बैठक में समिति द्वारा, उठाई गई आपत्तियों को सूचित किया और कमियों का उल्लेख किया ।अपीलकर्ता ने संशोधन के बारे में पूरा ब्योरा देते हुए इस पत्र का भी जवाब दिया। जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर से दिनांक 23.12.2009 का एक अन्य पत्र प्राप्त हुआ जिसमें आपत्तियां उठाई गई थी । अपीलकर्ता ने दिनांक 11.01.10 को इसका उत्तर दिया । यह अभिकथित है कि लगभग 8माह की अवधि में अपीलकर्ता को उत्पीड़ित करने के लिए थोड़ी-थोड़ी करके अनेक आपत्तियां उठाई गई थीं । अपीलकर्ता ने आयोग से संपर्क किया और यह अनुरोध किया कि सक्षम प्राधिकारी को पहले से विद्यमान बी.ए. संकाय में शिक्षा तथा गृह विज्ञान के अतिरिक्त पाठ्यक्रम तथा एम.ए.(समाजशास्त्र), एम.एस.सी.(रसायन विज्ञान) तथा बी.कॉम में नए पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अपीलकर्ता संस्था को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने का निदेश दिया जाए ।

अपने उत्तर में लखनऊ मंडल के आयुक्त ने यह स्वीकार किया है कि मानविकी, विज्ञान और प्रौधोगिकी संस्थान, महबूदाबाद, सीतापुर, उत्तर प्रदेश एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है। विश्वविद्यालय से संबद्ध संस्थाओं के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र देने की शक्ति मंडल आयुक्त की अध्यक्षता वाली समिति में निहित है जिसका जिला शिक्षा अधिकारी भी एक सदस्य है ।समिति ने अपीलकर्ता के अनुरोध पर विचार किया और अपनी दिनांक 23.7.2009 को हुई बैठक में कॉलेज के शिक्षकों की पात्रता संबंधी योग्यताओं और सोसायटी के बैंक बैलेंस के बारे में आपत्तियां उठाई जिनका अपीलकर्ता द्वारा परिशोधन कर दिया गया ।प्रतिवादी ने दिनांक 12.8.2009 के पत्र द्वारा पुनः तीन कमियों का उल्लेख किया और इन कमियों का भी परिशोधन कर दिया गया। तत्पश्चात् समिति ने अपीलकर्ता को पट्टे पर दी गई जमीन के संबंध में ब्योरा मांगा । यह अभिकथित है कि केवल 1/3 भूमि,जिसकी गट्टा संख्या 705 और 709 है, ही 30वर्ष के पट्टे पर अपीलकर्ता के नाम है। इसके अलावा गट्टा संख्या 790,800 और 815 में से केवल गट्टा संख्या 815 ही अपीलकर्ता के नाम है । अतः अपीलकर्ता को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम,1950 की धारा 176 और 182 के उपबंधों का पालन करना होगा ।

दिनांक 7.12.2010 के आदेश द्वारा आयोग ने समिति को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने संबंधी अपीलकर्ता के आवेदन पत्र पर कार्रवाई करने का आदेश दिया ।उक्त आदेश के अनुसरण में समिति ने दिनांक 10.1.2011 को आक्षेपित आदेश पारित कर, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 176 और 182 का अनुपालन न किए जाने के आधार पर अनापत्ति प्रमाणपत्र देने से मना कर दिया । परिणामतः अपीलकर्ता के अनुरोध पर याचिका को अधिनियम की धारा 12क के अंतर्गत अपील में परिवर्तित कर दिया गया ।अधिनियम की धारा 12 क इस प्रकार है :-

"सक्षम प्राधिकारी के आदेशों के विरूद्ध अपील :-

(1) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की स्थापना करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा धारा 10 की उप धारा (2) के अधीन अनापत्ति प्रमाणपत्र देने से इंकार के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति उस आदेश के विरूद्ध आयोग को अपील कर सकेगा ।

(2) उप धारा (1) के अधीन कोई अपील, उप धारा (1) में निर्दिष्ट आदेश के आवेदक को संसूचित किए जाने की तारीख से तीस दिन के भीतर फाइल की जाएगी :

परन्तु आयोग तीस दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् किसी अपील को ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस अवधि के भीतर उसके फाइल न किए जाने के लिए पर्याप्त कारण था ।

(3) आयोग को कोई अपील ऐसे प्ररूप में की जाएगी, जो विहित किया जाए और उसके साथ उस आदेश की एक प्रति होगी, जिसके विरूद्ध अपील फाइल की गई है।

(4) आयोग पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यथासाध्य शीघ्रता से आदेश पारित करेगा और ऐसे निदेश देगा जो उसके आदेशों को प्रभावी करने या उसकी प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने या न्याय के हितों को सुनिश्चित करने केलिए आवश्यक या समीचीन हो ।

(5) उपधारा (4) के अधीन आयोग द्वारा किया गया कोई आदेश आयोग द्वारा किसी सिविल न्यायालय की डिक्री के संबंध में निष्पादनीय होगा और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5) के उपबंध, जहां तक हो सके, इस प्रकार लागू होंगे जैसे वे किसी सिविल न्यायालय की डिक्री के संबंध में लागू होते हैं।

यहां जो प्रश्न विचारार्थ पैदा होता है वह यह है कि क्या दिनांक 10.1.2011 का आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के मूल अधिकार का उल्लंघन करता है ?

मुद्दा संख्या 1: आरम्भ में हमने यह स्पष्ट किया है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के प्रयोग को सुगम बनाने के लिए संसद के अधिनियम के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना की गई है । विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में स्पष्ट रूप से आयोग के गठन के उद्देश्य को दर्शाया गया है और इसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों के संबद्धता से संबंधित विवादों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र आयोग का होगा । इस अवसर पर हम उद्देश्यों और कारणों के कथन को उपयोगी रूप से उद्धृत कर सकते हैं, जो इस प्रकार हैं-

"राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम की एक धारा में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग(जिसे इसके आगे राष्ट्रीय आयोग कहा गया है) की स्थापना करने का प्रावधान है जो केंद्रीय विश्वविद्यालयों के साथ अल्पसंख्यक व्यावसायिक संस्थाओं के सीधे संबद्धता का प्रावधान करेगा । अल्पसंख्यक समुदायों

की लंबे समय से अनुभूत इस मांग को मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अल्पसंख्यक शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, प्रतिष्ठित नागरिकों और समुदाय नेताओं के साथ हुई बैठकों की शृंखला में भी रेखांकित किया गया था । अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दों में से एक अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन में पेश आ रही कठिनाइयां भी शामिल थीं, जबकि इस संबंध में उनको संवैधानिक गारंटी भी प्रदान की गई थी । मुख्य समस्या थी उनके द्वारा अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने का मुद्दा । राज्य विश्वविद्यालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार व अल्पसंख्यक आबादी का कतिपय विशेष क्षेत्रों में संकेंद्रण निरपवाद रूप से यह इंगित करता है कि ये संस्थाएं अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता स्थापित करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकीं ।

2. बाद में दिनांक 27 अगस्त,2004 को आयोजित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा मानीटरिंग समिति की एक बैठक में भी अनेक विशेषज्ञों द्वारा ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए थे । विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के भागीदारों ने ऐसी संस्थाओं के संबंद्धता के संबंध में विश्वविद्यालयों के मौजूदा कानूनों द्वारा लगाई गई प्रायः प्रतिबंधात्मक शर्तों को ध्यान में रखते हुए ऐसे संबंद्धता तक पहुंच प्रदान करने की आवश्यकता की पुष्टि की । उन्होंने यह अनुभव किया कि इन शर्तों ने इन संस्थाओं को प्रदान किए गए उन अधिकारों को प्रभावित किया है जो इन संस्थाओं को अल्पसंख्यक होने के नाते प्रदान किए गए थे । यह तथ्य कि अपील और त्वरित निवारण के लिए कोई प्रभावी मंच नहीं था, अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर वंचन का बोध और अधिक बढ़ गया ।

3. राष्ट्रीय न्यूनतम साम्या कार्यक्रम में व्यक्त की गई सरकार की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने का मुद्दा अत्यावश्यक था। संसद का सत्र नहीं चल रहा था और अगले अकादमिक सत्र से राष्ट्रीय आयोग के कार्यकरण को प्रभावी बनाने में निहित अत्याधिक आरंभिक कार्य को ध्यान में रखते हुए 11 नवम्बर,2004 को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अध्यादेश,2004 के प्रख्यापन के माध्यम से एक राष्ट्रीय आयोग के प्रख्यापन के सृजन का रास्ता चुना गया ।

4. उपरोक्त अध्यादेश की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(i) इससे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग का सृजन संभव हो पाया है ।

(ii) तत्समय प्रवृत अन्य किसी कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी यह किसी अनुसूचित विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध कॉलेज के रूप में मान्यता पाने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए अधिकार सृजित करता है ।

(a) किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था और एक अनुसूचित विश्वविद्यालय के बीच संबद्धता के मामलों के संबंध में यह एक सांविधिक आयोग के रूप में विवाद निपटान मंच की स्थापना करने की अनुमति प्रदान करता है । इस आयोग का निर्णय पक्षकारों के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा ।

(b) अपने कार्यों के निष्पादन या निर्वहन के प्रयोजनार्थ किसी वाद पर विचारण करते समय आयोग को इसके अंतर्गत सिविल कोर्ट की शक्तियां प्राप्त होंगी, यह आयोग के निर्णयों को ऐसे प्रयोजन के लिए कानूनी मान्यता प्रदान करेगा; और

(c) यह केन्द्र सरकार के किसी विश्वविद्यालय को शामिल करने या उसे निकालने के लिए, अनुसूची को संशोधित करने का अधिकार प्रदान करता है ।

5. यह विधेयक उपरोक्त अध्यादेश का स्थान लेगा ।

न्यायिक प्राधिकारी का मत भी इस विचार के पक्ष में जाता है कि विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन को संसद में विधेयक को पुनः स्थापित किए जाने के समय इस संविधि के सारभूत प्रावधानों के सच्चे अर्थ और प्रभाव के निर्धारण के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता । इस विधान को बनाए जाने के लिए उत्तरदायी पृष्ठभूमि तथा मामलों की पूर्व स्थिति को समझने और उस अहितकर स्थिति को समझने, जिसे यह संविधि समाप्त करना चाहती थी, के अलावा इनका अन्य किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता । तथापि उद्देश्यों और कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों का न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है जिन्हें अधिनियम पारित करते समय विधान के विचारण के अंतर्गत शामिल मान लिया गया होगा । यदि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम,2004 (संक्षेप में अधिनियम) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए उस पृष्ठभूमि और संदर्भ, जिसमें अधिनियम को अधिनियमित किया गया था और उस प्रयोजन को भी ध्यान में रखा जाता है जिसे इस अधिनियमन द्वारा प्राप्त किया जाना था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अधिनियम' का अभिप्राय संबंधक विश्वविद्यालयों द्वारा संबद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अधिष्ठापित किए गए अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/वंचन, किसी शैक्षणिक संस्था का अल्पसंख्यक दर्जा निर्धारित करने और अनापत्ति प्रमाणपत्र आदि से संबंधित मामलों के त्वरित निपटान के लिए एक नई व्यवस्था का सृजन करना है । यह आयोग एक अर्ध-न्यायिक अधिकरण है और इसमें संविधान अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों को संबद्धता प्रदान करने तथा अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रदान किए गए अधिकारों से संबंधित विवादों के संबंध में क्षेत्राधिकार,शक्तियां तथा न्याय- निर्णय करने का प्राधिकार निहित किया गया है और यह प्रावधान भी किया गया है कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय आयोग सिविल प्रक्रिया संहिता के तकनीकी दांव-पेंचों में न फंस कर सुचारू रूप से अपना कार्य करे ।

सेंट जेवियर्स कॉलेज बनाम गुजरात राज्य (एआईआर 1974 एस सी 1395) के मामले में यह निर्णय दिया गया है कि "अल्पसंख्यक संस्था की स्थापना तब तक न केवल निष्प्रभावी बल्कि अवास्तविक है जब तक कि छात्रों को डिग्रियां प्रदान करने के प्रयोजन से ऐसी संस्था की विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता न हो ।"

प्रबंधक बोर्ड, मिल्ली तालिमी मिशन बिहार तथा अन्य बनाम बिहार राज्य 1984(4)एससीसी 500 मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को मान्यता प्रदान की है कि एक अल्पसंख्यक संस्था चलाना भी उतना ही आधारभूत और महत्त्वपूर्ण है जितना कि देश के नागरिकों को प्रदान किए गए अन्य अधिकार । यदि राज्य सरकार मान्यता प्रदान करने से मना कर देती है अथवा कोई विश्वविद्यालय उचित और पर्याप्त कारणों के बिना किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को संबद्धता प्रदान करने से मना कर देता है तो इसका सीधा परिणाम होगा स्वयं संस्था के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना । अतः बिना उचित और पर्याप्त कारणों या आधार के सांविधिक प्राधिकारियों द्वारा मान्यता या संबद्धता प्रदान करने से मना करना संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत प्रत्याभूत अधिकार का उल्लंघन है । राज्य या अन्य कोई सांविधिक प्राधिकारी विनियामक उपाय अपनाने की आड़ में या इनकी ओट में संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रत्याभूत किए गए मूल अधिकारों को नष्ट नहीं कर सकता ।

अपने जवाबी शपथपत्र में अपीलकर्ता ने यह कहा है कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 12.05.2009 के प्रथम पत्र में भूमि के बारे में आपत्ति उठाई गई थी, जिसमें गाटा संख्या 705,709,806,808,809,799 और 800 शामिल है और जो 30 वर्षों के लिए संस्था को पट्टे पर दी गई

थी और सरकार चाहती थी कि यह भूमि सोसाइटी के नाम पर हो । अपीलकर्ता ने दिनांक 12.05.2009 के पत्र में दर्शाई गईं सभी कमियों को दूर किया और उसके बाद भूमि के संबंध में आगे के पत्रों में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई । शिक्षकों की योग्यता, सोसाइटी के बैंक बैलेंस, तुलनपत्र आदि से संबंधित अन्य कमियों को अपीलकर्ता द्वारा सुधार लिया गया । यह अभिकथित किया गया है कि भूखंड संख्या 709 और 705 कॉलेज के नाम रिकार्डबद्ध हैं और भूमि का विभाजन करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि यह संयुक्त स्वामित्व में है । उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम,1950 की धारा 176 यहां प्रयोज्य नहीं है क्योंकि यह कृषि भूमि से राजस्व वसूली करने के दायित्व निर्धारण से संबंधित है ।

यह बात विवाद से परे है कि राज्य के किसी भी विश्वविद्यालय द्वारा किसी कॉलेज को संबद्धता प्रदान करने के लिए राज्य सरकार से अनापत्ति प्रमाणपत्र प्राप्त करना एक पूर्व शर्त है । चूंकि अपीलकर्ता कॉलेज का प्रबंधन एम.ए(समाजशास्त्र), एम.एस.सी(रसायन विज्ञान) तथा बी.कॉम में पाठ्यक्रमों के लिए संबद्धता प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय को आवेदन करना चाहती थी अतः इसने राज्य सरकार को उक्त प्रयोजन के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए आवेदन किया। इस अवसर पर यहां इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि अधिनियम की धारा 10क के अनुसार अपीलकर्ता कॉलेज के प्रबंधन को अपनी पसंद के विश्वविद्यालय से संबद्धता प्राप्त करने का अधिकार है। किसी विश्वविद्यालय से संबद्धता प्राप्त करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 30(1) के आशय के अंतर्गत किसी शैक्षणिक संस्था को स्थापित औरसंचालित करने के अधिकार का एक महत्वपूर्ण पहलू है और राज्य सरकार से अनापत्ति प्रमाणपत्र प्राप्त करना, संबंधित विश्वविद्यालय से संबद्धता प्राप्त करने के अधिकार का एक अनिवार्य अंग है । ऐसी स्थिति होने पर अपीलकर्ता का मामला पूर्णतया अधिनियम की धारा 12 क के साथ पठित धारा 10 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है ।

जैसा कि पहले कहा गया है 21.02.2009 को अपीलकर्ता कॉलेज ने एम.ए(समाजशास्त्र), एम. एस.सी(रसायन विज्ञान) तथा बी.कॉम में पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए संबद्धता प्राप्ति हेतु राज्य सरकार को अनापत्ति प्रमाणपत्र देने के लिए आवेदन किया था । दिनांक 23.7.2009 के पत्र द्वारा अपीलकर्ता कॉलेज को उसमें वर्णित कमियों को दूर करने का निदेश दिया गया था जिन्हें दिनांक 31.7.2009 के पत्र द्वारा अपीलकर्ता ने सुधार लिया था । 12.8.2009 के पत्र द्वारा अपीलकर्ता कॉलेज को पुनः पत्र में वर्णित कमियों को दूर करने के लिए कहा गया जिन्हें दिनांक 16.8.2009 के पत्र द्वारा दूर कर लिया गया। तत्पश्चात् दिनांक 23.12.2009 के पत्र द्वारा कुछ नई कमियों का उल्लेख किया गया जिन्हें दिनांक 02.01.2010 के पत्र द्वारा ठीक कर लिया गया । इन कमियों को सुधार लिए जाने के पश्चात् दिनांक 27.10.2009 के पत्र द्वारा पुनः नई कमियों का उल्लेख किया गया जिन्हें पहले ही दूर किया जा चुका था । ऐसा प्रतीत होता है कि जितनी कमियों की कल्पना की जा सकती थी उनकी कल्पना कर लिए जाने के पश्चात् राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी ने अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने के अनुरोध पर रहस्यमयी मौन धारण कर लिया ।

यहां इस बात पर विशेष रूप से प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि बी.ए.,बी.एस सी. और बी.एड पाठ्यक्रमों की संबद्धता के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र देते समय सक्षम प्राधिकारी ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम,1950 की धाराओं 176 और 182 के प्रावधानों का अनुपालन न होने के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई थी । इसके अलावा, पूर्वोक्त प्रावधानों का मामले के गुणावगुण पर कोई प्रभाव या दबाव नहीं है । उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 176 यह उपबंधित करती है कि एक भूमिदार अपने हिस्से के बंटवारे के लिए वाद कर सकता है । इसी अधिनियम की धारा 182 पूर्वोक्त भूमि विक्रय की प्रक्रिया भी निर्धारित करती है । यह एक स्वीकृत स्थिति है कि संदर्भाधीन भूमि सहहिस्सेदारों द्वारा अपीलकर्ता कॉलेज को पट्टे पर दी गई थी । यह पट्टा 30 वर्ष के लिए

है और इस पट्टे के आधार पर अपीलकर्ता कॉलेज को बी.ए.,बी.एससी. और बी.एड पाठ्यक्रमों के लिए संबद्धता प्रदान करने हेतु अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान किया गया था । चूंकि उक्त पट्टा पहले ही अनुमोदित था और उक्त पाठ्यक्रमों के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के समय सक्षम प्राधिकारी द्वारा पहले ही कार्रवाई की जा चुकी थी अतः सक्षम प्राधिकारी को अब साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 के अंतर्गत पूर्वोक्त आपत्ति उठाने से मना कर दिया गया है, जो रोक के सिद्धांत को व्यक्त करती है । इसके अलावा, सक्षम प्राधिकारी भूमि के सह-हिस्सेदारों को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए, जो अपीलकर्ता कॉलेज ने पाना चाहा है, भूमि विभाजन के लिए वाद आरंभ करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता । हमारे मत से सक्षम प्राधिकारी द्वारा लगाई गई उक्त शर्त वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित मूल अधिकार का निषेध करती है । ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने संदर्भाधीन अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए कोई मार्गदर्शी सिद्धांत नहीं बनाए हैं । प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हुए डा. आर.के. गुप्ता ने भी उक्त मार्गदर्शी सिद्धांतों की जानकारी न होने की दलील दी। मार्गदर्शी सिद्धांतों के अभाव में, सक्षम प्राधिकारी तानाशाहों की भांति कार्य नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में अपीलकर्ता द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 176 और 182 पूर्वोक्त के प्रावधानों का अनुपालन न होने के संबंध में प्रतिवादी द्वारा उठाई गई आपत्ति को विधि-सम्मत नहीं माना जा सकता ।

अतः राज्य सरकार के प्राधिकारियों द्वारा एक के बाद एक अनेक कमियां दर्शाए जाने का पूर्वोक्त संदेहास्पद आचरण स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि किन्हीं बाह्य कारणों से वे, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अपीलकर्ता कॉलेज के प्रबंधन को प्रत्याभूत किए गए अधिकारों से प्रबंधन को वंचित करके प्रबंधन को उत्पीड़ित करना चाहते थे । सक्षम प्राधिकारी ने ऐसे आधार पर अपीलकर्ता कॉलेज को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने से मना कर दिया जो विधि-सम्मत नहीं है ।

पूर्वोक्त कारणों से अपील अनुमत की जाती है तथा दिनांक 10.01.2011 के आक्षेपित आदेश को एतद्वारा अपास्त किया जाता है । एम.ए.(समाजशास्त्र), एम.एससी.(रसायन विज्ञान) और बी.कॉम में पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने के लिए अपीलकर्ता को अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान कर दिया गया है । तद्नुसार अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किया जाए ।

2006 का मामला संख्या 1443

अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान किए जाने के लिए जामिया मिलिया इस्लामिया द्वारा याचिकाएं

याचिकाकर्ता जामिया टीचर्स एसोसिएशन

मार्फत, सचिव, जामिया मिलिया इस्लामिया मौलाना मोहम्मद अली जौहर मार्ग, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025

प्रतिवादी

1. कुलपति, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय,भारत सरकार, उच्चतर शिक्षा विभाग, शास्त्रा् भवन, नई दिल्ली ।
3. सचिव, भारत सरकार, अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, पर्यावरण भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110 003
4. भारतीय मुस्लिम शैक्षिक संस्था परिसंघ मार्फत, सचिव, श्री कमाल फारुखी ए-80 निजामुद्दीन ईस्ट, नई दिल्ली ।

2006 का मामला संख्या 891

याचिकाकर्ता

1. जामिया छात्र संघ जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. श्री शम्स परवेज, सुपुत्र जनाब निसार अहमद 8-ए, सर अब्दुल माजिद ख्वाजा छात्रावास, जामिया मिलिया इस्लामिया जामिया नगर, नई दिल्ली-110025

प्रतिवादी

1. कुलपति, जामिया मिलिया इस्लामिया जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. रजिस्ट्रार, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
3. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, मार्फत सचिव,शिक्षा विभाग, भारत सरकार, शास्त्रा् भवन, नई दिल्ली
4. अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, मार्फत सचिव, भारत सरकार नई दिल्ली

2006 का मामला संख्या 1824

याचिकाकर्ता

1. जामिया ओल्ड ब्यॉयज एसोसिएशन मार्फत अध्यक्ष, जामिया ओल्ड ब्यॉयज लॉज, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. श्री जावेद आलम, सुपुत्र जनाब मोहम्मद उमर, निवासी के- 84, गली नं.8, गौतम विहार, दिल्ली-110053

प्रतिवादी

1. प्रो. मुशीरूल हसन, सुपुत्र श्री मुहीब्बुल हसन(कुलपति) जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. श्री एस.एम. अफजल, सुपुत्र श्री एस.एच.कादरी(रजिस्ट्रार), जामिया मिलिया इस्लामिय, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025

2006 का मामला संख्या 1825

याचिकाकर्ता

1. जामिया ओल्ड ब्यॉयज एसोसिएशन मार्फत अध्यक्ष, जामिया ओल्ड ब्यॉयज लॉज, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. श्री जावेद आलम, सुपुत्र जनाब मोहम्मद उमर, निवासी के- 84, गली नं.8, गौतम विहार, दिल्ली-110053

प्रतिवादी

1. कुलपति, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
2. रजिस्ट्रार, जामिया मिलिया इस्लामिया जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
3. मानव संसाधन विकास मंत्रालय उसके सचिव, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के माध्यम से ।
4. अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय उसके सचिव, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के माध्यम से ।

जामिया अध्यापक संघ ने यह घोषणा करने के लिए याचिका(मामला संख्या 1443/2006) दायर की है कि जामिया मिलिया इस्लामिया(संक्षिप्त रूप में जामिया), भारत के संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । जामिया विद्यार्थी संघ तथा जामिया ओल्ड ब्यायज

एसोसिएशन ने भी उक्त राहत के लिए पृथक याचिकाएं दायर की हैं तथा इन याचिकाओं को क्रमशः मामला संख्या 2006 के 891,2006 के 1824 तथा 2006 के 1825 के रूप में पंजीकृत किया गया है । याचिका(मामला संख्या 891/2006) द्वारा जामिया विद्यार्थी संघ ने, मुस्लिम समुदाय से कम से कम 50% विद्यार्थियों को प्रवेश देने, मुस्लिमों को धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने तथा जामिया मिलिया इस्लामिया सोसायटी के अधिदेश को कार्यान्वित न करने के लिए विश्वविद्यालय के कुलपति तथा कुलसचिव के विरूद्ध समुचित कार्रवाई करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय के लिए निदेशों की मांग की है । याचिका संख्या 1824/2006 द्वारा, जामिया ओल्ड ब्वायज एसोसिएशन ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन करने के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय के पूर्व कुल सचिव तथा कुलपति के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को शुरू करने की मांग की है । भारत की मुस्लिम शैक्षणिक संस्थाओं के संगठन ने जामिया के अल्पसंख्यक दर्जे के संबंध में, याचिकाकर्ताओं के दावे के समर्थन में मामले में हस्तक्षेप किया है । तथापि, हम जामिया के अल्पसंख्यक दर्जे के संबंध में, याचियों द्वारा मांगी गई मुख्य राहत पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। चूँकि इन सभी मामलों में विधि तथा तथ्य का एक समान प्रश्न अंतर्गस्त है, अतः इनकी एक साथ सुनवाई की गई तथा इस सामूहिक आदेश द्वारा इनका निपटान किया जा रहा है ।

शब्दजाल में उलझे बिना, यचिकाकर्ता का मामला यह है कि जामिया को अक्तूबर, 1920 में राष्ट्रीय नेताओं अर्थात मौलान मौहम्मद अली जौहर तथा हकीम अजमल खाँ द्वारा स्थापित किया गया था, क्योंकि वे चाहते थे कि मुस्लिम अपनी शिक्षा को सरकारी हस्तक्षेप से पूर्णतः मुक्त रखकर स्वयं अपने नियंत्रण में रखें । वर्ष 1925 में, वित्तीय संकटों द्वारा बुरी तरह से प्रभावित होने के कारण जामिया को दिल्ली स्थानान्तरित किया गया । तथापि, हकीम अजमल खाँ, डा. एम.ए. अंसारी, ख्वाजा अब्दुल मजीद, डा.जाकिर हुसैन, आबिद हुसैन तथा प्रोफेसर मौहम्मद मुजीब जैसे नेताओं की सक्रिय सहायता से यह कार्य करती रही । वर्ष 1939 में, जामिया के कुछ मुस्लिम शिक्षकों ने एक सोसायटी का गठन किया तथा सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के अंतर्गत, इसे जामिया मिलिया इस्लामिया सोसायटी के रूप में पंजीकृत कराया । वर्ष 1962 में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जामिया को, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत मानद विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया गया। मुस्लिम समुदाय के अनुनय पर जामिया को जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम,1988(इसमें इसके पश्चात अधिनियम के रूप में संदर्भित किया जाए) के अंतर्गत केन्द्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया। यह अभिकथित है कि शिक्षा के माध्यम से मुस्लिमों के सशक्तिकरण हेतु जामिया को 1920 में मुस्लिम समुदाय द्वारा स्थापित किया गया था तथा तब से इसे मुस्लिम समुदाय द्वारा संचालित किया जा रहा है। इन तथ्यों के आधार पर यह अभिकथित है कि जामिया, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है ।

जामिया के तत्कालीन कुल सचिव श्री एस.एम. अफजल ने याचिका के विरोध में 13.10.2006 को अपना शपथ-पत्र दाखिल किया । उन्होंने इस आधार पर याचिका का प्रतिरोध किया कि जामिया अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था नहीं है । उक्त तर्क के समर्थन में अधिनियम की धारा 5 और 7 का प्रबल सहारा लिया गया । इसके विपरीत जामिया के वर्तमान कुलपति प्रोफेसर एस.एम. साजिद ने यह उल्लेख करते हुए अपना शपथपत्र दाखिल किया है कि जामिया को 1920 में मुस्लिम समुदाय के हित के लिए मौलाना मोहम्मद अली जौहर तथा हकीम अजमल खाँ जैसे राष्ट्रीय नेताओं द्वारा स्थापित किया गया था । उन्होंने कुछ पुस्तकें जिनमें जामिया का पूर्व इतिहास समाहित है, सहित कुछ दस्तावेज दाखिल किए हैं । संक्षिप्त रूप में, अब जामिया द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अपने अल्पसंख्यक दर्जे के संबंध में याचिकाकर्ताओं के मामले का पूर्णतः समर्थन करता है ।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने इस आधार पर कार्यवाही पर रोक लगाने की मांग की है कि अजीज बाशा बनाम भारत संघ ए आई आर 1968 एससी 662 मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अल्पसंख्यक संस्था नहीं है क्योंकि इसे केन्द्रा्य विधानमंडल के अधिनियम के अंतर्गत सम्मिलित किया गया था तथा अब उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका दाखिल करके अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा उक्त मामले को पुनः उठाया जा चुका है । उक्त मंत्रालय के अनुसार उच्चतम न्यायालय का निर्णय हस्तगत मामले के गुणावगुण को प्रभावित करेगा ।

यह विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि श्री फिरोज बख्त ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल याचिकाकर्ताओं के विरोध में एक प्रार्थनापत्र दाखिल करके कार्यवाही में हस्तक्षेप किया था । 19.7.2010 को उन्होंने अपना प्रार्थनापत्र वापस ले लिया, जिसे दिनांक 21.09.2010 के आदेशों के तहत वापस लेने के कारण खारिज कर दिया गया । परिणामस्वरूप इस आयोग की अधिकारिता के संबंध में विरचित मुद्दा संख्या..(i) को हटा दिया गया था । इस बीच भारत की मुस्लिम शैक्षणिक संस्थाओं के संगठन ने भी कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए एक प्रार्थनापत्र दाखिल किया । निम्नलिखित मुद्दे को विरचित किया गयाः -

क्या जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है ?

प्रारम्भ में हमें यह अवश्य स्पष्ट करना चाहिए कि इस आयोग को संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उपयोग को सुसाध्य बनाने के लिए संसद के अधिनियम के अधीन सृजित किया गया है । न्यायिक प्राधिकरण का बल इस विचार को पुष्ट करता है कि जब किसी विधेयक को संसद में पुनः स्थापित किया जाता है तो उसके साथ संलग्न उद्देश्यों तथा कारणों के कथन का, परिनियम के अधिष्ठायी उपबंधों के वास्तविक अर्थ तथा प्रभाव के अवधारण के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता । उनका विधान को तैयार करने तथा बुराई, जिसे दूर करने के लिए परिनियम की चाह की गई थी की पृष्ठभूमि तथा पूर्वगामी कार्यकलाप की स्थिति को समझने के परिसीमित प्रयोजन के सिवाय उपयोग नहीं किया जा सकता । तथापि, जब अधिनियम पारित किया गया था तब उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों जिन्हें विधान की अपेक्षाओं के भीतर अनिवार्य माना गया है, की न्यायिक अवज्ञा की जा सकती है । यदि उस पृष्ठभूति तथा संदर्भ को ध्यान में रखकर जिसमें इस अधिनियम को अधिनियमित किया गया था तथा इस अधिनियमन द्वारा जिस उद्देश्य को प्राप्त करने की चाह की गई थी, राष्ट्रीय अलपसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम के उपबंधों की व्याख्या की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त 'अधिनियम' संबद्धक विश्वविद्यालयों द्वारा संबद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/ वंचन, शैक्षणिक संस्था को अल्पसंख्यक दर्जे के अवधारण तथा अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने इत्यादि से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान के लिए एक नए प्रबंधन के सृजन हेतु अभीष्ट है । यह आयोग एक न्यायिककल्प अधिकरण है तथा इसमें संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन शामिल महाविद्यालयों को सम्बद्धता प्रदान करने शैक्षणिक संस्थाओं के अल्पसंख्यक दर्जे का अवधारण करने तथा अनापत्ति प्रमाणपत्र इत्यादि प्रदान करने तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के तकनीकी दाव पंचों में फंसे बिना अधिनियम के अधीन अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकारों से संबंधित विवादों का न्याय निर्णयन करने के लिए अधिकारिता, शक्तियां तथा प्राधिकार निहित हैं ।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम की धारा 11(च) में आयोग को किसी संस्था के अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रूप में दर्जे से संबंधित सभी प्रश्नों का निर्णय करने तथा इस प्रकार उसके दर्जे को घोषित करने की अधिकारिता प्रदत्त की गई है ।

संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधिदेश, जैसा कि उच्चतम न्यायालय के विभिन्न प्रामाणिक निर्णयों द्वारा व्याख्या की गई है, को ध्यान में रखकर तथा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम की धारा 2(छ) के अनुसार, धार्मिक आधार पर एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अल्पसंख्यक दर्जे प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों को सिद्ध करना अपेक्षित है :

(i) शैक्षणिक संस्था की स्थापना, धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के एक सदस्य/सदस्यों द्वारा की गई थी;
(ii) शैक्षणिक संस्था की स्थापना अल्पसंख्यक समुदाय के हित के लिए की गई थी; और
(iii) शैक्षणिक संस्था का संचालन अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा किया जा रहा है ।

अजीज बाशा मामले (ऊपर) मे उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि "शैक्षणिक संस्था" शब्दो का बहुत अधिक व्यापक अभिप्राय है तथा इसमें विश्वविद्यालय भी शामिल होंगे । संविधान का अनुच्छेद 30(1) भाषाई तथा धार्मिक अल्पसंख्यको को अपनी पसन्द की शैक्षणिक संस्थाओ की स्थापना तथा संचालन का मौलिक अधिकार प्रदान करता है । ये अधिकार उनके उल्लंघन के विरूद्ध एक प्रतिषेध द्वारा संरक्षित हैं । यह प्रतिषेध संविधान के अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट है जो यह घोषित करता है कि मौलिक अधिकारों को भंग कर रही कोई विधि, ऐसे उल्लंघन की सीमा तक अमान्य होगी । अनुच्छेद 30 धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यकों को उनकी संख्या बल के कारण तथा उनमें सुरक्षा तथा अपनत्व की भावना लाने के लिए प्रदत्त एक विशेष अधिकार है, हालांकि अल्पसंख्यकों को समाज के कमजोर वर्गों अथा उपेक्षित तबके के रूप में नहीं माना जा सकता । उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों की शृंखला जो केरल शिक्षा विधेयक मामला ए आई आर 1958 एससी 956 से प्रारम्भ होकर तथा टी.एम.ए.पाई फाउण्डेशन बनाम केरल राज्य(2002)8 एससीसी 481 द्वारा पराकाष्ठा पर पहुँची है ने संप्रति के लिए विधि का निर्धारण किया है । अनुच्छेद 30(1) पर आधारित निर्णय द्वारा विधि के संपूर्ण ढांचे को केरल शिक्षा विधेयक मामले में सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है । अल्पसंख्यकों की सांविधानिक संपदा का अधिक्रमण नहीं होना चाहिए तथा न तो इसकी अवहेलना की अनुमति दी जाए और न ही इसका कुप्रशासन होना चाहिए । निर्णय के इस सारतत्व को उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए विभिन्न निर्णयों के प्रासंगिक उद्धरणों द्वारा अब उपयुक्त ढंग से सिद्ध किया जा सकता है ।

अजीत बाशा मामले में (ऊपर) सर्वोच्य न्यायालय द्वारा निर्णय दिया कि अनुच्छेद 30(1) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "स्थापना" तथा 'संचालन' को संयोजक रूप में पढ़ा जाना था अर्थात यह कह सकते है कि अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत दो अपेक्षाएं पूरी करनी होती हैं नामतः यह कि संस्थान की स्थापना समुदाय द्वारा की गई तथा इसका संचालन समुदाय में निहित है । एस.पी. मित्तल बनाम भारत संघ ए आई आर 1983 एस सी 1, के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 30(1) के लाभ का दावा करने के लिए समुदाय को यह दर्शाना अनिवार्य हैं, (क) कि यह धार्मिक/भाषाई अल्पसंख्यक है, (ख) कि संस्था की स्थापना इसके द्वारा की गई । इन दो शर्तों को पूरा किए बिना वह इसके संचालन के प्रत्याभूत अधिकारों का दावा नहीं कर सकता ।

सेंट स्टीफन कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एससीसी 558 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह घोषित किया कि सेंट स्टीफन कॉलेज इस आधार पर अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है कि इसकी स्थापना तथा संचालन ईसाई समुदाय के सदस्यों द्वारा किया गया था । अतः यही

वो संकेत थे जो अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का दर्जा तय करने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किए गए थे और इन्हें अधिनियम की धारा 2(छ) में समाविष्ट भी किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 30(1) की यह अभिधारणा है कि धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यक सदस्यों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था स्थापित तथा संचालित करने का अधिकार है । संतोषजनक साक्ष्य प्रस्तुत करना ही इस मामले का प्रमाण है कि अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा ही संबंधित संस्था की स्थापना की गई जो इसके संचालन का दावा भी करता है । संस्था के संचालन के अधिकार का दावा करने की पहली शर्त यही है कि संस्था की स्थापना के तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत किया जाए । इसकी जिम्मेदारी उस व्यक्ति की बन जाती है जो यह दावा करता है कि अमुक संस्था अल्पसंख्यक संस्था है । टी.के.वी.टी.एस.एस. मेडिकल एजुकेशनल तथा चेरिटेबल ट्रस्ट बनाम् तमिलनाडु राज्य ए आई आर 2002 मद्रास 42 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की डिविजन खंडपीठ द्वारा यह निर्णय दिया गया "कि यदि एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि संस्था किसी भाषाई अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित की गई और उप अल्पसंख्यक द्वारा संचालित की जाती है तो ऐसी स्थिति में यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत प्रत्याभूत मूल अधिकार का दावा करने के लिए पर्याप्त माना जाएगा।" यही सिद्धांत धार्मिक अल्पसंख्यक पर भी लागू होता है ।आन्ध्र प्रदेश क्रिस्टियन मेडिकल एसोसिएशन बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार ए आई आर 1986 एससी 1490 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सरकार, विश्वविद्यालय और अंततः न्यायालय इस दावे की जांच कर सकते हैं कि विचाराधीन संस्था एक अल्पसंख्यक संस्था है तथा इस बात की "जांच पड़ताल करके अपनी संतुष्टि कर सकतें है कि किया गया दावा उचित है अथवा अनुचित ।" एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का दर्जा बना रहता है चाहे सरकार इसे इस रूप में घोषित करे अथवा न करे । जब सरकार एक शैक्षणिक संस्था को अल्पसंख्यक संस्था के रूप में घोषित करती है तो उस समय वह सिर्फ एक तथ्यात्मक स्थिति को मान्यता देती है कि एक अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा इसकी स्थापना कर इसका संचालन किया जा रहा है । यह घोषणा उस संस्था के कानूनी स्वरूप को खुली स्वीकृति देना मात्र है जिसने ऐसी घोषणा पाने के लिए आवश्यक पूर्ववृत प्रस्तुत किए हैं (एन. अम्मद बनाम् एमजे हाई स्कूल (1998) 6 एससीसी 674) ।

अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों वाली एक सोसायटी अथवा न्यास अथवा अल्पसंख्यक समुदाय का कोई एक सदस्य भी, संस्था की स्थापना कर सकता है । इस स्थिति को केरल राज्य बनाम् मदर प्राविन्शियल ए आई आर 1970 एससी 2079 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है । उच्चतम न्यायालय ने पाया :

> 'स्थापना से तात्पर्य संस्थान को अस्तित्व में लाने से है तथा यह अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा की जाए । इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि एकमात्र लोकोपकारी व्यक्ति अपने साधनों से संस्था की स्थापना करे अथवा समूचे रूप में समुदाय निधियों का अंशदान करे । **कानून भी यही कहता है परन्तु किसी भी स्थिति में उस समुदाय के किसी सदस्य द्वारा संस्था की स्थापना अल्पसंख्यक समुदाय के लाभ के आशय से ही होनी चाहिए ।** यहां यह इस अधिकार के लिए उतना ही अप्रासंगिक है कि अल्पसंख्यक समुदाय के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य अथवा बहुमत समुदाय तक का कोई सदस्य इन संस्थाओं का लाभ उठा सकता है ।'
>
> (बल दिया गया)

क्रिश्चियन एसोसिएशन(ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि "महत्वपूर्ण क्या है और अनिवार्य क्या है, से संबंधित कुछ ऐसे वास्तविक अभिसूचक होने चाहिए जिससे अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक संस्था के रूप में किसी संस्था की पहचान की जा सके ।" यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों को संरक्षित तथा संवर्धित करके उन्हें लाभ प्रदान करने के लिए ही बने हैं । संस्था तथा उस अल्पसंख्यक समुदाय विशेष के बीच आपस में संबंध होना चाहिए जिससे जुड़े होने का वह दावा करता है । किसी शैक्षणिक संस्था का संचालन करने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय का दावा करने का अधिकार, उस संस्था की स्थापना के प्रमाण पर निर्भर करता है । यह उल्लेख करना सुसगंत है कि अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य(1974)1 एससीसी 717 मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि "यह संदेहपूर्ण है कि क्या अनुच्छेद 30(1) के अधीन मौलिक अधिकार की किसी स्वैच्छिक कार्य द्वारा अदला-बदली की जा सकती है अथवा इसे अभ्यर्पित किया जा सकता है अथवा उसे अधिव्यक्त किया जा सकता है । इसका कारण यह है कि मौलिक अधिकार व्यक्तियों के अनेकत्व में इकाई के रूप में अथवा हम ऐसा कह सकते हैं कि आवश्यकतः अस्थिर व्यक्तियों के समुदाय में निहित है । क्या अल्पसंख्यक समुदाय के वर्तमान सदस्य अपने भावी सदस्यों को एक इकाई के रूप में बांधने के लिए अनुच्छेद के अधीन अधिकार की अदला-बदली अथवा उसे अभ्यर्पित कर सकते हैं? मौलिक अधिकार वर्तमान पीढ़ी के लिए हैं । धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित तथा संचालित एक शैक्षणिक संस्था की संबद्धता के स्वैच्छिक कृत्य द्वारा, समुदाय के पूर्व सदस्य, उस समुदाय के भावी सदस्यों के अधिकार का अभ्यर्पण नहीं कर सकते । समुदाय के भावी सदस्य, उत्तराधिकार अथवा विरासत द्वारा अनुच्छेद 30(1) के अधीन अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं " ।

ओल्गा टैलिस बनाम् बम्बई नगर निगम ए आई आर 1986 एस सी 180 मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि "इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि याचिकाकताओं को प्रतिवाद के रूप में अपने मौलिक अधिकारों को जताने से विबद्ध किया गया है । संविधान के प्रति कोई विबंध नहीं किया जा सकता । यदि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति को अभिवेदन करता है जिसके विश्वास पर पश्चात्कथित अपने पूर्वाग्रह के अनुसार कार्यवाही करता है तो पूर्वकथित उसके द्वारा दिए गए अभ्यावेदन से पीछे नहीं हट सकता । उसे इसे अवश्य पूरा करना चाहिए । इस सिद्धांत का मौलिक अधिकारों के प्राख्यान अथवा प्रवर्तन के संबंध में किए गए अभिवेदनों के लिए अनुप्रयोग नहीं किया जा सकता । लेकिन बृह्दउद्देश्य जो संविधान मौलिक अधिकारों को देकर कर प्राप्त करना चाहता है, वह न केवल किसी व्यक्ति विशेष को लाभ पहुंचाने का है, बल्कि समुदाय के बृहत्तर हितों को सुनिश्चित करना है । कोई भी व्यक्ति संविधान द्वारा उसे प्रदान की गई स्वतंत्रता की अदला-बदली नहीं कर सकता। तात्कालिक मामले में, कुछ जिम्मेवार व्यक्तियों तथा जामिया के अध्यापकों ने संसद के अधिनियम के अधीन जामिया को केन्द्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान करने के लिए केन्द्र सरकार को राजी किया था । लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है कि मुस्लिम समुदाय ने संविधान के अनुच्छेद 30 के अधीन प्रत्याभूत मौलिक अधिकार को या तो अधिव्यक्त कर दिया था या उनकी अदला बदली कर दी थी" ।

चिक्काला सैमुअल बनाम् जिला शिक्षा अधिकारी, हैदराबाद ए आई आर 1982 ए पी 64 मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि अनुच्छेद 30(1) के लाभ का दावा करने के लिए सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा प्रदान कर रही अल्पसंख्यक संस्था को यह अवश्य दर्शाना चाहिए कि वह अल्पसंख्यक समुदाय अथवा उसके एक पर्याप्त भाग के हितों को किसी रूप में पूरा करती है अथवा बढ़ावा देती है । यह टिप्पणी की गई कि ऐसे प्रमाण के बिना संस्था तथा ऐसे समुदाय के बीच कोई

अर्न्तसम्बंध नहीं होगा । इस निर्णय को सेंट स्टीफेंस मामले(ऊपर) में अनुमोदन सहित उद्धरित किया गया है ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम् गुजरात राज्य 1974(1) एससीसी 717 मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गई हैः

> "कि सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा को प्रदान कर रही अल्पसंख्यक संस्था का अंतिम लक्ष्य विद्या का अभिवर्धन है । इस न्यायालय द्वारा सतत् रूप से निर्णय दिया गया है कि शिक्षा के मानकों में उत्कृष्टता तथा एकरूपता प्राप्त करने के लिए शैक्षणिक तथा शैक्षिक मामलों में हर बात का विनियमन करना न केवल अनुज्ञेय है बल्कि वांछनीय भी है ।"

इस परिस्थिति में, हम सेंट स्टीफेंस मामले(ऊपर) में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उपयोगी तौर से उद्धृत कर सकते हैं :

> .....धर्म निरपेक्ष स्वरूप के साथ राष्ट्र निर्माण में, सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने के लिए साम्प्रदायिक विद्यालय अथवा महाविद्यालय, अलगाऊ संकाय अथवा विश्वविद्यालय अवांछनीय हैं तथा वे धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र को क्षीण कर सकते हैं । वे संविधान में सन्निहित धर्म निरपेक्षता तथा समानता की मूलधारणा के साथ असंगत होंगे । प्रत्येक शैक्षणिक संस्था, चाहे वह जिस किसी भी समुदाय से संबंधित हो, हमारे राष्ट्रीय जीवन का सदैव एक क्रियाशील भाग है । अध्यापक तथा विद्यार्थी इसके महत्वपूर्ण अवयव हैं । वहां पर वे अन्य लोगों की संस्कृतियों तथा उनकी धारणाओं के प्रति सम्मान तथा सहिष्णुता विकसित करते हैं । अतः यह परमावश्यक है कि सभी शैक्षणिक संस्थाओं में विभिन्न समुदायों के विद्यार्थियों का उचित मिश्रण होना चाहिए ।"

टी.एम.ए.पाई मामले(ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिया है कि " भारत में धर्म निरपेक्षवाद का मूलतत्व अलग-अलग भाषाओं तथा विभिन्न धारणाओं वाले विभिन्न तरह के लोगों को सम्मान देना तथा उनका प्रतिरक्षण करना और उन्हें एक साथ संगठित करना है ताकि एक सम्पूर्ण तथा संगठित भारत का निर्माण हो सके । अनुच्छेद 29 तथा 30 में लोगों में विद्यमान विभिन्नताओं का परिक्षण करने तथा साथ ही साथ एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण करने के लिए लोगों को संगठित करना ही लक्षित है ।

यह उल्लेख करना सुसंगत है कि अनुच्छेद 30(1) के अधीन अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान करने का संपूर्ण उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अधिसंख्यक तथा अल्पसंख्यक के बीच समानता होगी। यदि अल्पसंख्यकों के पास ऐसा विशेष संरक्षण नहीं है तो वे समानता से वंचित कर दिए जाएंगे । अतः अनुच्छेद 30(1) की परिधि से धर्म निरपेक्ष शिक्षा को अपवर्जित करना बिल्कुल संभव नहीं है । जहां तक अल्पसंख्यकों की शैक्षणिक संस्थाओं का संबंध है, उनके अधिकारों के परिरक्षण के मामले में संविधान में एक मुक्त, उदारवादी तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है । अनुच्छेद 30(1) वास्तविक अभिप्राय के लिए अभीष्ट था तथा इसका ऐसे तरीके से अर्थ निकालना अनुज्ञेय नहीं है जो उस अभिप्राय को ही समाप्त कर दे । अनुच्छेद 30(1) के अधीन अधिकारों के अर्थपूर्ण उपयोग में अल्पसंख्यक संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की मान्यता सम्मिलित होगी और अनिवार्य रूप से होनी भी चाहिए, जिसके बिना यह अधिकार अर्थहीन साबित होगा ।

'स्थापना' शब्द, अस्तित्व में लाने के अधिकार को निर्देशित करता है, जबकि संस्था के संचालन के अधिकार का अर्थ है,संस्था के कामकाज का प्रभावकारी तरीके से प्रबंध तथा संचालन करने का अधिकार। यह प्रबंधन नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए ताकि संस्थापक तथा उनके नामजद व्यक्ति उपयुक्त समझे गए ढंग से और अपने उन आदर्शों, जिससे सामान्य रूप से समुदाय के तथा विशेषतः संस्थान के हितों को लाभ पहुँचे, के मुताबिक संस्था को ढाल सकें । अहमदाबाद सेंट जेवियर(ऊपर) के मामले में यह निर्णय दिया गया है कि इस दृष्टिकोण का अनुमोदन करना कठिन है कि अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित शैक्षणिक संस्थाएं केवल वहीं हैं जो अल्पसंख्यकों की भाषा लिपि अथवा संस्कृति का संरक्षण करने के लिए अभीष्ट हैं । "अपनी पसंद के" शब्द, जो कि शैक्षणिक संस्थाओं को विशेषित करते हैं, जिनकी अल्पसंख्यक स्थापना करना चाहते हैं, संस्थाओं के स्वरूप का चयन करने में उनके व्यापक विवेक और विकल्प को दर्शाते हैं । तथापि, अल्पसंख्यक एक ऐसी शैक्षणिक संस्था की स्थापना करने का चुनाव कर सकते हैं जो कि पूर्णतः सामान्य धर्म निरपेक्ष स्वरूप की है तथा उनकी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति का संरक्षण करने के लिए निर्दिष्ट नहीं है । यह तथ्य कि जामिया की स्थापना धर्म निरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य के साथ एक राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में की गई थी, उसे अनुच्छेद 30(1), जो कि विश्वास का एक अनुच्छेद है, की परिधि से बाहर नहीं करेगा ।

अजीज बाशा मामले(ऊपर) में चुनौती मुख्यतः 1951 के तथा 1965 के भी संशोधन अधिनियम द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 में किए गए कुछ संशोधनों के लिए उद्दिष्ट थी। उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि 1965 में समावेशित संशोधनों द्वारा प्रबंधन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का संचालन करने के अधिकार से वंचित हो गया था तथा यह कि यह वंचन संविधान के अनुच्छेद 30(1) का उल्लंघन था । किए गए तर्क को ध्यान में रखकर न्यायधीशों ने विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया । उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि हालांकि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का केन्द्र मोहैम्डन ऐग्लो-ऑरिएन्टल कॉलेज था, जो कि सन् 1920 तक एक शिक्षण संस्था थी, उस महाविद्यालय का विश्वविद्यालय में परिवर्तन मुस्लिम अल्पसंख्यक द्वारा नहीं किया गया था बल्कि यह परिवर्तन 1920 के अधिनियम, जिसे केन्द्रीय विधानमंडल द्वारा पारित किया गया था, के आधार पर हुआ था । क्योंकि 1920 के अधिनियम तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय विद्यमान नहीं था तथा चूँकि इसे विधानमंडल के अधिनियम द्वारा अस्तित्व में लाया गया था, अतः उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय देने से इंकार कर दिया गया कि इसकी स्थापना मुस्लिम समुदाय द्वारा की गई थी । यह निर्णय भी दिया गया था कि इस दावे को उचित सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा की गई थी और इस प्रकार उन्हें संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत मौलिक अधिकार के आधार पर विश्वविद्यालय के संचालन का अधिकार नहीं है ।

इन प्रारंभिक टिप्पणियों के साथ हम जामिया के अल्पसंख्यक दर्जे के संबंध में याचिकाकताओं के दावे की जांच करने के लिए अग्रसर होते हैं । याचिकाकताओं द्वारा उठाए गए विवादों को समझने के लिए, जामिया के अधिनियम के अधीन समावेशित होने से पहले, उसके इतिहास का संदर्भ लेना आवश्यक है । याचिकाकर्ता ने यह सिद्ध करने के लिए कि जामिया की स्थापना तथा उसका संचालन मुस्लिम समुदाय द्वारा किया गया था तथा इसे अधिनियम द्वारा स्थापित नहीं किया गया था, प्रोफेसर तरबेज आलम खाँ, श्री जावेद आलम, श्री शम्स परवेज तथा श्री ओबेद उल-हक के शपथपत्रों के रूप में साक्ष्य दाखिल किया है । प्रोफेसर एस.एम. साजिद, प्रतिवादी विश्वविद्यालय के कुलसचिव ने यह सिद्ध करने के लिए

अपना शपथपत्र दाखिल किया है कि जामिया की स्थापना मुस्लिम समुदाय के लाभ के लिए मौलाना मोहम्मद अली जौहर तथा हकीम अजमल खाँ जैसे राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा की गई थी । शपथपत्रों के साथ संलग्न कुछ पुस्तकों तथा 1939 में सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अधीन पंजीकृत जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के ज्ञापन का सुदृढ़ आधार लिया गया है ।

यह प्रतीत होता है कि मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने जब खिलाफत आन्दोलन के संबंध में दारूल-उलूम देवबंद का दौरा किया था, तो उन्हें दारूल-उलूम की स्थापना के उद्देश्य के बारे में मौलाना कासिम के मूल दस्तावेजों को दिखाया गया था, तब मौलाना मोहम्मद अली जौहर की आँखों में आंसू आ गए थे तथा आवेग में उन्होंने चिल्ला कर कहाः इन सिद्धांतों का दलीलों के साथ क्या संबंध है ? यह पूरी तरह से प्रेणात्मक हैं । इसके पश्चात् उन्होंने कहा कि" यह आश्चर्यजनक है कि हम 100 सालों तक उद्देश्य भट कने के पश्चात् आज निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हमें अपनी सामूहिक संस्थाओं को कभी भी अंग्रेजी सरकार की किसी सहायता पर आश्रित नहीं रखना चाहिए, बल्कि उन्हें अपने हाथों में रखते हुए स्वावलंबन से खड़े होना चाहिए, ये बुजुर्ग आश्चर्यजनक रूप से सैकड़ों वर्ष पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे। (सैयद महबूब रिज्वी द्वारा संकलित, प्रोफेसर मुर्ताज हुसैन एफ कुरैशी द्वारा अंग्रेजी में अनूदित हिस्ट्री ऑफ द दारूल-उलूम, देवबंद खण्ड । 1980 संस्करण पृष्ठ 33 से उद्धृत)।

अली बंधुओं (मौलाना शौकत अली तथा मौलाना मोहम्मद अली जौहर), डा. एम. ए. अंसारी तथा हकीम अजमल खाँ द्वारा यह महसूस किया गया था कि एम.ए. ओ कॉलेज, अलीगढ़ में इस्लामी शिक्षा की उपेक्षा की जा रही थी क्योंकि यह अंग्रेजी फैशन तथा संस्कृति का केन्द्र बन गया था ।अल्लामा शिबली नुमैन ने भी स्वयं को इसी कारण से एम ए ओ कॉलेज से अलग कर लिया तथा उन्होंने सन् 1894 में इसलामी शिक्षा के लिए लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में नदवात-उल-उलेमा की स्थापना की । क्योंकि एम ए ओ कॉलेज को एक ब्रिटिश समर्थक संस्था माना जाता था, अतः उन्होंने इसे एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया । अली बंधुओं ने डा. एम ए अंसारी, हकीम अजमल खाँ तथा गांधीजी के साथ मिलकर एम ए ओ कॉलेज का दौरा किया तथा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के लिए स्वयं को समर्पित करने और समुदाय तथा राष्ट्र के सर्वोत्तम हित में स्वावलंबी तरीके से कॉलेज को संचालित करने में उनका साथ देने के लिए, विद्यार्थियों को सम्बोधित किया । एम ए ओ कॉलेज के न्यासियों ने 28 अक्तूबर,1920 को, अली बंधुओं द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए एक बैठक का आयोजन किया । विद्यार्थियों को सम्बोधित करने तथा असहयोग आन्दोलन के समर्थन में उन्हें एक संकल्प पारित करने का अनुरोध करने की अली बंधुओं की कार्रवाई के विरोध में उन्होंने अपनी सख्त नापसंदगी जाहिर की । न्यासियों ने अली बंधुओं तथा उनके साथियों को ओल्ड ब्वायज लॉज से बेदखल करने के लिए इस आधार पर पुलिस की सहायता चाही कि इसका उपयोग राजद्रोह के प्रयोजनों के लिए किया जा रहा था। तथापि, लॉज से उनकी बेदखली होने पर उन्होंने कुछ तम्बू किराए पर लिए तथा उन्हें महाविद्यालय परिसर से कुछ दूरी पर खड़ा कर दिया और अपने लक्ष्य को पूरा किया ।

तथापि, 29 अक्तूबर,1920 को, महाविद्यालय की मस्जिद में, शुक्रवार की नमाज के पश्चात, राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह की घोषणा की गई । शैकुल हिन्दु मौलाना महमूद-अल-हसन द्वारा दिए गए निम्नलिखित अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना के उद्देश्य की व्याख्या की गई थी :

> ".....मुस्लिम शिक्षा को बाह्य नियंत्रण से पूरी तरह से मुक्त करके मुस्लिमों के हाथों में रखना ताकि हम अपने विचारों तथा धारणाओं में, अपनी

नीतियों तथा व्यवहार में, अपने चरित्र और आचरण में हानिकर विदेशी प्रभावों से संपूर्णतः प्रतिरक्षित हो सकें तथा पश्चिमी संस्कृति और विज्ञान में जो सर्वोत्तम था, उन सभी को आत्मसात् करने में भी विद्यार्थियों को समर्थ बनाने के लिए तथा इसके अलावा संस्था को बगदाद तथा कोरडोवा के प्राचीन मुस्लिम विश्वविद्यालयों का एक सक्षम विकल्प बनाने के लिए ।"

अध्यक्षीय भाषण के पश्चात, मौलाना मोहम्मद अली जौहर द्वारा भाषण दिया गया, जिन्होंने एम ए ओ कॉलेज, अलीगढ़ को एक राष्ट्रीय संस्था में बदलने की राष्ट्रवादी मुस्लिमों की मंशा को दोहराया। भारत में मुसलमानों के लिए एम ए ओ कॉलेज, अलीगढ़ पहला तथा जामिया, दूसरा दिशा परिवर्तक बना ।

प्रारंभिक अवस्था में, मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने महाविद्यालय के कुछ कमरों को अधिकार में लिया तथा जामिया के लिए विद्यार्थियों का नामांकन प्रारंभ कर दिया । उक्त कार्य में पुलिस हस्तक्षेप का पूर्वानुमान करते हुए, मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने 31 अक्तूबर,1920 को जामिया की अवस्थिति को एक निकटवर्ती स्थान में बदल दिया । मौलाना मोहम्मद अली जौहर पहले प्रधानाचार्य, तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानी पहले कुलसचिव, शेख-अल-हिन्द मौलाना महमूद-अल-हसन मार्गदर्शक संरक्षक तथा हकीम अजमल खाँ अमीर बने । मौलाना मोहम्मद अली जौहर द्वारा जामिया के उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया गया थाः

"हमारे विचार में, मुस्लिमों की सबसे बड़ी जरूरत यह है कि वे इस शब्द के सबसे सच्चे अर्थों में मुस्लिम होने चाहिए तथा इस प्रयोजन के लिए यह अत्यावश्यक है कि हमें न तो सांसारिक और आध्यत्मिक विषयों के बीच विदीर्ण कर रहे भेदभाव को बरदाश्त करना चाहिए और न ही मुस्लिमों, जैसे पुरोहित वर्ग और जनसाधारण, के बीच जातियों के किसी विभेदीकरण को बढ़ावा देना चाहिए । बुराइयां, जिनसे देश में मुस्लिम समाज कष्ट भोग रहा था, को पूर्णतया समझना चाहिए तथा इन्हें दूर करने के उपायों के बारे में सोचना चाहिए और अध्ययन की योजना में समाविष्ट करना चाहिए था । लक्ष्य जिसे हमेशा ध्यान में रखा गया था वह यह था कि इन संस्थाओं से पढ़ लिखकर बाहर निकलने वाले युवक न केवल आधुनिक स्तर के मुताबिक संस्कृति वाले हों, बल्कि ऐसे सच्चे मुस्लिम हों जिनमें इस्लाम की भावना विद्यमान हो और उनके अपने धर्म का पर्याप्त ज्ञान हो ताकि वे इस्लाम के धर्म प्रचारकों की सेना में एक पर्याप्त रूप में स्वतंत्र ईकाई के रूप में खड़े हो सकें ।"

मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने जामिया में इस्लामी इतिहास तथा कुरान के शिक्षण तथा राष्ट्र की सेवा करने के लिए विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देने पर बल दिया । हमदर्द में प्रकाशित अपने विभिन्न लेखों में उन्होंने जामिया की स्थापना के निम्नलिखित आधाभूत उद्देश्यों की व्याख्या की :

"जामिया मिलिया इस्लामिया पहले एक जामिया अर्थात एक विश्वविद्यालय है तथा इसके पश्चात् यह एक मिलिया अर्थात् एक धर्म के अनुयायिओं का समूह है । अन्य शब्दों में, यह एक शिक्षण संस्था है जहां धार्मिक तथा अन्य अर्थात् लौकिक दोनों तरह की शिक्षा प्रदान की जाती हैं । जैसा कि देवबंद तथा मदरसा निजामिया के मामले में है, यह स्वयं को केवल धार्मिक मामलों के शिक्षण तक ही सीमित नहीं रखता है । यह अपनी शिक्षा को वर्तमान अंग्रेजी भाषा के विद्यालयों तक भी सीमित नहीं करता है ।

और इसके पश्चात् यह जामिया, जामिया-ए-इस्लामिया है, इसलिए कि यह इस्लाम की शिक्षा प्रदान करता है । तथापि, यह अवश्य ध्यान दिया जाए कि इसके दरवाजे सभी धर्मों के अनुयाइयों के लिए खुले हैं । जामिया के पाठ्यक्रम में अरबी भाषा का शिक्षण शामिल है ताकि विद्यार्थी कुरान तथा हदीस (पैगम्बर के उपदेश) दोनों को उतना समझ सकें जितना कि पैगम्बर के समय में एक निरक्षर व्यक्ति समझ सकता था । हालांकि इसलाम के मूल सिद्धांतों का अनुसरण करने के लिए किसी भी व्यक्ति को कुरान की विद्वत्तापूर्ण व्याख्याओं का सहारा लेना चाहिए, लेकिन उसे न तो उन पर और न ही अन्य पर पूरी तरह से आश्रित रहना चाहिए .....

जामिया का उद्देश्य यह है कि मुस्लिमों को न तो पूववर्ती 'निर्धारित' मार्ग का बिना सोचे समझे अनुसरण करना चाहिए और न ही उन्हें यह मानना चाहिए कि धर्म का सार न्यायशास्त्र की कुछ समस्याओं में स्थित है .....जामिया ने विदेशी शक्तियों द्वारा दमन के विरूद्ध प्रत्येक विद्यार्थी चाहे वह मुसलमान है अथवा हिन्दु के हृदय में घृणा पैदा कर दी है । इसने अपने वातावरण को अपराध तथा द्वेष से मुक्त रखा है । इन्हीं कारणों से जामिया, जामिया इस्लामिया तथा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय दोनों है । "(मुशीर अल हसन द्वारा रचित पार्टनर्स इन फ्रीडम जामिया मिलिया इस्लामिया के पृष्ठ 66 से उद्धृत)

सन् 1921 में, हकीम अजमल खाँ ने जामिया के पहले दीक्षांत समारोह में भाषण दिया । उन्होंने शिक्षा के माध्यम से धर्मों के परस्पर मेल-मिलाप की आवश्यकता पर बल दिया, क्योंकि वह संगठित भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूती प्रदान करेगा । उनके अनुसार, जामिया के मुख्य उद्देश्यों में से एक विद्यार्थियों में मातृभूमि के लिए गहरे प्यार की भावना भरना था । शिक्षा के क्षेत्र में जामिया की भूमिका का विस्तारण करते हुए, डॉ.जाकिर हुसैन ने अगस्त 1937 में हमदर्द-ए-जामिया में निम्नलिखित टिप्पणी की :

"जामिया मिलिया का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने हृदय में इस्लाम धर्म को रखकर, भारतीय मुस्लिमों के भावी जीवन के लिए योजना तैयार करना है तथा इस योजना को भारत की सभ्यता के रंग से इस तरीके से भरना है कि यह सामान्य व्यक्ति के जीवन के रंगों के साथ विलीन हो जाए । इस उद्देश्य का आधार, यह विश्वास है कि उनके धर्म की सही शिक्षा भारतीय मुस्लिमों में उनके देश के प्रति प्रेम को आत्मसात् करेगी तथा राष्ट्रीय अखंडता के लिए उत्साह का संचार करेगी और स्वतंत्रता प्राप्त करने में तथा भारत की उन्नति में सक्रिय भाग लेने के लिए उन्हें तैयार करेगी । स्वतंत्र भारत, शांति तथा अन्तर राष्ट्रीय सहयोग का प्रयास करने में अन्य देशों के साथ मिलजुलकर काम करेगा.....

इसका उद्देश्य भारतीय मुस्लिमों के भविष्य के लिए, विशेषतः उनके बच्चों के लिए एक पाठ्यक्रम का सृजन करने हेतु योजना का उपयोग करना है । जीविका उपार्जन के लिए शिक्षा प्राप्ति वर्तमान प्रवृत्ति है तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्राप्ति अतीत में मार्गदर्शक सिद्धांत था । जामिया इन दोनों नियमों को संकीर्ण तथा अवरूद्धक मानता है । यह जीवन का व्यापक दायरा जिसमें धर्म, बुद्धिमानी,उद्योग राजनीति, अर्थशास्त्र तथा अन्य क्षेत्र शामिल हैं, के लिए ज्ञान प्रदान करना चाहता है । यह अपने विद्यार्थियों को राष्ट्रीय सभ्यता तथा दिन प्रतिदिन के जीवन के मूल्यों को समझने तथा

चुने हुए क्षेत्र में उनकी प्रकृति के अनुसार कार्य करने के लिए समर्थ बनाना चाहता है ताकि उनके कार्यों से कम से कम एक निश्चित सीमा तक सामूहिक जीवन स्तर में सुधार हो । यह एक स्वीकार किया गया तथ्य है कि भारतीयों द्वारा जिस अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्या का सामना किया जा रहा है, वह जीविका उपार्जन की समस्या है । जामिया मिलिया इस आवश्यकता को स्वीकार करता है तथा अपने विद्यार्थियों में किन्हीं उचित साधनों द्वारा जीविका उपार्जन करने की क्षमता को विकसित करना चाहता है, लेकिन इसका मुख्य सिद्धांत यह है कि व्यक्ति को जीविका उपार्जन को स्वयं जीवन के सहायक के रूप में मानना चाहिए । इसी तरह सेवा प्रदान करने में पारिश्रामिक का महत्व गौण होना चाहिए । समाज तथा सभ्यता का एक उपयोगी सदस्य बनना व्यक्ति का मार्गदर्शक सिद्धांत होना चाहिए । अन्य शब्दों में, उसे स्वयं के लिए वह स्थान खोजना चाहिए, जहां उसके ज्ञान तथा बुद्धिमानी का समाज की सेवा के अतिरिक्त जीविका उपार्जन में सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके ताकि उसकी तथा उसके परिवार की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके ।"

(मुशीर-अल-हसन द्वारा रचित पार्टनर्स इन फ्रीडम जामिया मिलिया इस्लामिया के पृष्ठ 92 से उद्धृत)

इस प्रकार, उन तरीकों, जिनके द्वारा शिक्षा को वास्तव में राष्ट्रीय बनाया जा सकता था, को ढूँढ निकालने के मुख्य उद्देश्य के साथ खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन के परिणाम स्वरूप सन् 1920 में जामिया की अलीगढ़ में स्थापना की गई थी । मौलाना मोहम्मद अली जौहर, हकीम अजमल खाँ, डॉ. मुख्तार अंसारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना महमूद अल हसन, डॉ.जाकिर हुसैन जैसे राष्ट्रीय नेता इसके संस्थापकों में शामिल थे । डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. सैयद आबिद हुसैन, शफीकुर-रहमान किदवई तथा प्रोफेसर मोहम्मद नुजीब ने स्वयं को जामिया के कार्य में जी जान से झोंक दिया । हकीम अजमल खाँ तथा डॉ. एम ए अंसारी ने जामिया को धन मुहैआ करने की जिम्मेवारी ली । जामिया के मुश्किल दिनों के दौरान मद्रास के सेठ जमाल मोहम्मद ने एक बड़ी राशि दान दी तथा जामिया को पुनर्जीवित किया ।

सन् 1928 में वित्तीय संकट ने जामिया को कठोर आघात पहुँचाया । डॉ. जाकिर हुसैन ने तत्कालीन कुलधिपति डॉ. एम ए अंसारी को सुझाव दिया कि या तो न्यासियों को धन एकत्र करने की जिम्मेवारी लेनी चाहिए अथवा यदि वे धन जुटाने में असमर्थ है, तो उन्हें जामिया को बन्द कर देना चाहिए। उन्होंने आगे सुझाव दिया कि न्यासियों को जामिया, शिक्षकों के समूह को सौंप देना चाहिए जो कि जामिया के निमित्त समर्पित तथा प्रतिबद्ध हैं । उस समय न्यासी, वित्तीय संकट को दूर करने के लिए कुछ भी महत्वपूर्ण कदम नहीं उठा रहे थे । डॉ. जाकिर हुसैन ने जामिया के पुराने संविधान में पूर्ण बदलाव तथा जामिया के पुनर्गठन करने के लिए एक नई संस्था की स्थापना की आवश्यकता को महसूस किया । तथापि, इस कठिन समय में, जामिया के मुस्लिम शिक्षक आगे आए तथा सन् 1928 में उन्होंने डा. जाकिर हुसैन के नेतृत्व के अधीन अंजुमन ए तालिमी मिली(बाद में अंजुमन ए जामिया मिलिया इस्लामिया के रूप में जाना जाए) को संगठित करने का संकल्प लिया तथा उसके सदस्यों ने 150/-रुपए प्रतिमाह से अनधिक वेतन पर कम से कम 20 वर्षों के लिए जामिया की सेवा करने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किए । डॉ. जाकिर हुसैन ने धीरे-धीरे अपने वेतन को 150/- रुपए से घटाकर केवल 40/-रुपए प्रतिमाह तक कर दिया था ।

सन् 1928 में स्थापित अंजुमन ए तालिम ए मिली के लक्ष्यों को बाद में अंजुमन ए जामिया मिलिया इस्लामिया के संगम ज्ञापन में समाविष्ट किया गया, जो कि कुल मिलाकर निम्नानुसार थे :-

1. "भारतीयों, विशेषतः मुस्लिमों को, शिक्षा के ठोस सिद्धांतों के अनुरूप तथा राष्ट्रीय जीवन के अतिरिक्त भारत में मुस्लिम समुदाय के जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा देने तथा मुहैआ करने के लिए तथा उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उपयुक्त शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करना और उनका रखरखाव करना;
2. परीक्षाएं आयोजित करना तथा डिग्री, डिप्लोमा और प्रमाणपत्र प्रदान करना;
3. शैक्षणिक परीक्षण आयोजित करना;
4. शैक्षणिक शोध कार्य आयोजित करने तथा उसमें सहायता प्रदान करने तथा ज्ञान का प्रसार करना;
5. संविदा करना,त्रृण देना अथवा लेना और चल तथा अचल सम्पत्ति को अर्जित तथा धारण करना;
6. अंजुमन मे तत्समय निहित सभी अथवा किसी चल अथवा अचल सम्पत्ति का विक्रय, क्रय, पट्टा, विनिमय, निवेश अथवा इससे अन्यथा अन्तरण करना;
7. अंजुमन की संस्थाएं का रखरखाव करना तथा उसके उद्देश्यों को अग्रसर करने हेतु धन एकत्र करना तथा उपहारों, दान और अंशदानों को स्वीकार करना;
8. उन सभी कार्यों तथा बातों को करना, जो कि उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक अथवा सहायक हैं ।"

सन् 1939 में जामिया, सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के अधीन एक पंजीकृत सोसाइटी बन गयी । सन् 1940 में जामिया को ओखला स्थित वर्तमान परिसर में स्थानान्तरित कर दिया गया । सन् 1951 में केन्द्र सरकार द्वारा जामिया के शैक्षणिक कार्यक्रमों को मान्यता प्रदान की गई तथा इसकी डिग्रियों और शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को बी.ए. और बी.टी. के समकक्ष मान्यता प्रदान की गई।

हम यहां पुनः दोहराते हुए यह उल्लेख कर सकते हैं कि शेख अल हिन्द मौलाना महमूद अल हसन ने सन् 1920 में अपने उद्घाटन भाषण में सुझाव दिए थे कि :

1. भारतीय मुस्लिमों द्वारा अपनी शिक्षा को, विदेशी प्रभाव से मुक्त रखकर पूर्णतः अपने नियंत्रण में रखना चाहिए जिसने चरित्र की अनुकरणशीलता और स्वतंत्रता को अशक्त बना दिया था;
2. मुस्लिमों को युवाओं की शिक्षा को स्वयं अपनी सांस्कृतिक विरासत तथा इस्लामी परम्पराओं पर आधारित रखना चाहिए ।

जामिया का पूर्ण इतिहास जिसे उसके संस्थापकों के लेखों तथा भाषणों से संग्रहीत किया जा सकता है, पूर्वोक्त मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर कार्यकलाप का एक विषय है । जामिया के आदर्शों की व्याख्या कर रहे उसके संस्थापकों ने आरम्भ से ही इस्लामी संस्कृति की मुख्य विशिष्टताओं पर जोर दिया है कि इसने सांसारिक(दुनियावी) तथा धार्मिक(दीनी) शिक्षा के बीच की खाई को पाटने की आकांक्षा की थी । मोहम्मद मुजीब के शब्दों में, "जामिया के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों में से एक उद्देश्य, शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली विकसित करना था, जो कि धर्म तथा ज्ञान का एक मूलभूत संयोजन होगी ।"

यह विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी, दिल्ली के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों में से एक उसके संगम ज्ञापन में निम्नानुसार उल्लिखित थाः-

(i) भारतीयों, विशेषतः मुस्लिमों को जामिया मिलिया इस्लामिया में शिक्षा के ठोस सिद्धांतों के अनुरूप तथा राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल, धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा देने तथा मुहैआ करने के लिए तथा उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जामिया परिसर के भीतर उपयुक्त शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करने और उनका रखरखाव करने हेतु तथा समय समय पर दिल्ली के संघ राज्य क्षेत्र में शैक्षणिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना करने तथा उन्हें सुव्यवस्थित करना ।"

सन् 1962 में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की संस्तुतियों के आधार पर जामिया को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत मानद विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदत्त किया गया था । मानद विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त होने पर, जामिया को वह सभी सुविधाएं मिल गई, जो कि स्वायत्त विश्वविद्यालयों के लिए उपलब्ध हैं । इसके साथ ही उसे खुद की डिग्रियां देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस तथ्य मात्र को ध्यान में रखा जाए कि जामिया को मानद विश्वविद्यालय का दर्जा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत प्रदत्त किया गया था तथा यह परिपाटी के रूप में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के सांविधिक उपबंधों का अनुसरण करने के लिए आबद्ध था, अन्यथा यह अधिनियम जामिया को सांविधिक दर्जा अथवा उसके स्वरूप का आवरण प्रदान नहीं करेगा । वैश्य डिग्री कॉलेज बनाम् लक्ष्मी नारायण एआईआर 1976 एससी 888 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि संस्था के सांविधिक निकाय बनने से पहले इसे अवश्य ही परिनियम द्वारा उसके अधीन सृजित किया जाए तथा उसका अस्तित्व परिनियम के कारण होना चाहिए । यहां एक संस्था जिसे परिनियम द्वारा अथवा उसके अधीन सृजित नहीं किया गया है लेकिन वह संस्था के उचित रखरखाव व प्रशासन के लिए कतिपय सांविधिक उपबंधों द्वारा शासित है के बीच पृथक्करण अवश्य किया जाए । इस परिस्थिति में, हम वैश्य डिग्री कॉलेज(ऊपर) मामले में न्यायधीशों की निम्नलिखित टिप्पणियों को उपयोगी तरीके से उद्धृत कर सकते हैं :

"ऐसी अनेक संस्थाएं हैं जिन्हें हालांकि किसी परिनियम द्वारा अथवा उसके अधीन सृजित नहीं किया गया है तथा उन्होंन कतिपय सांविधक उपबंधों को अपनाया है, लेकिन हमारी राय में, वह अपने आप में संस्था को सांविधिक स्वरूप का आवरण प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है । सुखदेव सिंह बनाम् भगत राम सरदार सिंह रघुवंशी ए आई आर 1975 एस सी 1331 मामले में पृष्ठ 1339 पर इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से बताया गया है कि सांविधिक निकाय का गठन कैसे होता है । इस संबंध में माननीय न्यायाधीश ए.एन.रे., सी.जे. द्वारा निम्नानुसार टिप्पणी की गई:

"कम्पनी अधिनियिम के अधीन निगमित कम्पनी को कम्पनी अधिनियम द्वारा सृजित नहीं किया जाता है, बल्कि वह अधिनियम के उपबंधों के अनुसार आस्तित्व में आती है । यह एक सांविधिक निकाय नहीं है क्योंकि इस परिनियम द्वारा सृजित नहीं किया गया है । यह परिनियम के उपबंधों के अनुसार सृजित एक निकाय है ।"

अतः यह स्पष्ट है कि वह निकाय, जिसे परिनियम द्वारा सृजित किया गया है तथा वह निकाय जिसके अस्तित्व में आने के पश्चात् परिनियम के उपबंधों के अनुसार उसे शासित किया जाता है, के बीच सुस्पष्ट भिन्नता है । अन्य शब्दों में स्थिति ऐसी

प्रतीत होती है कि संबंधित संस्था का अस्तित्व परिनियम के कारण होना चाहिए, जो कि उसकी शक्तियों का मूल स्रोत होगा । ऐसे मामलों में यह प्रश्न पूछा जाए कि यदि कोई परिनियम नहीं है तो क्या संस्था का कोई विधिक अस्तित्व होगा । यदि उत्तर नकारात्मक है तो निस्सन्देह यह एक सांविधिक निकाय है, लेकिन यदि संस्था का संबंधित परिनियम के साथ किसी संबंध के बिना स्वयं अपने आप में एक पृथक अस्तित्व है, लेकिन वह सांविधिक उपबंधों द्वारा मात्र शासित की जाती है तो उसे सांविधिक निकाय नहीं कहा जा सकता ।

सन् 1988 में, जामिया को अधिनियम के अधीन केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया गया था । भारत सरकार के तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री शिव शंकर ने विधेयक को प्रस्तुत करते समय, संसद के पटल पर निम्नलिखित वक्तव्य था :-

"उसके एतिहासिक स्वरूप तथा राष्ट्र के प्रति उसकी सेवा को ध्यान में रखते हुए, पिछले कुछ वर्षों से यह महसूस किया जा रहा है कि उसे प्रदत्त किया गया मानद विश्वविद्यालय का दर्जा पर्याप्त नहीं है । जामिया के शिक्षकों तथा अन्य जिम्मेवार व्यक्तियों तथा हमारे समाज की तरफ से भी मांग की गई है कि संसद की विधि के अंतर्गत इससे स्वायत्त विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया जाए ताकि उच्चतर अध्ययनों के लिए यह सुविधाएं मुहैआ कर सके । सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, जामिया मिलिया इस्लामिया के कुलाधिपति, इस क्षेत्र के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तथा विशेषज्ञों के साथ भी विचार विमर्श किए गए हैं । जामिया, शिक्षा के क्षेत्र में एक राष्ट्रीय तीर्थ स्थान के रूप में अस्तित्व में आया है । स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उसकी निस्वार्थ सेवा तथा उसके धर्म निरपेक्ष स्वरूप को ध्यान में रखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि शोध तथा शैक्षणिक विकास कार्यक्रमों के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए इस समर्थ बनाने हेतु, संसद द्वारा पारित विधि के अधीन, इसे केन्द्राय सांविधिक विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया जाना चाहिए। विधेयक का लक्ष्य तथा उद्देश्य जामिया मिलिया को एक सांविधिक विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्रदान करना है तथा दिल्ली की जामिया मिलिया सोसाइटी को इसमें मिलाना भी है ।"

सन् 1940 में, डब्ल्यू. सी. स्मिथ ने जामिया का दौरा किया तथा उन्होंने जामिया का 'भारत में अत्यन्त प्रगतिशील तथा सर्वोत्तम श्रेणी के विश्वविद्यालय' के रूप में वर्णन किया था । उन्होंने टिप्पणी की थीः

"भारत की राजकीय शैक्षणिक प्रणाली से इस संस्था के स्वैच्छिक और मजबूरन बहिष्करण का एक प्रशंसनीय परिणाम, दूरदर्शिता का अंतरराष्ट्रीय विस्तार है । यह अनन्य ब्रिटिश संस्कृति की संकीर्णता से बच निकली है, जो कि साम्राज्यवादी भारत के साधारण महाविद्यालयों पर भारी पड़ती है । जामिया की डिग्रियों को जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका में मान्यता प्राप्त है जबकि आधिकारिक ब्रिटिश प्रतिष्ठा का यह मानना है कि वह उन पर ध्यान देने में समर्थ नहीं हो सकता । फलस्वरूप, भारत में स्थित अधिकतर अन्य देशज महाविद्यालयों की अपेक्षा जामिया व्यापक संसार के साथ संपर्क में है ।"

(मुशीर-अल-हसन द्वारा रचित पार्टनर्स इन फ्रीडम जामिया मिलिया इस्लामिया के पृष्ठ 102 से उद्धृत)

डब्ल्यू सी स्मिथ का पूर्वोक्त कथन स्पष्ट रूप से निदर्शित करता है कि जामिया की डिग्रिया जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका में स्वीकार की जाती थी । अजीज बाशा के मामले (ऊपर) में यह निर्णय दिया गया है कि भारत के संविधान के प्रवृत्त होने से पहले भारत में ऐसा कोई कानून नहीं था, जिसके अंतर्गत किसी गैर-सरकारी व्यक्ति अथवा निकाय को विश्वविद्यालय की स्थापना करने के लिए निषिद्ध किया गया था । शैक्षणिक संस्थाएं जो कि विश्वविद्यालय नहीं है तथा जो विश्वविद्यालय हैं के बीच बहुत कुछ एक समान है । दोनों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं तथा इस प्रयोजन के लिए दोनों के पास शिक्षक हैं । लेकिन एक विश्वविद्यालय को किसी अन्य शैक्षणिक संस्था से जो भिन्न करता है, वह यह है कि विश्वविद्यालय स्वयं खुद की डिग्रियां प्रदान करता है, जब कि अन्य शैक्षणिक संस्थाएं डिग्रियां प्रदान नहीं कर सकती । विश्वविद्यालय द्वारा इन डिग्रियों को प्रदान करना ही उसे शैक्षणिक संस्थाओं के साधारण संचालन से भिन्न करता है .....इस प्रकार भारत के कानून में गैर सरकारी व्यक्ति; अथवा निकायों द्वारा विश्वविद्यालयों की स्थापना के विरूद्ध कोई निषेघ नहीं था और यदि किसी विश्वविद्यालय को इस प्रकार स्थापित किया गया था, तो इससे पहले कि उसे विश्वविद्यालय घोषित किया जा सके, उसके लिए डिग्रिया प्रदान करना अनिवार्य था..... संविधान के प्रवृत्त होने के बाद भी यह स्थिति जारी थी । यह केवल सन् 1956 में था कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम(1956 का अधिनियम संख्यांक 3) की धारा 22 की उपधारा(1) द्वारा यह निर्धारित किया गया था कि,

> "उपाधियां प्रदान करने या देने के अधिकार का प्रयोग किसी केंद्रीय अधिनियम, प्रान्तीय अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित या निगमित किसी विश्वविद्यालय द्वारा या धारा 3 के अधीन विश्वविद्यालय समझी जाने वाली किसी संस्था द्वारा या संसद के किसी अधिनियम द्वारा उपाधियां प्रदान करने या देने के लिए विशेषतः सशक्त किसी संस्था द्वारा ही किया जाएगा ।"

उसकी उपधार(2) में आगे उपबंध किया गया है किः

> "उपधारा(1) में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय, कोई व्यक्ति या प्राधिकारी कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा या नहीं देगा अथवा उसे प्रदान करने या देने के हकदार के रूप में अपना व्यपदेशन नहीं करेगा ।"

> धारा 23 आगे किसी भी शैक्षणिक संस्था द्वारा 'विश्वविद्यालय' शब्द के प्रयोग को निषिद्ध करती है, जब तक कि उसे विधि द्वारा स्थापित नहीं किया गया हो । केवल इसके पश्चात ही यह उपबंध किया गया था कि कोई गैर-सरकारी व्यक्ति अथवा निकाय भारत में उपाधि प्रदान नहीं कर सकती थी । अतः मुस्लिम अल्पसंख्यको के लिए, संविधान के प्रवृत्त होने से पहले विश्वविद्यालय की स्थापना करना सम्भव था, हालांकि ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त उपाधियां सरकार द्वारा मान्यता प्रदान करने के लिए बाध्यकर नहीं थी ।"

यह विवाद से परे है कि 26 जनवरी,1950 को जब संविधान लागू हुआ था, तब जामिया एक विश्वविद्यालय के रूप में अस्तित्व में था तथा वह "जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी" द्वारा संचालित किया जा रहा था, जो कि मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा गठित एक पंजीकृत सोसाइटी थी तथा इसके

द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को कुछ देशों द्वारा भी स्वीकार किया गया था । यहां तक कि भारत सरकार ने भी जामिया द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को मान्यता प्रदान की थी ।

हमारे द्वारा निर्दिष्ट किए गए उपरोक्त संक्षिप्त इतिहास से यह स्पष्ट हो जाएगा कि राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना करने की लालसा सबसे पहले मौलाना मोहम्मद अली जौहर के हृदय में उत्पन्न हुई थी, उनसे यह उसके साथियों के हृदय में बहुत अधिक तेजी से उत्पन्न हुई, जिसके परिणाम स्वरूप मुस्लिम समुदाय के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं द्वारा जामिया की स्थापना की गई थी । हम इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे हैं तथा निर्णय देते हैं कि जामिया की स्थापना शिक्षा के माध्यम से मुस्लिम समुदाय को सशक्त बनाने के उद्देश्य से तथा उनमें राष्ट्रवादी विचारों को भरने के लिए भी की गई थी । यहां यह कहना अनावश्यक है कि हकीम अजमल खाँ जामिया के पहले कुलाधिपति चुने गए थे तथा मौलाना मोहम्मद अली जौहर इसके पहले कुलपति बने थे । हम आगे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा निर्णय देते हैं कि जामिया तथा जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी की शासी निकायों द्वारा इस आशय के संकल्पों, कि मुस्लिम समुदाय के लाभ के लिए मौजूदा सम्पत्तियों, निधियों तथा मूल-रूप से संगठित शैक्षणिक संस्थाओं को सांविधिक विश्वविद्यालय में निहित किया जाए ताकि पहले से अस्तित्व रख रही संस्थाओं को मिलाया जा सके तथा केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया जा सके, को पारित करने के पश्चात् मुस्लिम समुदाय के परिशीलन करने पर अधिनियम को अधिनियमित किया गया था । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि जब 26 जनवरी, 1950 को संविधान को लागू किया गया था, तब जामिया की सभी चल तथा अचल सम्पत्तियां, मुस्लिम अल्पसंख्यकों द्वारा धारित थीं तथा जामिया का संचालन भी मुस्लिमों द्वारा किया जा रहा था । जामिया द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका में भी मान्यता प्राप्त थी।

जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम1988 ने मौजूदा संस्था को औपचारिक रूप से अधिनियम के अधीन केंद्रीय विश्वविद्यालय के रूप में सम्मिलित करके, जामिया की सतत् तथा पहले से विद्यमान तथ्यात्मक तथा विधिक स्थिति को संहिताबद्ध, घोषित, संपुष्ट तथा सारगर्भित किया । इस संबंध में अधिनियम(1988 का अधिनियम संख्यांक 58) की धारा 2(ण) के उपबंधों का संदर्भ लिया जा सकता है, जो कि विश्वविद्यालय को निम्नानुसार परिभाषित करती है-

> "विश्वविद्यालय का अभिप्राय है सरकार द्वारा प्रवर्तित सभी शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार करने के लिए गांधी जी के आह्वान की प्रतिक्रिया में खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलनों के दौरान सन् 1920 में स्थापित "जामिया मिलिया इस्लामिया" नामक शैक्षणिक संस्था जिसे तद्नुसार सन् 1939 में जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के रूप में पंजीकृत किया गया था तथा सन् 1956 की धारा 3 के अधीन एक संस्था, जिसे विश्वविद्यालय समझा जाएगा के रूप में घोषित किया गया तथा जिसे इस अधिनियम के एक विश्वविद्यालय के रूप में निगमित किया गया है ।"

अधिनियम की धारा 4 को जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के विघटन के लिए उपबंधित किया गया था । धारा 4 निम्नानुसार है :-

"धारा 4- इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से-

(i) जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी, दिल्ली नामक सोसाइटी को विघटित कर दिया जाएगा तथा उक्त सोसाइटी को सभी चल अथवा अचल सम्पत्तियों और सभी अधिकारों, शक्तियों तथा

विशेषाधिकारों को विश्वविद्यालय में अंतरित तथा निहित कर दिया जाएगा तथा उन उद्देश्यों तथा प्रयोजनों के लिए उपयोजन किया जाएगा, जिसके लिए विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है;

(ii) उक्त सोसाइटी के सभी ऋणों, दायित्वों तथा बाध्यताओं को विश्वविद्यालय को अंतरित कर दिया जाएगा तथा इसके पश्चात उनका अन्मोचन/निर्वहन तथा समाधान उसके द्वारा किया जाएगा;

(iii) उक्त सोसाइटी के किसी अधिनियमन में सभी निर्देशों का विश्वविद्यालय के लिए निर्देशों के रूप में अर्थ लगाया जाएगा ।

(iv) कोई विल, विलेख अथवा अन्य दस्तावेज, चाहे उन्हे इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले या बाद में बनाया अथवा निष्पादित किया गया था, जिसमें उपर्युक्त सोसाइटी के पक्ष में कोई वसीयत, उपहार अथवा न्यास अंतर्विष्ट है, के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा, मानो उसमें सोसाइटी के स्थान पर विश्वविद्यालय का नाम लिखा गया था ।

(v) किन्हीं आदेशों के अध्यधीन, जिन्हें मजलिस-ए-मुंतजिमाह(कार्यकारी परिषद) जारी कर सकती है, इमारतें जो कि जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली से संबंधित थी, को उसी नाम तथा अधिनियम द्वारा जाना तथा नामोद्दिष्ट किया जाता था;

(vi) इस अधिनियम के उपबंधों के अध्यधीन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में इस अधिनियम के प्रारंभ होने से ठीक पहले नियोजित प्रत्येक व्यक्ति, उसी अवधि तथा उन्हीं निबंधन और शर्तों पर तथा पेंशन और उपदान के बारे में उन्हीं अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के साथ विश्वविद्यालय में ऐसे नियोजन को धारण करेगा, जैसा कि उसने जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली के अधीन धारण किया होता, यदि यह अधिनियम पारित नहीं किया जाता ।

अधिनियम की धारा 6 की उप धारा (ii), भारत के धर्मों, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृति के अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए, जामिया को शक्ति प्रदान करती है । विश्वविद्यालय के परिनियमों के खंड 14 के साथ पठित, अधिनियम की धाराएं 19 तथा 20 स्पष्ट रुप से दर्शाती हैं कि यहां तक जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम के अधिनियमन के पश्चात् भी जामिया का प्रबंधन विश्वविद्यालय की मुख्य कार्यकारी निकाय अर्थात् मजलिस-ए-मुंतजिमाह (कार्यकारी परिषद) द्वारा किया जा रहा है । धारा 20 उपबंध करती है कि मजलिस-ए-तामिली (शैक्षणिक परिषद्) विश्वविद्यालय की मुख्य शैक्षणिक निकाय होगी । यह विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि अधिनियम की धारा 19 तथा 20 के उपबंध, जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के संगम ज्ञापन के क्रमशः खंड (9) तथा (10) की प्रतिकृति हैं । इस प्रकार यह अभिकथित साक्ष्य स्पष्ट रुप से साबित करता है कि जामिया का प्रशासन, अपने प्रारंभ से ही मुस्लिमों के नियंत्रण में रहा है।

यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि जामिया के परिसर में एक मस्जिद है । प्रोफेसर तबरेज आलम खां, श्री जावेद आलम खां, श्री शम्स परवेज़ तथा श्री अबैद-अल-हक के शपथपत्रों से सिद्ध हो चुका है कि जामिया की स्थापना से ही, उसका एक प्रतीक चिह्न है जिसमें दायीं तरफ `अल्ला-हो-अकबर` लेख के साथ एक तारा है । उक्त तारे के नीचे अरबी भाषा में लेख `अल्लाम्मल इसाना मलम यलम (इंसान को वह शिक्षा दी जिसका उसे ज्ञान नहीं था) के साथ पवित्र कुरान है । पवित्र कुरान के दोनों तरफ खजूर के दो वृक्ष हैं जो उस स्थान को दर्शाते हैं जहां अल्लाह के अंतिम पैगम्बर का जन्म हुआ था । प्रतीक चिह्नके निचले भाग में उर्दू में `जामिया मिलिया इस्लामिया` लेख के साथ छोटा रुपहला अर्धचन्द्र है । इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि सन् 1920 में अपनी स्थापना से, जामिया ने अपने मुस्लिम स्वरुप को स्पष्ट रुप से बनाए रखा है तथा यह उसके नाम, प्रतीक चिह्न तथा मस्जिद की स्थापना से सुव्यक्त हो गया होगा । जामिया का नियम-संग्रह, सोसाइटी के ज्ञापन से बना था । ज्ञापन के खंड 3 में

सोसाइटी के लक्ष्यों तथा उद्देश्य को वर्णित किया गया था तथा सोसाइटी के लक्ष्यों में से एक लक्ष्य इस प्रकार था -`भारतीयों, विशेषतः मुस्लिमों को जामिया मिलिया इस्लामिया में शिक्षा के ठोस सिद्धांतों के अनुरुप तथा राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल, धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा देने तथा मुहैया करने के लिए तथा उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जामिया परिसर के भीतर उपयुक्त शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करने और उनका रखरखाव करने हेतु तथा समय-समय पर दिल्ली के संघ राज्य क्षेत्र में शैक्षाणिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना करने तथा उन्हें सुव्यवस्थित करना ।`

ज्ञापन का खंड 4 घोषित करता है कि जामिया एक स्वायत्त शैक्षणिक निकाय होगी । यह आगे घोषित करता है कि सोसाइटी द्वारा संचालित सभी संस्थाओं में, शिक्षा के सभी स्तरों पर, शिक्षा का माध्यम उर्दू होगा । ज्ञापन का खंड 5 उपबंध करता है कि जामिया के निम्नलिखित अधिकारी होंगे :-

(i) अमीर-ए-जामिया (कुलाधिपति)
(ii) शैखुल जामिया (कुलपति)
(iii) खाजिन (कोषाध्यक्ष)
(iv) मुस्साजिल (कुल सचिव)
(v) संकायों के अध्यक्ष
(vi) कुलानुशासक
(vii) पुस्तकालय अध्यक्ष, और
(viii) ऐसे अन्य व्यक्ति, जैसा कि जामिया का अधिकारी बनने के लिए नियमों द्वारा घोषित किया जाए।

अधिनियम की धारा 9 में, जामिया के अधिकारियों के लगभग सदृश पदनामों को निम्नानुसार जारी रखा गया है :-

(i) अमीर-ए-जामिया (कुलाधिपति)
(ii) शेख-उल-जामिया (कुलपति)
(iii) नायब शेख-उल जामिया (सम-कुलपति)
(iv) मुस्साजिल (कुल सचिव)
(v) संकायों के अध्यक्ष
(vi) संकाय अध्यक्ष-छात्र कल्याण
(vii) वित्त अधिकारी, और
(viii) ऐसे अन्य अधिकारी जैसा कि विश्वविद्यालय का अधिकारी बनने के लिए, परिनियमों द्वारा घोषित किया जाए

अधिनियम का अधिनियमन होने के बावजूद भी जामिया के प्राधिकारियों के पदनामों का प्रतिधारण स्पष्ट रुप से उसके अल्पसंख्यक स्वरुप को प्रतिबिम्बित करता है । यह तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा दिनांक 2-9-1988 को संसद को दिए गए आश्वासन के अनुरुप है कि "-----हमारा इस संस्था के स्वरुप, जो भी हो , में किसी बदलाव को लाने का कोई इरादा नहीं है । मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं ताकि इसमें किसी प्रकार की संदिग्धता न हो । किसी भी व्यक्ति के मन में कोई संदेह क्यों होना चाहिए। इसका स्वरुप, इसके संस्थापकों की आकांक्षाओं तथा जिसे उन्होंने कार्यान्वित किया था, के अनुसार बना रहेगा तथा हम उसे बनाए रखेंगे----।"

ज्ञापन के खंड 7 में जामिया के प्राधिकरणों के लिए उपबंध किए गए हैं, जो निम्नानुसार हैं :-

(i) अंजुमन जामिया मिलिया इस्लामिया, इसमें इसके पश्चात अंजुमन (परिषद) कहा गया ।
(ii) मजलिस-ए-मुंताजिमाह (कार्यकारी परिषद)
(iii) मजलिस-ए-तालिमी (शैक्षणिक परिषद्)
(iv) मजलिस-ए-मालियम (वित्त समिति)
(v) संकाएं, और
(vi) ऐसे अन्य प्राधिकरण, जैसा कि `अम्ला` का प्राधिकरण बनने के लिए नियमों द्वारा घोषित किया जाए ;

जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम की धारा 17 में भी विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों के लिए उपबंध किए गए हैं :-

(i) अंजुमन (परिषद)
(ii) मजलिस-ए-मुंताजिमाह (कार्यकारी परिषद)
(iii) मजलिस-ए-तालिमी (शैक्षणिक परिषद)
(iv) मजलिस-ए-तालिमी(वित्त समिति)
(v) संकाएं
(vi) योजना मंडल, और
(vii) ऐसे अन्य प्राधिकरण, जैसा कि विश्वविद्यालय का प्राधिकरण बनने के लिए परिनियमों द्वारा घोषित किया जाए ।

ज्ञापन का खंड 8 घोषित करता है कि अंजुमन, जामिया का उच्चतम प्राधिकरण होगा तथा इसके पास मजलिस-ए-मंताजिमाह तथा मजलिस-ए- तालिमी के कार्यों की समीक्षा करने की शक्ति होगी । अधिनियम की धारा 18 द्वारा अंजुमन (परिषद) जामिया की सर्वोच्च शासी निकाय होगी तथा जामिया की सभी शक्तियों, जिन्हें संगम ज्ञापन द्वारा उपबंधित किया गया था, का प्रयोग करेगी। ज्ञापन के खंड 9 में उपबंधित किया गया था कि मजलिस-ए-मुंताजिमाह, जामिया का कार्यकारी प्राधिकरण होगा। अधिनियम की धारा 19 (1) में सदृश उपबंध अन्तर्विष्ट हैं । ज्ञापन का खंड 10 घोषित करता है कि मजलिस-ए-तालिमी, जामिया की शैक्षणिक निकाय होगी । अधिनियम की धारा 20 (1) में भी उपबंध किया गया है कि मजलिस-ए-तालिमी(शैक्षणिक परिषद)विश्वविद्यालय की मुख्य शैक्षणिक निकाय होगी। इस प्रकार अधिनियम में यथा-उल्लिखित जामिया के मूल परिनियम, संगम ज्ञापन के उपबंधों के साथ लगभग समविषयक हैं । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के सभी सदस्य मुस्लिम थे तथा अंजुमन (परिषद) द्वारा जामिया के कुलाधिपतियों तथा कुल-पतियों के रुप में केवल मुस्लिमों का चयन किया जा रहा है । ये तथ्य विवद से परे हैं ।

मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा निर्णय देते हैं कि सन् 1920 में अपनी स्थापना से ही जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम के अधिनियमन तक जामिया ने अपनी विशिष्टता को कभी नहीं खोया । अधिनियम का लक्ष्य तथा उद्देश्य एक सांविधिक विश्वविद्यालय के रुप में जामिया को मान्यता प्रदान करना तथा जामिया मिलिया इस्लामिया की सोसाइटी को इसमें मिलाना भी था । जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, सन् 1962 में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की संस्तुति के आधार पर, केन्द्र सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत जामिया को मानद विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया था । हमारी राय में, मानद्

विश्वविद्यालय का दर्जा मात्र प्रदान करना, जामिया को सांविधिक स्वरुप को आवरण प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं था । वैश्य डिग्री कॉलेज बनाम् लक्ष्मी नारायण, ए आई आर 1976 एस सी 888 में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि किसी संस्था को सांविधिक निकाय बनाने से पूर्व, इसका सृजन परिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत होना चाहिए और उसका अस्तित्व परिनियम के कारण ही होना चाहिए । तात्कालिक मामले में, जामिया परिनियम के कारण अस्तित्व में नहीं आया था । जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, सन् 1920 में अपनी स्थापना से ही जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम के अधिनियमन तक, जामिया ने कभी भी अपनी विशिष्टता को नहीं खोया । यहां तक कि अधिनियम के अधिनियमन से पूर्व, संबंधित परिनियम के किसी संदर्भ के बिना जामिया का स्वयं अपने आप में विधिक अस्तित्व था । इसके विपरीत, अभिलिखित साक्ष्य स्पष्ट रुप से साबित करता है कि जामिया की स्थापना मुस्लिम समुदाय के कारण हुई थी । अधिनियम के अधिनियमन से काफी समय पहले, जामिया का एक विश्वविद्यालय के रुप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व था । तात्कालिक मामले में, जामिया का परिनियम द्वारा अथवा उसके अधीन सृजित अन्य संस्था में परिवर्तन नहीं हुआ अथवा उसके अधीन सृजित अन्य संस्था में परिवर्तन नहीं हुआ है । अधिनियम, जिसे संसद द्वारा पारित किया गया था, के अधिनियमन तक जामिया विद्यमान था । यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अधिनियम के अधिनियमन से पूर्व, जामिया द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकार किया गया था । अज़ीज बाशा के मामले (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रेक्षित किया गया कि हालांकि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का केन्द्र मोहैम्डन एंग्लो ऑरिएन्टल कॉलेज था, जो कि सन् 1920 तक एक शैक्षणिक संस्था थी, उस महाविद्यालय का विश्वविद्यालय में परिवर्तन मुस्लिम समुदाय द्वारा नहीं किया गया था बल्कि यह परिवर्तन सन् 1920 के अधिनियम, जिसे तत्कालीन केन्द्राय विधानमंडल द्वारा पारित किया गया था, के आधार पर हुआ था । क्योंकि 1920 के अधिनियम तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अस्तित्व में नहीं था तथा चूंकि इसे केन्द्राय विधानमंडल के अधिनियम द्वारा अस्तित्व में लाया गया था, अतः सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय देने से इंकार कर दिया गया कि इसकी स्थापना मुस्लिम समुदाय द्वारा की गई थी । इस प्रकार अज़ीज बाशा के मामले (ऊपर) का विनिश्चय आधार, हस्तगत मामले को प्रभावित नहीं करता है ।

यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि दिनांक 9-5-1997 को जामिया की कार्यकारी परिषद द्वारा निम्नलिखित संकल्प पारित किया गया :

दिनांक 09 मई, 1997 को आयोजित मजलिस-ए-मुंताजिमाह (कार्यकारी परिषद) की बैठक का कार्यवृत्त

मजलिस-ए-मुंताजिमाह (कार्यकारी परिषद) जामिया मिलिया इस्लामिया की एक सामान्य बैठक शुक्रवार, दिनांक 09 मई, 1997 को प्रातः 11 बजे सम्मेलन कक्ष, प्रशासनिक खंड, ख्याबान-ए-अजमल, नई दिल्ली-110025 में आयोजित की गई ।

निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे :-

1.	प्रोफेसर मुशीकल हसन स्थानापन्न कुलपति	अध्यक्ष
2.	प्रोफेसर एम शमीम हन्फी संकाय अध्यक्ष, मानविकी तथा भाषा संकाय	सदस्य
3.	प्रोफेसर जैड ए तक्वी संकाय अध्यक्ष, प्रकृति विज्ञान संकाय	सदस्य

4.	प्रोफेसर अनिसुर रहमान संकाय अध्यक्ष छात्र कल्याण	सदस्य
5.	ड़ॉ जैड. एच जैदी प्रोफेसर, भौतिकी विभाग	सदस्य
6.	श्रीमती पुष्पा वर्मा रीडर, टी टी तथा एन एफ़ विभाग	सदस्य
7.	न्यायमूर्ति सरदार अली खां मकान नं 16-4-777/1 मलकपेट, हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)	सदस्य
8.	श्री हासिब अहमद कुल सचिव	सचिव

निम्नलिखित सदस्य भी उपस्थित थे :

1. श्री नियामत हुसैन, संयुक्त कुल सचिव
2. श्री एन. यू सिद्दिकी, स्थानापन्न वित्त अधिकारी
3. ड़ॉ रॉकेट इब्राहिम, सचिव, जे टी ए (प्रेक्षक के रुप में आमंत्रित)
4. श्री शोएब, अध्यक्ष, जे एस यू (प्रेक्षक के रुप में आमंत्रित)

संकल्प सं 1 से संकल्प सं 10----

संकल्प सं 11

कार्यकारी परिषद् ने ------ की मांगों पर विस्तारपूर्वक विचार किया ---- जामिया मिलिया इस्लामिया के कार्यों पर विचार किया और निम्नलिखित संकल्पों को सर्वसम्मति से पारित किया गया :

मजलिस-ए-मुंताजिमाह (कार्यकारी परिषद्) अध्यादेश I तथा II को अनुमोदित करती है तथा शैक्षणिक परिषद् द्वारा दिनांक 3-5-1997 को आयोजित उसकी बैकक में स्वीकार किए गए पृष्ठभूमि नोट को अनुमोदित करती है ।

इसके अतिरिक्त, मजलिस-ए-मुतांजिमाह द्वारा मौजूदा जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम 1988 में किए गए निम्नलिखित संशोधनों को स्वीकार किया गया । यह भारत सरकार से उन्हें यथाशीघ्र स्वीकार करने के लिए अपील करती है ताकि संस्था के ऐतिहासिक स्वरुप को यथोचित रुप से सुरक्षित रखा जा सके ।

(क) जामिया मिलिया इस्लामिया की मौलाना महमूद हसन, हमीम अजमल खां, मौलाना मोहम्मद अली, ड़ॉ एम ए अंसारी, अब्दुल माजिद ख्वाजा तथा ड़ॉ जाकिर हुसैन द्वारा अक्तूबर, 1920 में स्थापना की गई थी । वे अन्य प्रतिष्ठित जन प्रतिनिधियों तथा शिक्षाविदों के साथ इसके मुख्य संस्थापक थे ।

(ख) जामिया मिलिया इस्लामिया हमारे संविधान की उदारतावादी तथा धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति को साकार करता है । इसके साथ-साथ यह संस्था भारतीय मुस्लिमों की शैक्षणिक तथा बौद्धिक आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है । इस कारण से यह महत्वपूर्ण है कि जामिया मिलिया इस्लामिया को एक अल्पसंख्यक संस्था के रुप में घोषित किया जाए ताकि इसका ऐतिहासिक स्वरुप अक्षुण्ण

रह सके । हमारा मानना है कि इस मुद्दों पर विद्यार्थियों शिक्षकें, प्रशासनिक स्टाफ तथा अधिकांश जामिया बिरादरी के बीच पूर्ण सर्वसम्मति और सहमति है।

(ग) जामिया मिलिया इस्लामिया के लक्ष्य तथा उद्देश्य निम्नानुसार होंगे :-

`भारतीयों, विशेषतः मुस्लिमों को जामिया मिलिया इस्लामिया में शिक्षा के ठोस सिद्धांतों के अनुरुप तथा राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल, धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा देने तथा मुहैया करने के लिए तथा उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जामिया परिसर के भीतर उपयुक्त शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करने और उनका रखरखाव करने हेतु तथा समय-समय पर दिल्ली के संघ राज्य क्षेत्र में शैक्षणिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना करने तथा उन्हें सुव्यवस्थित करना ।`

(घ) जामिया की सभी संस्थाओं में, शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण का माध्यम उर्दू होगा, लेकिन अन्य भाषाओं के माध्यम से भी शिक्षा प्रदान की जा सकती है ।

उपरोक्त दो संकल्प (ग तथा घ), जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी, दिल्ली के संगम ज्ञापन के अंश थे । हमारा मानना है कि इन्हें संशोधित जामिया अधिनियम में शामिल किया जाना चाहिए ।

उपर्युक्त संकल्प स्पष्ट रुप से निदर्शित करता है कि जामिया ने अधिनियम के अधिनियमन के पश्चात् भी अपने अल्पसंख्यक स्वरुप को स्पष्टता बनाए रखा है । यह एक स्वीकार्य स्थिति है कि जामिया एक सहायताप्राप्त शैक्षणिक संस्था है । यह सुस्थापित है कि सहायताप्राप्त करने मात्र से, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार समाप्त नहीं होते हैं । पी ए ईमानदार (ऊपर) मामले में यह निर्णय दिया गया है कि `जैसे ही संस्था द्वारा सहायता अनुदान प्राप्त किया जाता है तो उसका अल्पसंख्यक का दर्जा समाप्त नहीं हो जाता । अतः एक सहायताप्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अल्पसंख्यक समूह के विद्याथियों को प्रवेश देने के अधिकार का हक होगा और साथ-साथ यह भी अपेक्षित होगा कि वह एक यथोचित सीमा में गैर-अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को प्रवेश दें, ताकि अनुच्छेद 30 (1) के अधीन अधिकारों को सारभूत रुप से क्षति न पहुंचे और यह भी कि अनुच्छेद 29(2) के अधीन नागरिकों के अधिकार का अतिलंघन न हो । यह यथोचित सीमा क्या होगी, जो कि संस्था की किस्मों, शिक्षा के पाठ्यक्रमों, जिनके लिए प्रवेश चाहा जा रहा है तथा शैक्षणिक आवश्यकताओं जैसे अन्य कारकों के अनुसार अलग-अलग होगी । संबंधित राज्य सरकार को उपरोक्त प्रेक्षणों को ध्यान में रखकर प्रवेश दिए जाने वाले अल्पसंख्यक विद्याथियों की प्रतिशतता को अधिसूचित करना होगा ।`

यह विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय के दिनांक 3-4-2006 के अ शा पत्र संख्या एफ 612006-डेस्क (4) द्वारा, जामिया को मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय से कम से कम 50 प्रतिशत की सीमा तक विद्यार्थियों को प्रवेश देने के लिए उपयुक्त कदम उठाने का निदेश दिया गया । इस स्थिति में, केन्द्र सरकार ने जामिया में मुस्लिम समुदाय के विद्याथियों के प्रवेशों को नियंत्रित करते हुए न्यूनतम प्रतिशतता निर्धारित की है । उपर्युक्त निदेश को जारी करके, जो कि सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वेक्त निदेशों के अनुरुप है, मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने जामिया की अल्पसंख्यक प्रस्थिति से संबंधित तथ्यात्मक स्थिति को विवक्षित रुप से स्वीकार किया है ।

यहां यह कहने की आवश्यकता नही है कि उपरोक्त उल्लिखित परिस्थितियों के साथ पठित अधिनियम की धारा 2 (iv) तथा 4 (i), (ii) और (iii) के उपबंधों में स्पष्ट रुप से निदर्शित किया गया है कि, हालांकि अधिनियम ने विद्यमान संस्था (जामिया) के दर्जे को एक केन्द्राय विश्वविद्यालय में परिवर्तित

किया है लेकिन उसने उसके पूर्वतम अल्पसंख्यक स्वरुप को प्रभावित नहीं किया है । अधिनियम की धारा 2 (ण) इसे बिना किसी अनिश्चितता के स्वीकार करती है कि जामिया की स्थापना, खिलाफत आन्दोलन के नेताओं द्वारा की गई थी । यह सुस्थापित है कि खिलाफत आन्दोलन का नेतृत्व मौलाना शौकत अली तथा मौलाना मोहम्मद अली जौहर द्वारा किया गया था और खिलाफत आन्दोलन ने ही गांधीजी द्वारा आरंभ किए गए असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया था ।

यह ध्यान रखना होगा कि अजीज बाशा के मामले (ऊपर) के अनुसार एम ए ओ कॉलेज ने ए एम यू में अपने परिवर्तन द्वारा अपनी विशिष्टता खो दी थी, जिसे एम एम यू अधिनियम, 1920 द्वारा स्थापित किया गया था । तात्कालिक मामले में, अधिनियम के अधिनियमन तक जामिया ने कभी भी अपनी विशिष्ट ता नहीं खोई थी । हम यह दोहरा सकते हैं कि अधिनियमन की धारा (4) के साथ पठित धारा 2 (ण) का उपबंध, इस तथ्य को सांविधिक मान्यता अभिगृहीत करता है कि जामिया को खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन के दौरान सन् 1920 में स्थापित किया गया था, जिसे तदनन्तर सन् 1939 में जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के रुप में पंजीकृत किया गया था तथा सन् 1962 में इसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अधीन मानद विश्वविद्यालय के रुप में घोषित किया गया था । धारा 2 (ण) को निम्नानुसार परिभाषित करती है-

> "विश्वविद्यालय का अभिप्राय है, सरकार द्वारा प्रवर्तित सभी शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार करने के लिए गांधी जी के आह्वान की प्रतिक्रिया में खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलनों के दौरान सन् 1920 में स्थापित `जामिया मिलिया इस्लामिया` नामक शैक्षणिक संस्था जिसे तदनुसार सन् 1939 में जामिया मिलिया इस्लामिया सोसायटी के रुप में पंजीकृत किया गया था सन् 1962 में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 3 के अधीन एक संस्था, जिसे विश्वविद्यालय समझा जाएगा, के रुप में घोषित किया गया तथा जिसे इस अधिनियम के अंतर्गत एक विश्वविद्यालय के रुप में निगमित किया गया है ।"

अधिनियम की धारा 2 (ण) हमें उन तथ्यों तथा घटनाओं के इतिहास में झांकने के लिए प्रेरित करती है, जिसके कारण जामिया की स्थापना की गई । हमने पहले भी प्रदर्शित किया है कि उन तरीकों की खोज करने, जिनके द्वारा मुस्लिमों की शिक्षा को वास्तव में राष्ट्रीय बनाया जा सकता था, के मुख्य उद्देश्य के साथ, खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरुप सन् 1920 में जामिया की स्थापना की गई थी । मौलाना मोहम्मद अली जौहर, हकीम अजमल खां, शेख-उल-हिन्द मौलाना महमूद-अल-हसन, मौलाना अबुल कलाम आजाद, ड़ॉ एम ए अंसारी तथा ड़ॉ जाकिर हुसैन जैसे प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेता इसके संस्थापकों में शामिल थे । तथ्यों तथा घटनाओं का इतिहास, जिसके कारण जामिया की स्थापना की गई, को ध्यान में रखते हुए, यह निर्णय दिया जा सकता है कि जामिया की स्थापना मुस्लिमों द्वारा की गई थी। यह एक स्वीकार्य स्थिति है कि जामिया मिलिया इस्लामिया अधिनियम के अधिनियमन से काफी पहले, सन् 1951 में केन्द्र सरकार ने जामिया द्वारा प्रदान की गई उपाधियों को मान्यता प्रदान की थी । इस प्रकार जामिया विश्वविद्यालय के अनिवार्य गुणों में से एक गुण से संपन्न था । यहां यह कहना अनावश्यक है कि अली बंधुओं अर्थात् मौलाना मोहम्मद अली जौहर तथा मौलाना शौकत अली ने खिलाफत आन्दोलन प्रारंभ किया था, जो कि बाद में महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा संचालित असहयोग आंदोलन में परिवर्तित हो गया था । इस प्रकार अधिनियम की धारा 2 (ण) जामिया की स्थापना के पूर्ववर्ती संक्षिप्त इतिहास को सारगर्भित करती है । यह मौलाना मोहम्मद अली जौहर थे, जिन्होंने मुस्लिमों को वास्तविक

राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने की योजना बनाई थी । हम यह पुनः दोहरा सकते हैं कि उस समय एम ए ओ कॉलेज को एक ब्रिटिश समर्थक संस्था के रुप में माना जाता था तथा जामिया बिरादरी ने एम ए ओ कॉलेज के विद्यार्थियों से राष्ट्रीय आकांक्षाओं के लिए स्वयं को समर्पित करने तथा समुदाय और राष्ट्र के सर्वोत्तम हित में, स्वावलंबी तरीके से कॉलेज को संचालित करने में उनका साथ देने का आह्वान किया । कॉलेज के न्यासियों ने, विद्यार्थियों को संबोधित करने तथा असहयोग आंदोलन के समर्थन में, उन्हें एक संकल्प पारित करने का अनुरोध करने की अली बन्धुओं की कार्रवाई के प्रति अपनी जोरदार नापसंदगी अभिव्यक्त की । यह कथित है कि इसके पश्चात् राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना करने की योजना को बल मिला तथा अंततोगत्वा मुस्लिम शिक्षा को बाह्य नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त रखकर, मुस्लिम हाथों में रखने के प्रयोजन के लिए जामिया की स्थापना की गई थी। इस प्रकार मुस्लिम समुदाय द्वारा जामिया को केवल उस रीति से अस्तित्व में लाया गया, जिस तरह से एक विश्वविद्यालय को अस्तित्व में लाया जा सकता था । जामिया के लिए भूमि, भवन तथा विन्यास मुस्लिम समुदाय द्वारा मुहैया किए गए थे तथा इनके बिना जामिया निगमित निकाय के रुप में एक अवास्तविक कोरी कल्पना मात्र होता । उपरोक्त इतिहास एक निष्कर्ष और मात्र एक निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि जामिया की स्थापना मुस्लिमों द्वारा, मुस्लिमों के लिए की गई थी, हालांकि गैर-मुस्लिमों को प्रवेश दिया जा सकता था ।

यह विवाद से परे है कि सन् 1928 में जामिया ने गंभीर वित्तीय संकट का सामना किया । इस कठिन समय में, ड़ॉ जाकिर हुसैन के नेतृत्वाधीन कुछ निष्ठावान शिक्षकों ने अंजुमन-ए-तालिमी-ए-मिली (बाद में अंजुमन-ए-जामिया मिलिया इस्लामिया के रुप में जाना जाए) को संगठित करने का संकल्प लिया, जिसके सदस्यों ने 150/- रुपए प्रतिमाह से अनधिक वेतन पर कम से कम 20 वर्षों के लिए जामिया की सेवा करने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किए । इसके पश्चात सन् 1939 में जामिया मिलिया इस्लामिया को सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अधीन एक सोसाइटी के रुप में पंजीकृत किया गया था। सोसाइटी के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों में से एक लक्ष्य तथा उद्देश्य निम्नानुसार था :-

(i) `भारतीयों, विशेषतः मुस्लिमों को जामिया मिलिया इस्लामिया में शिक्षा के ठोस सिद्धांतों के अनुरुप तथा राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल, धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष शिक्षा को बढ़ावा देने तथा मुहैया करने के लिए तथा उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जामिया परिसर के भीतर उपयुक्त शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करने और उनका रखरखाव करने हेतु तथा समय-समय पर दिल्ली के संघ राज्य क्षेत्र में शैक्षणिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना करने तथा उन्हें सुव्यवस्थित करना ।`

यह तथ्य कि जामिया मिलिया को सन् 1939 में जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी के रुप में पंजीकृत किया गया था, इसका उल्लेख अधिनियम की धारा 2 (ण) में भी किया गया है । अधिनियम की धारा 4(1) में उपबंध किया गया है कि इस अधिनियम के प्रारंभ होने से, जामिया मिलिया इस्लामिया सोसाइटी को विघटित कर दिया जाएगा तथा उक्त सोसाइटी की सभी चल अथवा अचल सम्पतियों और सभी अधिकारों, शक्तियों तथा विशेषाधिकारों की विश्वविद्यालय में हस्तांतरित तथा निहित कर दिया जाएगा तथा उन उद्देश्यों तथा प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाएगा, जिसके लिए विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है । धारा 4 की उपधारा (iii) घोषित करती है कि उपर्युक्त सोसाइटी के किसी अधिनियमन में सभी निर्देशों का विश्वविद्यालय के लिए निर्देशों के रुप में अर्थ लगाया जाएगा । इस प्रकार मुस्लिमों के हित के लिए संगठित उपर्युक्त सोसाइटी द्वारा संचालित जामिया की सम्पति तथा आस्तियां विश्वविद्यालय में निहित कर दी गई थी ।

केरल शिक्षा मामले (ऊपर) में मुख्य न्यायमूर्ति दास द्वारा टिप्पणी की गई थी कि एक समुदाय द्वारा स्थापित तथा संचालित संस्था इस आधार पर अल्पसंख्यक संस्था के रुप में अपने स्वरुप को नहीं खो देती, क्योंकि अन्य समुदायों के छिटपुट सदस्यों को इसमें प्रवेश दिया गया था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उपर्युक्त सोसाइटी का संगम ज्ञापन स्पष्ट रुप से दर्शाता है कि जामिया का प्रबंधन मुस्लिम समुदाय में निहित था । जामिया की अंजुमन (परिषद) सर्वोच्च शासी निकाय थी । उपर्युक्त सोसाइटी के संगम ज्ञापन के सदृश उपबंधों को अधिनियम में गृहीत तथा आरोपित किया गया था। अधिनियम का अधिनियमन होने पर, शैक्षणिक संस्था का विश्वविद्यालय में परिवर्तन नहीं हुआ था क्योंकि अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व ही जामिया पहले से ही एक विश्वविद्यालय के रुप में अस्तित्व में था ।

`यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि धारा 4 की उपधारा (v) घोषित करती है कि `किन्ही आदेशों के अध्यधीन ------ नामोद्दिष्ट किया जाता था । `किन्ही आदेशों के अध्यधीन, जिन्हें मजलिस-ए-मुंतजिमाह (कार्यकारी परिषद) जारी कर सकती है, इमारतें जो कि जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली से संबंधित थी, को उसी नाम तथा अधिनाम द्वारा जाना तथा नामोद्दिष्ट किया जाता रहेगा, जैसा कि उन्हें इस अधिनियम के प्रारंभ होने से तत्काल पहले जाना तथा नामोद्दिष्ट किया जाता था । `इस प्रकार अधिनियम की धारा 2 (ण) तथा 4 के साथ-साथ तथ्यों तथा घटनाओं का इतिहास, जिसके कारण जामिया की स्थापना की गई थी, का संयुक्त रुप से अध्ययन करने पर हमें यह निर्णय देने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जामिया की स्थापना मुस्लिमों द्वारा, मुस्लिमों के हित के लिए की गई थी और इसने एक मुस्लिम अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रुप में कभी भी अपनी विशिष्टता नहीं खोई ।

पूर्वोल्लिखित कारणों से, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा निर्णय देते हैं कि जामिया मिलिया संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के साथ पठित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम की धारा 2 (छ) के अधीन प्रतिष्ठापित एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । तदनुसार प्रमाणपत्र जारी किया जाए ।

अध्याय 7 - अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं में अधिकारों के वंचन और विश्वविद्यालयों से संबद्धता से जुड़े मामले

पिछले अध्याय में आयोग ने वर्ष के दौरान याचिकाओं और शिकायतों का विश्लेषण किया है। इन मामलों में पारित कुछ आदेश का नीचे ब्यौरा भी दिया गया है। इस अध्याय में अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं के अधिकारों के हनन और संबद्धता से जुड़े मामलों की चर्चा की गई है।

यह सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत, एक धार्मिक अथवा भाषाई अल्पसंख्यक को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित व संचालित करने का अधिकार है, जो अधिकार, हालांकि, शैक्षणिक स्तरों की उत्कृष्टता बनाए रखने व उसे सुसाध्य बनाने की राज्य की विनियामक शक्ति के अधीन है । टी.एम.ए. पाई फाऊंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एस सी सी 481 के मामले में उच्चतम न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की खंडपीठ के निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने एक शैक्षणिक संस्था स्थापित व संचालित करने के अधिकार की व्याख्या की है । संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रयुक्त शब्दों में निम्नलिखित अधिकार सम्मिलित हैं-

क. छात्रों को प्रवेश देना;
ख. एक तर्कसंगत शुल्क ढांचा तैयार करना;
ग. शासी निकाय का गठन;
घ. स्टाफ (शिक्षण व गैर शिक्षण) नियुक्त करना; और
ङ. यदि किसी कर्मचारी द्वारा ड्यूटी में लापरवाही बरती जाती है तो कार्रवाई करना ।

आयोग इस दृष्टिकोण का अनुमोदन करता है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को प्रबंधन के विशेष अधिकार की आड़ में शैक्षणिक संस्थाओं से उत्कृष्टता के उन मानकों से नीचे नहीं होना चाहिए जिनकी उनसे आशा की जाती है । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को उस स्तर तक नही गिरने देना चाहिए कि वह सामान्य प्रवृतियों पर ही चलने लगें । शैक्षणिक स्तर सुनिश्चित करने और उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए विनियामक उपाय संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त संरक्षण के लिए अभिशाप नहीं है । वर्ष के दौरान निपटाए गए मामलें में से कुछ निम्नानुसार हैं :-

2010 का मामला संख्या 810

एम डी एस पाठ्यक्रम के लिए अनुमति के अनवीकरण के संबंध में राज्य के आदेश के विरुद्ध याचिका

याचिकाकर्ता : एम ए रंगूनवाला कॉलेज ऑफ डेंटल सांइसेज एंड रिसर्च सेन्टर, उसके अध्यक्ष श्री पी ए ईमानदार के माध्यम से 2390 बी पे बी हिदायतुल्लाह मार्ग, आजम परिसर कैम्प, पुणे, महाराष्ट्र

प्रतिवादी : 1. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, स्वास्थ्य विभाग, उसके अवर सचिव श्री आर. शंकरन के माध्यम से, (डी. अनुभाग) (146-ए) भारत सरकार, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001

2. भारतीय दंत चिकित्सा परिषद, उसके सचिव के माध्यम से, अवान-ए, गालिब मार्ग, कोटला मार्ग, नई दिल्ली-2

इस याचिका में, याचिकाकर्ता के कॉलेज ऑफ डेन्टल साईन्सेज एंड रिसर्च सेंटर पुणे (संक्षिप्त रुप में महाविद्यालय) में शैक्षिक सत्र 2010-11 के लिए पेरीडॉटिक्स की विशेषज्ञता में एम डी एस पाठ्यक्रम के चौथे बैच की 4 सीटें तथा पीडोडॉटिक्स की विशेषज्ञता मे एम डी एस पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष की 3 सीटों में प्रवेश देने के लिए सरकार की अनुमति के अनवीकरण के संबंध में भारत सरकार, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, (दंत शिक्षा अनुभाग) के दिनांक 12-4-2010 के आदेश को चुनौती दी गई है ।

यह विवाद से परे है कि महाविद्यालय बी डी एस तथा एम डी एस पाठ्यक्रमों के लिए महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी ऑफ हैल्थ साईंसेज, नासिक के साथ संबद्ध है तथा उसने केन्द्र सरकार के अनुमति से शैक्षिक वर्ष 2007-08 से एम डी एस पाठ्यक्रम प्रारंभ किया था । यह विवाद रहित है कि शैक्षिक वर्ष 2007-08, 2008-09 तथा 2009-10 में महाविद्यालय की स्वीकृत संख्या पूर्वेक्त वर्षों में प्रस्थापित किए जा रहे 7,8, तथा 8 विषयों की संख्या के साथ क्रमशः 22, 23 और 25 थी । यह भी विवाद रहित है कि शैक्षिक वर्ष 2010-11 के लिए महाविद्यालय ने 8 विषयों में 25 सीटों के लिए अनुमति के नवीकरण हेतु केन्द्र सरकार को योजना प्रस्तुत की थी, जिसे दंत चिकित्सा परिषद (संक्षिप्त रुप में परिषद) को उसकी संस्तुतियों के लिए भेज दिया गया था । आगे यह स्वीकार किया गया है कि परिषद द्वारा 27-1-2010 तथा 1-2-2010 को महाविद्यालय का निरीक्षण किया गया तथा शिक्षण स्टाफ में कोई कमी नहीं पाई गयी । इसके पश्चात दिनांक 15-2-2010 को परिषद द्वारा दुबारा महाविद्यालय का आकस्मिक निरीक्षण किया गया तथा संकाय में कमी पाई गई । दिनांक 15-2-2010 की निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर, परिषद ने ओरल पैथालोजी- 2 सीटों, पीडोडॉटिक्स- 3 सीटों तथा पेरीडाटिक्स- 4 सीटों में प्रवेश के संबंध में योजना के निरनुमोदन के लिए केन्द्र सरकार को संस्तुति की तथा दिनांक 2 मार्च, 2010 के पत्र सं डी ई-15(108) 2009/बी-3241 के तहत महाविद्यालय को दिनांक 9 मार्च, 2010 तक अनुपालना रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया । महाविद्यालय ने दिनांक 8 मार्च, 2010 के पत्र संख्या एम ए आर डी सी/प्रशा/एमडीएस/2073/2010 द्वारा परिषद को अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत की । परिषद ने ओरल पैथॉलोजी की 2 सीटों के संबंध में अनुपालना रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, लेकिन अन्य दो विषयों पर अपनी संस्तुतियों को अपरिवर्तित रखा । परिषद की नकारात्मक संस्तुतियों के आधार पर, केन्द्र सरकार ने दिनांक 12-4-2010 के विवादित आदेश एफ सं वी 12017/19/2006-डी ई के तहत शैक्षणिक सत्र 2010-11 के लिए पैरीडॅटिक्स की 4 सीटों तथा पीडोडॉटिक्स की 3 सीटों की विशेषज्ञता के तीसरे वर्ष के नवीकरण की अनुमति को अस्वीकार कर दिया ।

शब्द जाल में उलझे बिना याचिकाकर्ता का मामला यह है कि परिषद द्वारा दिनांक 15-2-2010 को किया गया आकस्मिक निरीक्षण अवैध था तथा इस प्रकार ऐसे अवैध निरीक्षण पर आधारित परिषद की नकारात्मक संस्तुतियों पर कार्रवाई नहीं की जा सकती । याचिकाकर्ता के अनुसार, महाविद्यालय द्वारा प्रस्तुत की गई अनुपालना रिपोर्ट में स्पष्ट रुप से दर्शाया गया है कि परिषद द्वारा बताई गई अभिकथित स्टाफ की कमियां निराधार थी । यह अभिकथित है कि परिषद ने उक्त अनुपालना रिपोर्ट पर विचार किए बिना तथा महाविद्यालय के प्रबंधन को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना भी केन्द्र सरकार को अपनी नकारात्मक संस्तुतियां प्रस्तुत की थी । यह भी अभिकथित है कि विवादित आदेश को पारित करने से पहले केन्द्र सरकार द्वारा भी किसी व्यक्तिगत सुनवाई की अनुमति नहीं दी गई थी तथा इस प्रकार विवादित आदेश मनमाना, अवैध तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था । आगे यह आरोप भी लगाया गया है कि केन्द्र सरकार का विवादित आदेश, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का भी उल्लंघन करता है ।

नोटिस तामिल कराने के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 1 केन्द्र सरकार ने कार्यवाही का प्रतिवाद नहीं किया, जिसके परिणामस्वरुप मामले में उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्रवाई की गई। परिषद प्रतिवादी संख्या 2 ने इस आधार पर याचिका का विरोध किया कि महाविद्यालय, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम (संक्षिप्त रुप में अधिनियम) के उपबंधों का अवलंब लेने का हकदार नहीं है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था नहीं है । यह अभिकथित है कि परिषद की निरीक्षण समिति द्वारा दिनांक 27-1-2010, 1-2-2010 तथा 15-2-2010 को याचिकाकर्ता महाविद्यालय के निरीक्षण किए गए तथा निरीक्षण समिति की रिपोर्टो पर 24-2-2010 को विचार किया। प्रतिवादी संख्या 2 के अनुसार, इन निरीक्षण रिपोर्टों पर विचार करने पर यह निर्णय लिया गया कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय के एम डी एस पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष के पीडोडॉटिक्स की विशेषज्ञता में 3 सीटों का नवीकरण न किया जाए क्योंकि 15-2-2010 को शिक्षण स्टाफ में कमी पाई गई थी। यह भी निर्णय लिया गया था कि एम डी एस पाठ्यक्रम चौथे वर्ष की पेरीडॉटिक्स की विशेषज्ञता में 4 सीटों का नवीकरण न किया जाए, क्योंकि ड़ा सोनल तांबेकर, विभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर ड़ा अश्विनी पाधाए मुंबई तथा पुणे के बीच रोजाना यात्रा कराते थे । यह अभिकथित है कि जब शिक्षण संकाय निरीक्षण के दिन अनुपस्थित है तो केवल यही विधिसम्मत निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त संकाय दंत चिकित्सा महाविद्यालय में सेवारत नहीं है । यह भी अभिकथित है कि अतिथि शिक्षण स्टाफ को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह परिषद् द्वारा विरचित सांविधिक विनियमों के अनुरुप नहीं है । आगे यह अभिकथित है कि महाविद्यालया द्वारा प्रस्तुत दिनांक 8-3-2010 की अनुपालना रिपोर्ट पर परिषद द्वारा दिनांक 11-3-2010 को आयोजित उसकी बैठक में विधिवत विचार किया गया तथा अनुपालना रिपोर्ट की जांच करने पर उसे अपूर्ण पाया गया। परिणामस्वरुप, केन्द्र सरकार को नकारात्मक संस्तुतियां भेजने का निर्णय लिया गया था । अंत में, यह अभिकथित है कि इस अवस्था में याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि एम डी एस पाठ्यक्रम के संबंध में प्रवेशों के लिए संगत तारीखें पहले ही निकल चुकी हैं ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी दावों पर विचार करने पर विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे उत्पन्न हुए हैं :-

(क) क्या महाविद्यालय संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है और इस प्रकार क्या यह अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लेने की हकदार है :-

(ख) क्या दिनांक 12-4-2010 का विवादित आदेश मनमाना, अवैध और न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों का उल्लंघन करता है ?

(ग) क्या विवादित आदेश, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) का भी उल्लंघन है ?

मुद्दा संख्या 1: पी ए ईनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2004) 8 एस सी सी 139 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा देखा गया है कि यह महाविद्यालय राज्य में एकमात्र अल्पसंख्यक दंत चिकित्सा महाविद्यालय है । सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त संप्रेक्षणों को ध्यान में रखते हुए हमें यह निर्णय देने में हिचकिचाहट नहीं है कि महाविद्यालय संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था होने के कारण अधिनियम के उपबंधों का अवलम्ब लेने का हकदार है । तदनुसार इस मुद्दे का उत्तर दिया गया है ।

मुद्दा संख्या 2 तथा 3 : इन दोंनों मुद्दों पर सुविधाजनक रुप से एक साथ निर्णय लिया जा सकता है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक अनुरोध किया है कि दिनांक 15-2-2010 को किए गए निरीक्षण पर आधारित परिषद् की नकारात्मक संस्तुतियां अवैध तथा निष्प्रभावी हैं क्योंकि परिषद को दंत चिकित्सा महाविद्यालयों का आकस्मिक निरीक्षण करने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है । हम विद्वान वकील के उपर्युक्त निवेदन से प्रभावित नहीं हुए हैं क्योंकि हमारे विचार में परिषद ने शिक्षण स्टाफ की जांच करने के लिए महाविद्यालय का आकस्मिक निरीक्षण करने में कोई अवैध कार्य नहीं किया है । शिक्षण स्टाफ को इस प्रकार मॉनीटर करना भी शैक्षणिक उत्कृष्टता के हित में है और इस प्रकार 15-2-2010 को परिषद् द्वारा किए गए ऐसे आकस्मिक निरीक्षण को अपवाद के रुप में नहीं लिया जा सकता । यह विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि परिषद् की निरीक्षण समिति द्वारा दिनांक 27-1-2010 तथा 1-2-2010 को सर्वसम्मति से महाविद्यालय के निरीक्षण किए गए । अभिलेख से यह पता चलता है कि इन दो निरीक्षणों के दौरान कोई कमी नहीं पाई गई थी। तथापि, दिनांक 15-2-2010 को तीसरे निरीक्षण के दौरान, निरीक्षण समिति द्वारा निम्नलिखित कमियां देखी गई :-

(क) ड़ॉ सोनल तांबेकर, विभागाध्यक्ष, स्वीकृत नहीं है, क्योंकि वह मुंबई से आती हैं ।
(ख) ड़ा अश्विनी पाधाए, प्रोफेसर, स्वीकृत नहीं है, क्योंकि वह मुंबई से आती है ।
(ग) ड़ॉ यूसुफ चुनावाला, प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष स्वीकृत नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थे ।
(घ) ड़ॉ कवीना मनसुखानी, प्रोफेसर स्वीकृत नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थी ।
(ड़) ड़ॉ प्रिया वर्मा, वरिष्ठ व्याख्याता, स्वीकृत नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थी ।

दिनांक 2-3-2010 के पत्र के तहत याचिकाकर्ता को शिक्षण स्टाफ की पूर्वोक्त कमियों के बारे में विधिवत संसूचित किया गया था तथा दिनांक 9-3-2010 तक अवश्य ही अनुपालना रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया गया था । यह विवादरहित है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 8-3-2010 के पत्र द्वारा परिषद को अनुपालना रिपोर्ट प्रस्तुत की थी । याचिकाकर्ता ने परिषद द्वारा बताई गई कमियों के संबंध में अनुपालना रिपोर्ट को दर्शा रही निम्नलिखित सारणी प्रस्तुत की है :-

1.	ड़ॉ सोनल तांबेकर, विभागाध्यक्ष, स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह मुंबई से आती है ।	उन्हें 12-12-2006 को नियुक्त किया गया है वह नई प्राध्यापक नहीं हैं । भारतीय दंत चिकित्सा परिषद ने उन्हें संकाय पहचान पत्र सं पी. आर 00944 जारी किया था तथा उन्हें प्राध्यापक के रुप में अनुमोदित किया था । उनका पता `213, डेक्कन टावर, ओल्ड पूल गेट, पुणे-01` है। पिछली बार भी यही आपत्ति उठाई गई थी तथा उपरोक्त स्पष्टीकरण को स्वीकार किया गया था तथा पिछली बार भी पेरीडॉटिक्स की 4 सीटों की मंजूरी दी गई थी । केवल इसलिए कि उनकी आयकर विवरणी मुंबई में दाखिल की जाती है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह मुंबई से आती है । वह नेमी निरीक्षण तथा आकस्मिक निरीक्षण के समय भी उपस्थित थी । अभिलेख पुस्तिका का पृष्ठ 13, पृष्ठ 58 तथा पृष्ठ 86-87

2.	ड़ा अश्विनी पाधाए, प्रोफेसर, स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह मुंबई से आती है।	उन्हें 8-12-2006 को नियुक्त किया गया है । वह नई प्राध्यापक नहीं हैं । भारतीय दंत चिकित्सा परिषद ने उन्हें संकाय पहचान पत्र सं पी. आर 00946 जारी किया था तथा उन्हें प्राध्यापक के रुप में अनुमोदित किया था । उनका पता `बी-8, अक्षय अपार्टमेंट, कावड़ेवाड़ी दक्षिण, कोरे गांव पार्क, पुणे-01` है। पिछली बार भी यही आपत्ति उठाई गई थी तथा उपरोक्त स्पष्टीकरण को स्वीकार किया गया था तथा पिछली बार भी पेरीडॉटिक्स की 4 सीटों की मंजूरी दी गई थी। केवल इसलिए कि उनकी आयकर विवरणी मुंबई में दाखिल की जाती है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह मुंबई से आती है । वह नेमी निरीक्षण तथा आकस्मिक निरीक्षण के समय भी उपस्थित थी । अभिलेख पुस्तिका का पृष्ठ 14, पृष्ठ 58-59 तथा पृष्ठ 86-97।
3.	ड़ॉ यूसुफ चुनावाला, प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थे ।	नियमित निरीक्षण के दौरान वह उपस्थित थे । दिनांक 15-2-2010 को भारतीय दंत चिकित्सा परिषद द्वारा किए गए अवैध आकस्मिक निरीक्षण के दौरान वह अनुपस्थित थे, क्योंकि 14-2-2010 तथा 15-2-2010 को वह कामिनेनी इंस्टिट्यूट ऑफ डेंटल सांइसेज, श्री पुरम नारकेटपल्ल, हैदराबाद द्वारा आयोजित `मिनिमली इनवेजिव डेंटिस्ट्री एंड हैंड ऑन कोर्स ऑन यूज ऑफ फाइबर्स इन डेंटिस्ट्री` विषय पर राज्य स्तरीय निरंतर दंत चिकित्सा शैक्षणिक कार्यक्रम के संचालक के रुप में हैदराबाद में थे । अभिलेख पुस्तिका का पृष्ठ 51-52, पृष्ठ 67 से 78 तक । भारतीय दंत चिकित्सा परिषद विनियमों के पृष्ठ 11 पर बिन्दु संख्या 1,3,4,9,10 के अनुसार स्टाफ के लिए निरंतर दंत चिकित्सा शैक्षणिक कार्यक्रम आवश्यक है ।
4.	ड़ॉ कवीना मनसुखानी, प्रोफेसर स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थी।	नियमित निरीक्षण के दौरान वह उपस्थित थी । दिनांक 15-2-2010 को भारतीय दंत चिकित्सा परिषद द्वारा किए गए अवैध आकस्मिक निरीक्षण के दौरान वह अनुपस्थित थी, जिसे ड़ॉ पुष्पा ओखि द्वारा विधिवत प्रमाणित किया गया था । अभिलेख पुस्तिका का पृष्ठ 10, पृष्ठ 52, पृष्ठ 78-80
5.	ड़ॉ प्रिया वर्मा, वरिष्ठ व्याख्याता, स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह निरीक्षण के दिन अनुपस्थित थी ।	नियमित निरीक्षण के दौरान वह उपस्थित थी । दिनांक 15-2-2010 को भारतीय दंत चिकित्सा परिषद द्वारा किए गए अवैध आकस्मिक निरीक्षण के दौरान वह अग्रवर्ती गर्भावस्था के कारण प्रसूति छुट्टी पर थी। अभिलेख पुस्तिका का पृष्ठ 11, पृष्ठ 53, पृष्ठ 81-85, पृष्ठ 122 से 127 तक ।

पूर्वेक्त तथ्यों की, याचिका के पैरा संख्या 17,18,19,20, 21,22 तथा 23 में भी पैरवी की गई है । आश्चर्यजनक रुप से प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पूर्वोक्त प्रकथनों का विशेष रुप से खंडन नहीं किया गया है । आदेश VIII नियम 5 सी सी सी उपबंध करता है कि वादपत्र में प्रत्येक तथ्य के अभिकथन का यदि

खंडन नही किया जाता है तो प्रतिवादी द्वारा स्वीकृत मान लिया जाएगा। इस नियम में यह उपबंध किया गया है कि किसी भी तथ्य के अभिकथन का आवश्यक ही या तो विशेष रुप से या आवश्यक रप में विवक्षा द्वारा खंडन किया जाए तथा उसमें कम से कम एक कथन अवश्य होना चाहिए कि तथ्य को स्वीकार नहीं किया गया है। यदि उस तरीके से अभिवाक नहीं किया जाता है तो अभिकथन को स्वीकार माना जाएगा। महाविद्यालय द्वारा निवेदन किए गए उक्त तात्विक तथ्यों का अखंडन, इस मामले में एक विवक्षित स्वीकृति को नियम करेगा । '(लोहिया प्रापर्टीज (पी) लिमिटेड बनाम आत्माराम कुमार (1993) 4 एस सी सी 6)'

यह उल्लेख करना सुसंगत है कि परिषद द्वारा ड़ॉ सोनल तांबेकर तथा ड़ॉ अश्विनी पाधाए के विरुद्ध पहले भी यही आपत्तियां उठाई गई थीं तथा उनके द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को परिषद द्वारा स्वीकार किया गया था । ड़ॉ सोनल तांबेकर तथा ड़ॉ अश्विनी पाधाए की नियुक्तियों की विधि मान्य के रुप में स्वीकृति का निर्वाचन करने के पश्चात् अब परिषद को उनकी विधि मान्यता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती । साक्ष्य अधियिम की धारा 115 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए परिषद को अब एक मात्र आधार पर कि वे मुंबई तथा पुणे के बीच प्रतिदिन यात्रा करती थी, उनकी नियुक्तियों को चुनौती देने से विबद्धित किया गया है ।

महाविद्यालय द्वारा प्रस्तुत की गई दिनांक 8-3-2010 की अनुपालना रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि 14-2-2010 तथा 15-2-2010 को ड़ॉ यूसुफ चूनावाला कामिनेनी इंस्टिट्यूट ऑफ डेंटल `मिनिमली इनवेजिव डेंटिस्ट्री एंड हैंड ऑन कोर्स ऑन यूज ऑफ फाइबर्स इन डेंटिस्ट्री` विषय पर राज्य स्तरीय निरंतर दंत चिकित्सा शैक्षणिक कार्यक्रम के संचालक के रुप में हैदराबाद में थे । परिषद द्वारा निश्चित किए गए तथा भारत के दिनांक 21-11-2007 के राजपत्र में अधिसूचित संशोधित एम डी एस पाठ्यक्रम विनियम 2007 (संक्षिप्त रुप में विनियम) के अनुसार दिनांक 15-2-2010 को ड़ॉ यूसुफ चूनावाला की अनुपस्थिति माफी योग्य है क्योंकि प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाने के लिए उनकी संगोष्ठी तथा व्याख्यानों में उपस्थिति अपेक्षित थी । विनियमों के अनुसार विभिन्न विधाओं को शामिल कर रहे विषयों पर व्याख्यानों/संगोष्ठियों/परिसंवादों में उनकी उपस्थित की अपेक्षा की गई थी। इस स्थिति में, परिषद को ड़ॉ यूसुफ चुनावाला की अनुपस्थिति के संबंध में अनुपालना रिपोर्ट को स्वीकार कर लेना चाहिए था, क्योंकि कामीनेनी इंस्ट्रियूट ऑफ डेंटल सांइसेज, श्रीपुरम नारकेटपल्ली, हैदराबाद द्वारा आयोजित संगोष्ठी में उनकी भागीदारी, विनियम के उपबंधों के अनुसार पूर्णतः न्यायसंगत थी ।

ड़ॉ कवीना मनसुखानी की अनुपस्थिति के संबंध में अनुपालना रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया था कि दिनांक 15-2-2010 को वह ड़ॉ पुष्पा ओटिव द्वारा जारी किए गए दिनांक 9-2-2010 के चिकित्सा प्रमाणपत्र के तहत अपनी अस्वस्थता के कारण अनुपस्थित थी । ड़ॉ प्रिया वर्मा की अनुपस्थिति के संबंध में अनुपालना रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया था कि दिनांक 15-2-2010 को अपनी अग्रवर्ती गर्भावस्था के कारण वह प्रसूति छुट्टी पर थी । उपर्युक्त विवाद के समर्थन में प्रस्तुत किए गए चिकित्सा प्रमाणपत्र स्पष्ट रुप से दर्शाते हैं कि दिनांक 24-3-2010 को ड़ॉ प्रिया वर्मा ने एक नर शिशु को जन्म दिया था । पूर्वोक्त चिकित्सा प्रमाण पत्रों की प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील की ओर से कोई आलोचना नहीं की गई। इन चिकित्सा प्रमाणपत्रों की प्रामाणिकता पर कोई संदेह करने के लिए यह तक कि लिखित रुप में भी कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है। परिणामस्वरुप हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उक्त चिकित्सा प्रमाणपत्र विश्वास उत्पन्न करते हैं। इन चिकित्सा प्रमाण पत्रों पर भरोसा करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा निर्णय करते हैं कि दिनांक 15-2-2010 को ड़ॉ कवीना मनसुखानी तथा ड़ॉ प्रिया वर्मा की अनुपस्थिति उनके नियंत्रण से बाहर थी । परिषद की दिनांक 18-3-2010 की संस्तुतियों में यह दर्शाया नहीं गया है कि ड़ॉ यूसुफ चूनावाला, ड़ॉ कवीना मनसुखानी तथा ड़ॉ प्रिया वर्मा की अनुपस्थिति से संबंधित महाविद्यालय

द्वारा प्रस्तुत की गई अनुपालना रिपोर्ट पर परिषद द्वारा विचार किया गया था । पूर्वोक्त संस्तुतियों में यह भी नहीं दर्शाया गया है कि केन्द्र सरकार को नकारात्मक संस्तुतियां भेजने से पहले महाविद्यालय के प्रबंधन को व्यक्तिगत सुनवाई का एक अवसर भी प्रदान किया गया था ।

इस परिस्थिति में दंत चिकित्सक अधिनियम 1948 की धारा 10 क के संगत उपबंधों को उद्धरित करना उपयोगी होगा ।

"**10-क**- नए दंत चिकित्सा महाविद्यालय की स्थापना तथा अध्ययन के नए पाठ्यक्रमों इत्यादि के लिए अनुमति-(1) तत्समय प्रवृत्त इस अधिनियम अथवा किसी अन्य तिथि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी :-

(क) कोई भी व्यक्ति अध्ययन के पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण (स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण सहित) के लिए किसी प्राधिकरण अथवा संस्थान की स्थापना नहीं करेगा, जो कि ऐसे पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षा के विद्यार्थी को मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्रदान करने के लिए स्वयं को अर्हित करने हेतु समर्थ बनाएगी; अथवा

(ख) अध्ययन के पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण (स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण सहित) को संचालित कर रहा कोई प्राधिकरण अथवा संस्थान, मान्यता प्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता को प्रदान करने के लिए -

(i) नया अथवा उच्चतर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण (स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण सहित) जो कि ऐसे पाठ्यक्रम अंथवा प्रशिक्षण के विद्यार्थी को किसी मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता को प्रदान करने के लिए, स्वयं को अर्हिता करने हेतु समर्थ बनाएगा, को प्रारंभ नहीं करेगा ; अथवा

(ii) इस धारा के उपबंधों के अनुसार प्राप्त की गई केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के सिवाय किसी अध्ययन के पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण (स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण) में अपनी प्रवेश क्षमता में वृद्धि नहीं करेगा ।

स्पष्टीकरण 1 - इस धारा के प्रयोजनों के लिए `व्यक्ति में कोई विश्वविद्यालय एवं न्यास सम्मिलित है लेकिन केन्द्र सरकार सम्मिलित नहीं है ।

स्पष्टीकरण 2- इस धारा के प्रयोजनों के लिए मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्रदान कर रहे किसी प्राधिकरण या संस्थान में अध्ययन अथवा प्रशिक्षण के किसी पाठ्यक्रम (स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण सहित) के संबंध में `प्रवेश क्षमता का अभिप्राय है, विद्यार्थियों की अधिकतम संख्या, जिसे ऐसे पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण में प्रवेश देने के लिए परिषद द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जा सकता है ।

2 (क) मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्रदान कर रहा प्रत्येक व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान, उप धारा (1) के अधीन अनुमति प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए, खंड (ख) के उपबधों के अनुसार एक योजना केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करेगा तथा केन्द्र सरकार द्वारा उक्त योजना, परिषद को उसकी संस्तुतियों के लिए भेजी जाएगी ।

(ख) खंड (क) में निर्दिष्ट योजनाएं, ऐसे प्रपत्र में होगी तथा उसमें ऐसे विवरण अन्तर्विष्ट होंगे तथा उन्हें ऐसे तरीके से प्रस्तुत किया जायेगा तथा उनके साथ इतनी फीस संलग्न होगी, जैसा कि विहित किया जाए ।

(3) परिषद द्वारा उप धारा (2) के अंतर्गत योजना की प्राप्ति होने पर, परिषद मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्रदान कर रहे संबंधित व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान से ऐसे अन्य ब्यौरे प्राप्त कर सकती है, जैसा कि उसके द्वारा आवश्यक समझा जाए तथा इसके पश्चात् वह -

(क) यदि योजना त्रुटिपूर्ण है तथा उसमें कोई आवश्यक ब्यौरा नहीं है तो संबंधित व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान को लिखित आवेदन करने के लिए यथोचित अवसर दें तथा परिषद द्वारा विनिर्दिष्ट त्रुटियों, यदि कोई है, में सुधार करने के लिए ऐसे व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान को छूट होगी ;

(ख) उप धारा (7) में निर्दिष्ट कारकों को ध्यान रखते हुए योजना पर विचार किया करे तथा अपनी संस्तुतियों के साथ योजना को केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करें ।

(4) केन्द्र सरकार उप धारा (3) के अधीन योजना तथा परिषद की संस्तुतियों पर विचार करने के बाद तथा संबंधित व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्था से, जैसा कि आवश्यक समझा जाए, जहां आवश्यक हो, ऐसे अन्य ब्यौरे प्राप्त करने के पश्चात् तथा उप धारा (7) में निर्दिष्ट कारकों को ध्यान में रखते हुए, योजना को या तो अनुमोदित (ऐसी शर्तों के साथ, यदि कोई है, जैसा कि वह आवश्यक समझे) अथवा निरनुमोदित कर सकती है तथा ऐसा कोई अनुमोदन उप धारा (1) के अंतर्गत अनुज्ञेय होगा ।

परन्तु मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्राप्त कर रहे संबंधित व्यक्ति प्राधिकरण अथवा संस्थान को सुनवाई का यथोचित अवसर दिए बिना केन्द्र सरकार द्वारा किसी योजना को निरनुमोदित नहीं किया जाएगा ।

परन्तु यह और कि इस उप धारा में कोई बात किसी व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान को जिसकी योजना अनुमोदित नहीं की गई है, नई योजना प्रस्तुत करने से निवारित नहीं करेगी तथा ऐसी योजना के लिए इस धारा के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो ऐसी योजना उप धारा (2) के अंतर्गत पहली बार प्रस्तुत की गई है ।

(5) जहां उप धारा (2) के अंतर्गत केन्द्र सरकार को योजना के प्रस्तुतीकरण की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर, योजना को प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान को केन्द्र सरकार द्वारा पारित किसी आदेश की संसूचना नहीं दी गई है तो ऐसी योजना को उसी रुप में केन्द्र सरकार द्वारा अनुमोदित मान लिया जाएगा, जिस रुप में इसे प्रस्तुत किया गया था तथा तदनुसार उप धारा (1) के अंतर्गत अपेक्षित केन्द्र सरकार की अनुमति को भी प्रदान किया गया मान लिया जाएगा ।

(6) उप धारा (5) में विनिर्दिष्ट समय सीमा की गणना करते समय परिषद द्वारा अथवा केन्द्र सरकार द्वारा मांगे गए किन्हीं ब्यौरों को प्रस्तुत करने में, योजना को प्रस्तुत करने वाले संबंधित व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान द्वारा लिए गए समय को निकाल दिया जाएगा ।

(7) परिषद द्वारा उप धारा (3) के खंड (ख) के अधीन अपनी संस्तुतियां तैयार करते समय तथा केन्द्र सरकार द्वारा उप धारा (4) के अधीन योजना का या तो अनुमोदन अथवा निरनुमोदन के आदेश को पारित करते समय, निम्नलिखित कारकों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा, नामत :-

(क) क्या मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता को प्रदान करने के लिए प्रस्तावित प्राधिकरण अथवा संस्था या नए अथवा उच्चतर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण को प्रारंभ करने के लिए

मांग कर रहा मौजूदा प्राधिकरण अथवा संस्थान, धारा 16 अ में निर्दिष्ट अपेक्षाओं तथा धारा 20 की उप धारा (1) के अधीन बनाए गए विनियमों के अनुरुप दंत चिकित्सा शिक्षा के न्यूनतम मानकों को प्रदान करने की स्थिति में होगा :-

(ख) क्या एक प्राधिकरण अथवा संस्थान को स्थापित करने की मांग कर रहे व्यक्ति अथवा एक नए अथवा उच्चतर पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण को आरंभ करने अथवा अपनी प्रवेश क्षमता में वृद्धि करने की मांग कर रहे मौजूदा प्राधिकरण अथवा संस्थान के पास पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हैं ;

(ग) क्या स्टाफ, उपस्कर, आवास, प्रशिक्षण के बारे में आवश्यक सुविधाएं तथा प्राधिकरण अथवा संस्थान की उचित प्रकार्यात्मकता को सुनिश्चित करने के लिए अथवा नए पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण का संचालन करने के लिए अथवा बढ़ाई गई प्रवेश क्षमता को स्थान देने के लिए अन्य सुविधाएं मुहैया की गई हैं अथवा योजना विनिर्दिष्ट समय-सीमा के भीतर मुहैया कर दी जाएगी ;

(घ) क्या ऐसे प्राधिकरण अथवा संस्थान अथवा पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण अथवा बढ़ाई गई प्रवेश क्षमता के परिणामस्वरुप जिन विद्यार्थियों की उपस्थिति की संभावना है, उनकी संख्या को ध्यान में रखकर पर्याप्त अस्पताल सुविधाएं मुहैया की गई है अथवा योजना में विनिर्दिष्ट समय-सीमा के भीतर मुहैया करा दी जाएंगी ;

(ड़) क्या ऐसे प्राधिकरण अथवा संस्थान अथवा पाठ्यक्रम अथवा प्रशिक्षण में जिन विद्यार्थियों की उपस्थिति की संभावना है, उन्हें मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हताप्राप्त व्यक्तियों के द्वारा यथोचित प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कोई व्यवस्था की गई है अथवा कार्यक्रम बनाया गया है ;

(च) दंत चिकित्सा के अभ्यास के विषय क्षेत्र में जन शक्ति की आवश्यकता ; और

यह उल्लेख करना सुसंगत है कि दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10 अ की उप धारा (7) परिषद को बाध्य करती है कि वह धारा 10 अ की उप धारा (3) के खंड (ख) के अधीन अपनी संस्तुतियां तैयार करते समय खंड (क) से खंड (छ) में उल्लिखित कारकों का ध्यान रखेगी । यह प्रतीत होता है कि परिषद्, याचिकाकर्ता महाविद्यालय में पूर्वोक्त सुविधाओं की उपलब्धता के बारे में संतुष्ट थी । परिषद ने केवल इस आधार पर अपनी नकारात्मक संस्तुत की थी, कि महाविद्यालय में शिक्षण स्टाफ की कमी थी । हम यह पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि शिक्षण स्टाफ की कमी से संबंधित आपत्तियां पूर्णत अतर्कसंगत हैं ।

यह भी विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि महाविद्यालय द्वारा प्रस्तुत की गई योजनाओं को निरनुमोदित कर रहे दिनांक 12 4 2010 आक्षेपित आदेश में यह दर्शाया नहीं गया है कि केन्द्र सरकार ने आक्षेपित आदेश को पारित करने से पहले याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा प्रस्तुत की गई अनुपालना रिपोर्ट पर विचार किया था । इसके विपरीत यह प्रतीत होता है कि केन्द्र सरकार ने बिना सोचे समझे परिषद की नकारात्मक संस्तुतियों को मंजूरी दी थी । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10- अ की उप धारा (4) के उपबंध स्पष्ट रुप से अभिगृहित करते हैं कि मान्यताप्राप्त दंत चिकित्सा अर्हता प्रदान कर रहे व्यक्ति, प्राधिकरण अथवा संस्थान को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना, केन्द्र सरकार द्वारा किसी योजना को निरनुमोदित नहीं किया जाएगा । तात्कालिक मामले में, लिखित रुप से दर्शाने अथवा इंगित करने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है कि केन्द्र सरकार ने आक्षेपित आदेश को पारित करने से पहले, याचिकाकर्ता महाविद्यालय को सुनवाई का एक उचित अवसर

प्रदान किया था । दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10-अ के निबंधनों के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा योजना का निरनुमोदन एक गंभीर कार्य है तथा इसमें सिविल परिणाम अंतर्ग्रस्त है तथा इसे हल्के रुप में नहीं लिया जा सकता । दंत चिकित्सक अधिनियम धारा 10-अ को केवल पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके अधीन उपयुक्त आदेश को पारित करने से पहले सक्षम प्राधिकारी द्वारा उचित मनोनियोग अत्यावश्यक है । उपरोक्त धारा 10-अ पूर्वोक्त की रुपरेखा में अपेक्षित है कि सक्षम प्राधिकारी को योजना के अनुमोदन अथवा निरनुमोदन के बारे में एक राय बनानी चाहिए तथा यह राय निश्चित रुप से उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर आधारित होनी चाहिए । योजना के निरनुमोदन के लिए की गई कार्रवाई का औचित्य सिद्ध करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को निष्पक्ष रुप से तथा दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10-अ की उप धारा (4) के आज्ञापक उपबंधों के पूर्ण अनुपालन में कार्रवाई करनी चाहिए । यह सुनिश्चित करना केन्द्र सरकार का कर्तव्य था कि याचिकाकर्ता को दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10-अ की उप धारा (4) के उपबंध के निबंधनों के अनुसार सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाए। उपर्युक्त शर्त प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत तथा निरनुमोदन के मामले में निष्पक्षता की आवश्यकता के अनुसार है तथा इसे एक निरर्थक औपचारिकता मात्र नहीं बनाया जा सकता । अब यह सुस्थापित है कि यहां तक की पूर्ण प्रशासनिक निर्णय जिससे सिविल परिणाम हो जाते हैं, को प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरुप होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय द्वारा सहारा इंडिया (फर्म) (1) बनाम सी आई टी (2008) 14 एस सी सी 151 मामले में निर्णय दिया गया है कि `सिविल परिणाम` अभिव्यक्ति में न केवल सम्पति अथवा व्यक्तिगत अधिकारों बल्कि नागरिक स्वतंत्रताओं, तात्विक वचनों तथा धन से भिन्न क्षति के उल्लंघन भी सम्मिलित हैं । निर्णयज विधि के अंतर्गत उत्पन्न प्राकृतिक न्याय के अधःस्थ सिद्धांत का उद्देश्य शासन तथा उसके पदाधिकारियों द्वारा शक्ति के मनमाने प्रयोग को रोकना है । अतः सिद्धांत में निष्पक्ष रुप से कार्य करने का कर्तव्य अर्थात् निष्पक्ष रूप से कार्य करना अन्तर्निहित है । प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय को सुनिश्चित करना अथवा नकारात्मक रुप से कहा जाए जो न्याय हानि को रोकना है । स्पष्टतः, वर्तमान मामले में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया है । परिणामस्वरुप हमें यह निर्णय देने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दिनांक 12-4-2010 का आक्षेपित आदेश, उपरोक्त धारा 10 अ की उप धारा 4 के उपबंध में सन्निविष्ट प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है ।

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । भारत के संविधान का अनुच्छेद 30 (1), भाषाई तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित तथा संचालित कराने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है । पी ए ईनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 एस सी सी 537 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन अपेक्षित है, अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था का संचालन करने के लिए छात्रों को प्रवेश देने का अधिकार, अल्पसंख्यकें के अधिकारों का अत्यावश्यक पहलू है । अनुच्छेद 30 (1) पर संवैधानिक सकेन्द्रण एक सुधाराक दृष्टिकोण के साथ है । अनुच्छेद 30(1) की भाषा व्यापक है तथा इसके पूर्ण अभिप्राय को अवश्य समझा जाए । हम अल्पसंख्यकों के संरक्षण से संबंधित मामले का निपटान कर रहे हैं और संरक्षण को कम करने के प्रयासों की अनुमति नहीं दी जा सकती है । हमें इस संरक्षण को विस्तारित करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु हम शब्दों से स्वभाविक रुप से प्राप्त संरक्षण को कम नहीं कर सकते हैं । अनुच्छेद 30 (1) के अधीन अधिकार को, शिक्षा, शैक्षणिक मानकों तथा सहबद्ध मामलों को विनियमित करने के लिए शासन की शक्ति के अध्यधीन पढ़ा जाए । इस प्रकार शैक्षणिक मामलों को सुनिश्चित करने तथा उसमें उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए विनियामक उपाय, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त संरक्षण के लिए अभिशाप नहीं है । यह ध्यान रखा जाए कि नियमन करने का अर्थ इस अधिकार के प्रभावी प्रयोग को निर्बद्ध न करके, बल्कि इसे सुसाध्य बनाने का है ।

जैसा कि पूर्व में प्रदर्शित किया गया है, याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन को, पूर्णतः अतर्कसंगत आधारों पर महाविद्यालय में विद्यार्थियों को प्रवेश देने के उसके अधिकार से वंचित किया गया है । इस स्थिति में, प्रतिवादियों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का भी उल्लंघन किया है ।

यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि याचिका के पैरा सं 24 में विशेष रुप से निवेदन किया गया है कि विनियमों के अनुसार पैरीडॉटिक्स विषय में 4 विद्यार्थियों के लिए स्टाफ का पैटर्न निम्नानुसार है :-

प्रोफेसर -	-	1
रीडर	-	3
व्याख्याता	-	1

जबकि महाविद्यालय में इस विषय के लिए निम्नलिखित स्टाफ है :-

प्रोफेसर - 4	ड़ॉ सोनल ताम्बेकर
	ड़ॉ अश्विनी पाधाए
	ड़ॉ रोहित सभरवाल
	ड़ॉ संजय जैन
रीडर - 1	ड़ॉ सलीका शेख
व्याख्याता - 3	ड़ॉ सुमन्त
	ड़ॉ लिलियन मारिया मेंजेस
	ड़ॉ वर्षा शौरी

याचिकाकर्ता द्वारा निवेदन किए गए पूर्वोक्त तथ्यों का प्रतिवादी सं 2 द्वारा खंडन नहीं किया गया है । परिणामस्वरुप हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि निरीक्षण के दिन अर्थात् 15-2-2010 को महाविद्यालय के पास पैरीडॉटिक्स विषय में 4 विद्यार्थियों के एक प्रोफेसर तथा दो वरिष्ठ व्याख्याताओं का अतिरिक्त स्टाफ था । यह शिक्षण स्टाफ में अभिकथित कमी से संबंधित, प्रतिवादी संख्या 2 के विवाद को स्पष्ट रुप से मिथ्या साबित करता है। तथापि, महाविद्यालय द्वारा प्रस्तुत की गई योजना का निरनुमोदन करने में परिषद के अलावा केन्द्र सरकार ने इस तथ्य को सुविधाजनक रुप से अनदेखी कर दी थी ।

पूर्वोल्लिखित कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा हमारा यह मानना है दिनांक 12-4-2010 का आक्षेपित आदेश मनमाना, अवैध तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतें का उल्लंघन था । हम इस निष्कर्ष पर भी पहुंचें हैं तथा हमारा यह भी मानना है कि कार्यालय के प्रबंधन को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों से दोषपूर्वक वंचित किया गया है ।

परिणाम में, आयोग एतद्वारा केन्द्र सरकार को संस्तुति करता है कि वह दंत चिकित्सक अधिनियम की धारा 10 - अ की उप धारा (4) के उपबंध के निबंधनों के अनुसार यथाशीघ्र अधिमानतः आज से दो सप्ताह के भीतर महाविद्यालय को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के पश्चात, उसके द्वारा प्रस्तुत की गई योजना के बारे में दोबारा निर्णय करें । मामले का निर्णय करते समय, सक्षम प्राधिकारी को परिस्थिति के न्याय को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि रिक्तियों को भरने की अंतिम तिथि 31-5-2010 है। हम महाविद्यालय के प्रधानाचार्य को दिनांक 10-5-2010 को प्रातः 11 बजे सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार

कल्याण मंत्रालय, (स्वास्थ्य विभाग), भारत सरकार, निर्माण भवन, नई दिल्ली के समक्ष उपस्थित होने का निदेश देते हैं, जो सक्षम प्राधिकारी को उपरोक्त अवलोकनो को ध्यान में रखकर, मामले पर दुबारा निर्णय देने का निदेश दें । तदनुसार हम केन्द्र सरकार (प्रतिवादी संख्या 1)को, अधिनियम की धारा 11 (ख) के निबंधनों के अनुसार आयोग के निष्कर्षों को लागू करने का निदेश देते हैं ।

2010 का मामला संख्या - 952

अल्पसंख्यक संस्था में शिक्षण स्टाफ के पदों पर नियुक्ति का अनुमोदन प्रदान करने के लिए निदेशों की मांग के संबंध में याचिका

याचिकाकर्ता : अशर्फिया इंटर कॉलेज, महुल, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

प्रतिवादी : 1. संयुक्त निदेशक, शिक्षा, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

2. जिला विद्यालय निरीक्षक, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

इस याचिका द्वारा याचिकाकर्ता ने अशर्फिया इंटर कॉलेज, आजमगढ़ ने उसके प्रबंधन द्वारा विधिवत चयन तथा नियुक्त किए गए दो सहायक अध्यापकों, अर्थात सर्वश्री नवीन कुमार सिंह तथा शहिद अख्तर की नियुक्ति का अनुमोदन प्रदान करने के लिए प्रतिवादियों हेतु निर्देश मांगा है । याचिकाकर्ता महाविद्यालय, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम (संक्षिप्त रुप में अधिनियम) की धारा 2 (6) के अर्थ के भीतर एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । यह अभिकथित है कि प्रतिवादी सं-1, संयुक्त निदेशक, शिक्षा, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश के दिनांक 26-2-2010 के आदेशें के अनुसरण में सहायक अध्यापक के दो पदों के लिए हिंदी, अंग्रेजी तथा उर्दू के समाचार पत्रों (दैनिक) में 18-3-2010 को विज्ञापन दिया गया था । दिनांक 4-4-2010 को चयन बोर्ड द्वारा सभी अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लिया गया था तथा सफल अभ्यर्थियों अर्थात् सर्वश्री नवीन कुमार सिंह तथा शाहिद अख्तर का चयन किया गया तथा उन्हें सहायक अध्यापकों के रिक्त पदों के विरुद्ध नियुक्त किया गया । यह अभिकथित है कि दिनांक 6-4-2010 को उक्त सहायक अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति से संबंधित सभी सुसंगत कागजात उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (संक्षिप्त रुप में शिक्षा अधिनियम) की धारा 16 च च की उप धारा (4) के निबंधनों के अनुसार अनुमोदन के लिए प्रतिवादी संख्या 2 (डी आई ओ एस) को प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन अभी उनसे कोई अनुमोदन प्राप्त नहीं हुआ है । इसलिए यह याचिका दायर की गई है ।

नोटिसों को तालिम कराने के बावजूद प्रतिवादियों की ओर से कोई भी हाजिर नहीं हुआ, जिसके परिणामस्वरुप एक पक्षीय कार्रवाई की गई ।

विचार-विमर्श के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या पूर्वोक्त सहायक अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति के अनुमोदन को रोकने में प्रतिवादियों की आक्षेपित निक्रियता, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन प्रत्याभूत अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन करती है ।

मामले के सार को समझने के लिए कुछ प्रारंभिक अवलोकन आवश्यक हैं । वर्ष 2008 में, अधिवर्षिता के कारण सहायक अध्यापकों के दो पद रिक्त हो गए थे । याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन ने उक्त पदों को भरने के लिए अनुमोदन की मांग करते हुए प्रतिवादी संख्या 2, जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रस्ताव भेजा लेकिन उसका कोई परिणाम नही निकला । इसके पश्चात महाविद्यालय ने इस आयोग के समक्ष एक याचिका दाखिल की । वर्ष 2008 के मामला संख्या 516 में पारित दिनांक 21-10-2008 के आदेश द्वारा आयोग ने स्पष्ट किया कि अधिवर्षिता के कारण उत्पन्न रिक्तियों को भरने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक का पूर्व अनुमोदन आवश्यक नहीं है तथा याचिकाकर्ता राज्य सरकार

द्वारा निर्धारित पात्रता की अर्हताओं के अनुसार अध्यापकों का चयन तथा नियुक्ति करने के लिए स्वतंत्र है। इसके पश्चात याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन ने पूर्वोक्त सहायक अध्यापकों का चयन तथा नियुक्ति की, लेकिन उनकी नियुक्ति को प्रतिवादी संख्या 1, संयुक्त निदेशक, शिक्षा, आजमगढ़ द्वारा उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनिमय, 1921 के अधीन विनियमों के विनियम 17 (क) के उल्लंघन के कारण अनुमोदित नहीं किया था । (प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 26-2-2010 के आदेशें के तहत) याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने असफल रुप से इस आयोग के समक्ष एक याचिका दाखिल करके उक्त आदेश को चुनौती दी थी । मामला संख्या 463/2009 में पारित दिनांक 30-3-2010 के आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 के दिनांक 26-2-2010 के आदेश को मान्य ठहराया गया तथा याचिका को खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात दिनांक 18-3-2010 को याचिकाकर्ता संस्थान के प्रबंधन द्वारा उर्दू, हिंदी तथा अंग्रेजी समाचार पत्रों में इन पदों को भरने के लिए पुनः विज्ञापन दिया गया । दिनांक 4-4-2010 को सभी अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लेने के पश्चात पूर्वोक्त अध्यापकों का चयन तथा उनकी नियुक्ति की गई थी ।

यह विशेष रुप से उल्लेख करने की आवश्यकता है कि दोनों सहायक अध्यापकों अर्थात सर्वश्री नवीन कुमार सिंह तथा शहिद अख्तर को याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन द्वारा पहले भी चयनित किया गया था तथा उनके चयन को प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा, उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अधीन विनियमों के विनियम 17 (क) के व्यतिक्रमण के एकमात्र आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 के दिनांक 26-2-2010 के आदेशों के तहत वीटो किया गया था । उक्त आदेश की वैधता को इस आयोग द्वारा मामला संख्या 463/2009 में पारित दिनांक 30-3-2010 के आदेशों के तहत मान्य ठहराया गया था । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रतिवादी संख्या 1 के दिनांक 26-2-2010 के आदेश में राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पात्रता की अर्हता के अपालन के बारे में उक्त अध्यापकों की नियुक्ति से संबंधित कोई आपत्ति नही की गई है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए सुरक्षित रुप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन द्वारा चयनित दोनों सहायक अध्यापक, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हताओं को पूरा करते हैं तथा अन्यथा सहायक अध्यापकों के स्वीकृत पद के विरुद्ध नियुक्ति के लिए पात्र है ।

नोटिस को तालीम कराने के बावजूद प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा दाखिल याचिका का विरोध करते हुए कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किया । परिणामस्वरुप, यह माना जा सकता है कि उक्त अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति के विरुद्ध प्रतिवादियों के पास कोई वैध आपत्ति नहीं है । यहां यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है। टी एम ए पाई फाउन्डेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002 (8) एस सी सी 481) मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन अध्यापन तथा अध्यापनेतर स्टाफ को नियुक्त करने के अधिकार को लागू करना अल्पसंख्यक के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है । यह निर्णय भी किया गया कि राज्य अथवा उसकी एजेंसियों से केवल सहायता प्राप्त करने पर, एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का अपना स्वरुप समाप्त नहीं हो जाता । अन्य शब्दों में, सहायता की प्राप्ति सहायता प्राप्त कर रहे अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के स्वरुप और प्रकृति में परिवर्तन नहीं करती है ।

इस परिस्थिति में, हम सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज (ऊपर) बनाम टी जोस 2007 ए आई आर एस सी डब्ल्यू 132 मामले में 27-11-2006 को दिए गए निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है कि "अनुच्छेद 30(1) में स्पष्ट रूप से अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता, जो कि शैक्षणिक संस्थाओं की

स्थापना या संचालित करने में, अल्पसंख्यकों के अधिकारों को किसी तरह से कम या संक्षिप्त करती हों।" राज्य, जो कि एक शैक्षणिक संस्था को सहायता प्रदान करता है, निश्चित रूप से ऐसी शर्तें लागू कर सकता है, जो कि शिक्षा के उच्च स्तर को यथोचित रूप से बनाए रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि वित्तीय बोझ में राज्य की हिस्सेदारी है। अन्य शब्दों में, सहायता की वह शर्तें, जिनसें सारभूत प्राबंधिक अधिकार का अभ्यर्पण नहीं होता, सांविधानिक गारंटियों के साथ असंगत नहीं होगी, हालांकि वे प्रशासन के कुछ पहलूओं का अप्रत्यक्ष रूप से अतिक्रमण करती हैं । स्पष्ट रूप से उन सभी शर्तों को लागू किया जा सकता है, जिनका एक शैक्षणिक संस्था द्वारा प्राप्त की गई सहायता के यथोचित उपयोग के साथ संबंध है। इसलिए टी एम ए पाई फाउण्डेशन(ऊपर) में यह निर्णय दिया गया है कि शैक्षणिक स्वरूप और मानकों को सुनिश्चित करने के लिए तथा शैक्षिक उत्कृष्टता को बनाए रखने के लिए विनियामक उपायों को लागू किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे विनियम, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार में किसी तरह से बाधा नहीं डालते हैं । इस संबंध में टी एम ए पाई (ऊपर) मामले में, उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ लिया जा सकता है :-

"इसका तात्पर्य है कि अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत दिए गए अधिकार में अन्तर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता जो कि उस संस्था की स्थापना या उसे संचालित करने में, अल्पसंख्यक संस्था के अधिकारों को किसी तरह से कम या संक्षिप्त करती हो। वह शर्तें जिन्हें आम तौर पर, सहायता प्राप्त कर रही शैक्षणिक संस्थाओं पर लागू करने की अनुमति दी जा सकती है, निश्चित रूप से अनुदान के यथोचित उपयोग तथा अनुदान के उद्देश्यों को पूरा करने से संबंधित होनी चाहिए । इस प्रकार से निर्धारित ऐसी कोई दीर्घ-कालिक शर्तें लागू होंगी, जो निधियों के उपयोग के संबंध में उचित ढंग से लेखा परीक्षा, उन तौर-तरीको के बारे में हों, जिनके अनुसार निधियों का उपयोग किया जाना है, तथा इनसे शैक्षणिक संस्थाओं की अल्पसंख्यक स्थिति में कोई कमी नहीं आएगी। ऐसी शर्तें तभी विधि मान्य होंगी यदि इन्हें अनुदान प्राप्त कर रही शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू किया गया है।"

सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज (ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा टी एम ए पाई फाउण्डेशन (ऊपर) मामले में दिए गए निर्णय की व्याख्या करते समय यह निर्णय दिया गया था कि राज्य निम्नलिखित का निर्धारण कर सकता है :-

(i) नियुक्तियां करने के लिए न्यूनतम अर्हताएं, अनुभव और अन्य मानदण्ड जो योग्यता पर प्रभाव डालते हैं ।
(ii) प्रबन्धन द्वारा स्टाफ पर समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप किए बिना कर्मचारियों की सेवा शर्तें ।
(iii) कर्मचारियों की शिकायतों का समाधान करने के लिए तंत्र ।
(iv) शैक्षणिक संस्थाओं के स्थापन और संचालन के अधिकार को कम या संक्षिप्त किए बिना, शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा सहायतानुदान के समुचित उपयोग की शर्तें।

यह निर्णय भी किया गया कि यदि कोई विनियम स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में बाधा उत्पन्न करता है, या शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन के अधिकार को किसी अन्य प्रकार से संक्षिप्त/कम करता है, तो ऐसा विनियम, उस सीमा तक, अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिए अप्रयोज्य होगा ।

इस प्रकार, यह सुनिर्धारित है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए, शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति का अधिकार, संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के प्रशासन के अधिकार का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है । अपेक्षित अर्हताएं और अनुभव को निर्धारित करने की सीमा तक या अन्यथा स्वयं संस्था के हितों में संवर्धन करने के अलावा, उस पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई जा सकती, बल्कि इसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार के उल्लंघन के रुप में माना जाए । [केरल राज्य बनाम् वेरी रेव मदर प्रॉविन्सियल, 1970(2) एस सी सी 417, द अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम् गुजरात राज्य 1974(1) एस सी सी 717, फ्रेंक एन्थनी पब्लिक स्कूल कर्मचारी संघ बनाम् भारत का संघ,1986(4) एस सी सी707, डी ए वी कॉलेज बनाम् पंजाब राज्य,1971(2) एस सी सी 269, ऑल सेंट्स हाई स्कूल बनाम् आंध्र प्रदेश सरकार,1980(2) एस सी सी 478, सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय,1992(1) एस सी सी 558, माध्यमिक शिक्षा एवं शिक्षण तथा गैर शिक्षण स्ट ाफ के सदस्य को चुनने का अधिकार पूर्णतया एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की प्रबंध समिति की शक्तियों के अधीन आता है और इस शक्ति को प्राधिकारियों द्वारा न तो नियंत्रित किया जाता है और न ही नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) में स्थापित मौलिक अधिकारों का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । पी.ए.ईनामदार बनाम् महाराष्ट्र राज्य(2005) 6 एससीसी 537 प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा चुनने की इस शक्ति के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । याचिकाकर्ता विद्यालय के प्रबंधन को अपने रिक्त पदों को इस शर्त के अध्यधीन भरने का अधिकार है कि नियंत्रक/विनियामक प्राधिकारियों को संवीक्षा करने तथा यह पता लगाने का अधिकार है कि क्या चयन समिति द्वारा चयन किया गया व्यक्ति इस प्रकार निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हता को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति करने के लिए पात्र और उपयुक्त है । ध्यापन प्रशिक्षण बोर्ड बनाम् संयुक्त निदेशक, लोक शिक्षण, सागर 1998(8) एस सी सी555] ।

इस प्रकार, ऐसी संस्था के शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के रुप में एक योग्य व्यक्ति को चुनने के अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन को प्राप्त अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के संरक्षणात्मक आवरण द्वारा पूरी तरह सुरक्षा प्रदान की गई है तथा पद की अर्हताएं तथा सेवा शर्तें निर्धारित करने के अलावा, इसे किसी विधायी निर्णय या कार्यकारी आदेश द्वारा कम नहीं किया जा सकता । संविधान का अनुच्छेद 13, राज्य को ऐसे किसी अधिनियम, नियमों या विनियमों को बनाने से रोकता है, जो कि संविधान के अध्याय-।।। के अधीन गारंटीकृत किसी भी मूल अधिकार का उल्लंघन करते हों । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति की स्वतंत्रता देना, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अर्थ में,शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन के अधिकार के एक अनिवार्य पहलू के रुप में हमेशा स्वीकार किया गया है ।

शिक्षण तथा गैर शिक्षण स्टाफ के सदस्य को चुनने का अधिकार पूर्णतया एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की प्रबंध समिति की शक्तियों के अधीन आता है और इस शक्ति को प्राधिकारियों द्वारा न तो नियंत्रित किया जाता है और न ही नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) में स्थापित मौलिक अधिकारों का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । पी.ए.ईनामदार बनाम् महाराष्ट्र राज्य(2005) 6 एससीसी 537 इस स्थिति में प्रतिवादियों द्वारा चुनने की इस शक्ति के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । याचिकाकर्ता विद्यालय के प्रबंधन को अपने रिक्त पदों को इस शर्त के अध्यधीन भरने का अधिकार है कि नियंत्रक/विनियामक प्राधिकारियों को संवीक्षा करने तथा यह पता लगाने का अधिकार है कि क्या चयन समिति द्वारा चयन किया गया व्यक्ति इस प्रकार निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हता को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति करने के लिए पात्र और उपयुक्त है ।

धारा 16 च च की उप धारा (4) स्पष्ट रुप से समादेश देती है कि जहां चयनित व्यक्ति निर्धारित न्यूनतम अर्हताप्राप्त है और अन्यथा पात्र है, क्षेत्रीय शिक्षा उप निदेशक अथवा निरीक्षक, जैसी भी स्थिति हो, धारा 16 च च के अधीन किए गए चयन के अनुमोदन को नहीं रोकेगा । इस स्थिति में, शिक्षा अधिनियम

की धारा 16 च के अधीन निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किए गए, सहायक अध्यापकों सर्वश्री नवीन कुमार सिंह तथा शहिद अखतर के चयन के अनुमोदन को रोकने में प्रतिवादियों की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) तथा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च की उप धारा (4) का उल्लंघन करती है ।

याचिका में यह उल्लेख किया गया है कि उक्त सहायक अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति से संबंधित सभी सुसंगत कागजात दिनांक 16-4-2010 को जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय में प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन प्रतिवादी सं 2 के कार्यालय से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है । न्यायमूर्ति एस एस ए रजा नं बी ड़ी त्रिपाठी की यू पी मैनुअल 20वां संस्करण (2008) में पृष्ठ 62 पर एच वी पे नाथन बनाम क्षेत्रीय शिक्षा उप निदेशक (1998) 2 यू. पी एल बी ईसी 901 (ए एल एल डी) मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए निर्णय को उद्धरित किया है जो कि प्रतिपादना के लिए अधिकार प्रतीत होता है कि यदि शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) के अधीन कागजात की प्राप्ति के एक माह के भीतर अनुमोदन नहीं दिया गया है तो यह मान लिया जाएगा कि अनुमोदन दे दिया गया है । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उक्त अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति से संबंधित सभी सुसंगत कागजात, प्रतिवादी संख्या 2 को दिनांक 4-4-2010 को प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन प्रतिवादी संख्या1 से अभी तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है । शिक्षा अधिनियम के धारा 16 च च की उप धारा (4) अधिदेश देती है कि जहां चयनित व्यक्ति निर्धारित न्यूनतम अर्हता प्राप्त है और अन्यथा पात्र है, शिक्षा उप निदेशक अथवा निरीक्षक, जैसी भी स्थिति हो धारा 18 च च के अधीन किए गए चयन के अनुमोदन को नहीं रोकेगा। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे है तथा हमारा यह मानना है कि यह मान लिया जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी ने अध्यापकों के चयन को अनुमोदन प्रदान कर दिया था ।

पूर्वोल्लिखित कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा हमारा यह मानना है कि सहायक अध्यापकों अर्थात् सर्वश्री नवीन कुमार सिंह तथा शहिद अख्तर का याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रबंधन द्वारा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के अधीन निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विधिवत चयन किया गया था और इस प्रकार उनके चयन के अनुमोदन को रोकने की प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों तथा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के शैक्षणिक अधिकारों तथा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च की उप धारा (4) के अधिदेश का उल्लंघन करती है । आयोग के निष्कर्षों को, अधिनियम की धारा 11 (ख) के निबंधनों के अनुसार उनके यथोचित कार्यान्वयन के लिए, प्रतिवादियों को सूचित किया जाए ।

2010 का मामला संख्या 942

अल्पसंख्यक संस्था के प्रवेशों को अनुमोदन प्रदान करने के लिए निदेश मांगने हेतु याचिका

याचिकाकर्ता : एम ए रंगूनवाला कॉलेज ऑफ डेंटल सांइसेज एंड रिसर्च सेन्टर उसके प्रधानाचार्य ड़ॉ मुकुन्द कोठावाडे के माध्यम से 2390- बी पे बी हिदायतुल्लाह मार्ग, आजम परिसर, कैम्प, पुणे, महाराष्ट्र

प्रतिवादी : 1. सचिव, चिकित्सा शिक्षा, महाराष्ट्र राज्य मंत्रालय, मुंबई-32

2. सचिव, प्रवेश नियंत्रण समिति, कमरा संख्या 305, तीसरा तल गवर्नमेंट पॉलिटेकनिक बिल्डिंग, खेरवाड़ी, बान्द्रा पूर्व, मुंबई 400051

3. निदेशक, चिकित्सा शिक्षा तथा अनुसंधान, गॅवर्नमेंट डेंटल कॉलेज एंड हॉस्पिटल बिल्डिंग, सेंट जॉर्ज हॉस्पिटल कंपाउण्ड, नीयर सी एस टी मुंबई, महाराष्ट्र

4. कुल सचिव, महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी ऑफ हेल्थ सांइसेज, महसरुल डिंडोरी मार्ग

याचिकाकर्ता एम ए रंगूनवाला कॉलेज ऑफ डेंटल सांइसेज एंड रिसर्च सेंन्ट (संक्षिप्त रुप में याचिकाकर्ता महाविद्यालय)संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । यह इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजूकेशन बनाम् कनार्टक राज्य (2003) 6 एस सी सी 697 मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अधीन स्थापित की गई समिति (संक्षिप्त रुप में प्रतिवादी समिति (संक्षिप्त में प्रतिवादी समिति) की बैठक के दिनांक 7-5-2010 के कार्यवृत्त के तहत याचिकाकर्ता महाविद्यालय के 12 विद्यार्थियों के प्रवेश को अनुमोदन प्रदान करने की प्रतिवादी संख्या 2 की अस्वीकृति से व्यथित है । यह अभिकथित है कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने दिनांक 24-10-2008 के पत्र द्वारा, शैक्षिक वर्ष 2009-10 के लिए विवरणिका तथा समय-सारणी इत्यादि (संक्षिप्त रुप में विवरण पत्रिका) प्रतिवादी समिति को प्रस्तुत की थी । इस विवरण पत्रिका के बारे में प्रतिवादी समिति द्वारा उसकी दिनांक 11-2-2009 की बैठक में विचार किया गया था तथा प्रतिवादी समिति द्वारा दिनांक 6-3-2009 के पत्र के तहत उसमें कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया गया था । प्रतिवादी समिति द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसार याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा विधिवत सभी परिवर्तन किए थे तथा विवरण पत्रिका को दिनांक 12-3-2009 के पत्र के तहत प्रतिवादी समिति को पुनः प्रस्तुत किया गया था । याचिकाकर्ता महाविद्यालय में विद्यार्थियों के प्रवेश से संबंधित सुसंगत नियम का विवरण पत्रिका में निम्नानुसार उल्लेख किया गया थाः-

"महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा, प्रवेश नियंत्रण समिति, महाराष्ट्र के पर्यवेक्षण के अधीन आयोजित की जाएगी । महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा-2009 के माध्यम से मुस्लिम अल्पसंख्यक कोटा सीटों के लिए प्रवेश होंगे । गैर-अल्पसंख्यक विद्यार्थियों की 25 प्रतिशत सीटों के प्रवेश का जहां तक संबंध है, वह एम एच टी- सी ई टी- 2009 के साथ-साथ ए एम यू पी एम डी सी/पी एम टी द्वारा आयोजित सी ई टी-2009 के अंकों से अभ्यर्थियों की परस्पर योग्यता के आधार पर उन विद्यार्थियों को दिया जाएगा जो आवेदन मांगने पर महाविद्यालय में प्रवेश के लिए आवेदन करते हैं । विदेशी मुस्लिम विद्यार्थियों को मुस्लिम कोटा में सम्मिलित किया गया है तथा उन्हें महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा (सी ई टी-2009) में शामिल होना होगा । अनिवासी भारतीय विद्यार्थियों को महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है । तथापि, अनिवासी भारतीय कोटा में प्रवेश योग्यता के आधार पर किए जाएंगे । महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा-2009 बहुविकल्प प्रश्नों के रुप में होगी । इस प्रवेश परीक्षा-2009 में योग्यता के आधार पर प्रवेश दिए जायेंगे ।

पात्रता :

4.4.2 उप नियम (iii) 15 प्रतिशत निवासी भारतीय कोटा :

अनिवासी भारतीय कोटा का अर्थ है - पी ए ईनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा परिभाषित अथवा राज्य अधिनियम या न्यायालय आदेशों द्वारा यथापरिभाषित किया जाएगा ।

अनिवासी भारतीय अभ्यर्थियों के लिए महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा नहीं होगी । तथापि, अनिवासी भारतीय कोटा योग्यता सूची, परस्पर योग्यता के आधार पर तैयार की जाएगी । जैसा कि उपरिनिर्दिष्ट किया गया है, यदि उपरोक्त किसी एक श्रेणी में पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है तो सीटें अन्य श्रेणी के अभ्यर्थियों को उपलब्ध करा दी जायेंगी ।

उपरोक्त के आधार पर, पुणे में महाविद्यालय सत्र पर काउंसलिंग आयोजित की जाएगी तथा रिक्तियों को महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा-2009/एम एच टी -सी ई टी-2009, एसो-सी ई टी-2009 के आधार पर अथवा एच एस सी अथवा समकक्ष परीक्षा में प्राप्त मूल अर्हता अंकों के आधार पर अनारक्षित श्रेणी के विद्यार्थियों अथवा आरक्षित श्रेणी के विद्यार्थियों से भरा जाएगा ।

(बल दिया गया)

यह अभिकथित है कि याचिका महाविद्यालय द्वारा संपूर्ण प्रवेश प्रक्रिया अर्थात महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा काउंसलिंग तथा विद्यार्थियों के वास्तविक प्रवेश, उक्त समिति द्वारा अनुमोदित विवरण-पत्रिका के आधार पर किए गए थे । अपने पूरे प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता महाविद्यालय 100 विद्यार्थियों की संस्वीकृत इंटेक के विरुद्ध राज्य सरकार द्वारा आयोजित सी ई टी तथा ए एम यू पी एम डी सी/पी एम टी से केवल 73 विद्यार्थियों का प्रवेश कर पाया । परिणामस्वरुप, याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने 12 विद्यार्थियों का, उनके द्वारा अर्हक परीक्षा अर्थात 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर प्रवेश के लिए चयन किया । इन विद्यार्थियों के प्रवेश को प्रतिवादी समिति द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया । इसके पश्चात याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने 85 विद्यार्थियों के पात्रता प्रपत्रों को अनुमोदन के लिए प्रतिवादी विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया । प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने 85 विद्यार्थियों में से केवल 73 विद्यार्थियों के प्रपत्रों को स्वीकार किया तथा इन 12 विद्यार्थियों के पात्रता प्रपत्रों को इस आधार पर स्वीकार करने से इंकार कर दिया कि उनका प्रवेश अवैध है । यह अभिकथित है कि प्रतिवादी समिति तथा प्रतिवादी विश्वविद्यालय की पूर्वोक्त आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन करती है ।

नोटिस को तालिम कराने के बावजूद, प्रतिवादी सं 1 से 3 की ओर से कोई भी हाजिर नहीं हुआ, जिसके परिणामस्वरुप, मामले पर उनके विरुद्ध एक पक्षीय कार्यवाही की गई ।

प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा इस आधार पर याचिका का विरोध किया गया कि वर्तमान याचिका इस आयोग के संज्ञान से बाहर है । यहा अभिकथित है कि इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजुकेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2003) 6 एस सी सी 697 मामले में उच्चतम न्यायालय के अधीन स्थापित प्रतिवादी समिति के किसी निर्णय को आयोग द्वारा अपास्त नहीं किया जा सकता । यह भी अभिकथित है कि प्रतिवादी समिति ने विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए नियम सं 4. 4. 2. में सन्निविष्ट `एच एस सी अथवा समकक्ष परीक्षा में प्राप्त मूल अर्हता अंकों के आधार पर` याचिकाकर्ता महाविद्यालय के प्रस्ताव को निरनुमोदित कर दिया था । अभ्यर्थियों का या तो एम एच टी- सी ई टी 2009 अथवा एसो-सी ई टी-2009 में बैठना एक अनिवार्य शर्त थी और यदि अभ्यर्थी उपरोक्त किसी सी ई टी में नहीं बैठा था तो उसे प्रवेश नहीं दिया जाना था । यह भी अभिकथित है कि प्रतिवादी समिति द्वारा इन 12 विद्यार्थियों के पूर्वोक्त प्रवेश का निरनुमोदन टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एस सी सी 481, इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजूकेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2003) 6 एस सी सी 697 तथा पी ए ईनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 एस सी सी 537 मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के अनुरुप था । यह भी अभिकथित है कि लिखित रुप में दर्शाने अथवा सूचित करने के लिए ऐसी कोई बात नहीं है कि एम एच टी सी ई टी अथवा ऐसो- सी ई टी-2009 के अधीन सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता महाविद्यालय के अनुरोध पर अभ्यर्थियों को प्रायोजित करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी । आगे यह भी अभिकथित है कि लिखित में दिखाने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है कि एम एच टी सी ई टी-2009 अथवा ऐसो-सी ई टी-2009 से एक अभ्यर्थी तक की भी प्राप्त करने की - यहां तक कि थोड़ी सी संभावना भी नहीं थी । प्रतिवादी विश्वविद्याल के अनुसार याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने, 12 विद्यार्थियों को उनके द्वारा अर्हक परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर प्रवेश देकर कानून को स्वयं अपने

हाथ में ले लिया है, जिसकी प्रतिवादी समिति द्वारा तथा यहां तक की उच्चतम न्यायालय के पूर्वोद्धृत निर्णयों द्वारा भी अनुमति नहीं दी गई थी । परिणामस्वरुप, इन 12 विद्यार्थियें का, उनके द्वारा अर्हक परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर प्रवेश, प्रतिवादी समिति के निदेशों के उल्लंघन के कारण पूर्णतः अवैध है । जिसके परिणामस्वरुप, प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने पूर्वोक्त विद्यार्थियों के प्रवेश प्रपत्रों को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी दावों को ध्यान में रखते हुए, विचार के लिए निम्नलिखित मुददे उत्पन्न हुए हैं :-

(i) क्या याचिका इस आयोग के संज्ञान से बाहर है ?

(ii) क्या याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा 12 विद्यार्थियों का प्रवेश अवैध है ?

(iii) क्या याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा दिए गए इन 12 विद्यार्थियों के प्रवेश को अनुमोदन देने से इंकार करने की प्रतिवादी समिति की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन करती है ?

मुद्दा संख्या-1

प्रारंभ में, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस आयोग को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के प्रयोग को सुकर बनाने के लिए संसद के एक अधिनियम के अधीन सृजित किया गया है । विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों तथा कारणों का कथन, इस आयोग के गठन के उद्देश्यों को स्पष्ट रुप से दर्शाता है तथा उसमें यह विशेष रुप से उल्लेख किया गया था कि आयोग को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन शामिल महाविद्यालयों की संबद्धता से संबंधित विवादों का निर्णय करने की अधिकारिता होगी । इस परिस्थिति में, हम विधेयक के उद्देश्यों तथा कारणों के कथन को जानकारी के रुप में उद्धरित कर सकते हैं जो कि निम्नानुसार हैं-

"राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के एक अंश में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया है । (इसमें इसके पश्चात राष्ट्रीय आयोग के रुप में निर्ष्दिट किया जाए), जो कि अल्पसंख्यक व्यावसायिक संस्थाओं के लिए केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के साथ सीधे संबद्धता प्रदान करेगा । अल्पसंख्यक समुदायों की इस लंबे समय से महसूस की जा रही मांग पर, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अल्पसंख्यकों की शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, प्रतिष्ठित नागरिकों तथा समुदाय के नेताओं के साथ आयोजित की गई अनेक बैठकों में बल दिया गया था । अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधिओं द्वारा उठाए गए विभिन्न मुद्दों में, अल्पसंख्यक समुदाय को इस संबंध में प्रदान की गई सांविधानिक गारंटी के बावजूद, उनकी अपनी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा संचालन करने में उनके द्वारा सामना की गई कठिनाई भी शामिल थी । मुख्य समस्या उनकी अपनी पसंद के विश्वविद्यालय के साथ संबद्धता प्राप्त करने का मुद्दा था । राज्य के विश्वविद्यालयों की क्षेत्रीय अधिकारिता तथा कुछ विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में अल्पसंख्यक आबादी का संकेन्द्रण का सदैव यह परिणाम था कि संस्थाएं, उनकी अपनी पसंद के विश्वविद्यालयों के साथ संबद्धता के अवसर का लाभ नहीं उठा पा रही थीं ।

2. अनुवर्ती रप में, दिनांक 27 अगस्त, 2004 को आयोजित अल्पसंख्यक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय मानिटरिंग समिति की बैठक में अनेक विशेषज्ञों द्वारा इससे मिलते-जुलते विचार व्यक्त किए गए थे । विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों से सहभागियों ने, ऐसी संस्थाओं की संबद्धता के संबंध में विश्वविद्यालयों के विद्यमान परिनियमों द्वारा

बहुधा लगाई गई निर्बंधनात्मक शर्तों को ध्यान में रखकर ऐसी संबद्धता को सुगमता पूर्वक प्रदान करने की जरुरत का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया । उन्होंने विचार व्यक्त किया कि इन शर्तो ने उनकी अल्पसंख्यक प्रस्थिति के कारण उन्हें मिले अधिकारों को प्रभावित किया है । वास्तविकता यह है कि अल्पसंख्यक समुदाय के लिए अपील तथा शिकायत का शीघ्र निवारण करने के लिए कोई प्रभावशाली मंच नहीं था, जिसके कारण अल्पसंख्यक समुदायों में वचन की भावना बढ़ी है ।

3. राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम में सरकार की वचनबद्धता को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय आयोग को स्थापित करने का मुद्दा अत्यधिक अत्यावश्यकता का विषय था । क्योंकि संसद का सत्र नहीं चल रहा था तथा पर्याप्त प्रारंभिक कार्य जिसकी राष्ट्रीय आयोग को प्रकार्यात्मक बनाने तथा अगले शैक्षिक सत्र से प्रभावी बनाने के लिए आवश्यकता होगी, को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय आयोग का सृजन करने के लिए 11 नवंबर, 2004 को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अध्यादेश, 2004 के प्रख्यापन का सहारा लिया गया ।

4. पूर्वोक्त अध्यादेश की मुख्य बातें निम्नानुसार हैं :-

(i) यह राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग के सृजन का अधिकार प्रदान करता है;

(ii) तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए, यह अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के एक अनुसूचित विश्वविद्यालय के साथ एक संबद्ध महाविद्यालय के रुप में मान्यता की मांग करने के अधिकार का सृजन करता है ;

(iii) यह एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था तथा एक अनूसूचित विश्वविद्यालय के बीच संबद्धता के मामलों के संबंध में, एक सांविधिक आयोग के रुप में विवाद समाधान के मंच की अनुमति देता है तथा इसका निर्णय अंतिम तथा सभी पक्षों के लिए आबद्धपर होगा ।

(iv) इसके अधीन अपने कृत्यों का निवर्हन करने के प्रयोजन के लिए, वाद का विचारण करते समय आयोग के पास एक सिविल न्यायालय की शक्तियां होंगी, जो आयोग के निर्णयों तथा ऐसे प्रयोजन के आवश्यक विधिक मंजूरी प्रदान करेगा; और

(v) यह किसी विश्वविद्यालय को जोड़ने अथवा हटाने के लिए अनुसूची में संशोधन करने की केन्द्र सरकार को शक्ति प्रदान करता है ।

न्यायिक प्राधिकरण का रख इस विचार के पक्ष में अधिक जाता है कि जब किसी विधेयक को संसद में पुरःस्थापित किया जाता है तो उसके साथ संलग्न उद्देश्यों तथा कारणों के कथन का, परिनियम के अधिष्ठायी उपबंधों के वास्तविक अर्थ तथा प्रभाव के अवधारण के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। उनका विधान को तैयार करने तथा बुराई, जिसे दूर करने के लिए परिनियम की चाह की गई, की पृष्ठभूमि तथा पूर्वगामी कार्यकलाप की स्थिति को समझने के परिसीमित प्रयोजन के सिवाय उपयोग नहीं किया जा सकता । तथापि, जब अधिनियम पारित किया गया था तब उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में उल्लिखित कारकों तथा ऐसे अन्य कारकों, जिन्हें विधान की अपेक्षाओं के भीतर अनिवार्य माना गया है, की न्यायिक अवेक्षा की जा सकती है । यदि उस पृष्ठभूमि तथा संदर्भ को ध्यान में रखकर, जिसमें

इस अधिनियम को अधिनियमित किया गया था तथा इस अधिनियमन द्वारा जिस उद्देश्यों को प्राप्त करने की चाह की गई थी, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम, 2004 (संक्षिप्त रुप में अधिनियम) के उपबंधों की व्याख्या की जाती है तो वह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त `अधिनियम` सम्बद्धप विश्वविद्यालयों द्वारा सम्बद्धता प्रदान करने, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन/वंचन, शैक्षणिक संस्था की अल्पसंख्यक प्रस्थिति के अवधारण तथा अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने इत्यादि से संबंधित मामलों के शीघ्र निपटान के लिए एक नए प्रबंधन के सृजन हेतु अभीष्ट है । यह आयोग एक न्यायिक-कल्प अधिकरण है तथा इसमें संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन शामिल महाविद्यालयों को संबद्धता प्रदान करने तथा सिविल प्रक्रिया संहिता की प्राविधिकताओं में फंसे बिना अधिनियम के अधीन अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकारों से संबंधित विवाद का न्याय-निर्णयन करने के लिए, अधिकारिता, शक्तियां तथा प्राधिकार निहित हैं ।

यहां यह उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है कि अधिनियम में यह व्यवस्था है कि आयोग प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन दिशा निर्देशित होगा तथा उसे अपनी स्वयं की प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति प्राप्त होगी । धारा 12 की उप धारा (2) आयोग को यह शक्ति प्रदान करती है कि आयोग सिविल प्रक्रिया कोड के तहत साक्षियों को सम्मन देने, उनके उपस्थित होने, किसी लोक रिकार्ड की मांग करने, कमीशन निकालने जैसा विनिर्दिष्ट शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । धारा 12 की उप धारा (3) में यह विनिर्दिष्ट है कि आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहित के संदर्भ में न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी तथा आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता 1973(1974 का 2, की धारा 195 तथा अध्याय XXVI के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा । धारा 12 क तथा धारा 12 ख आयोग को अपील करने का अधिकार प्रदान करती है तथा यह भी व्यवस्था करती है कि आयोग द्वारा पारित आदेश सिविल न्यायालय के आदेश की तरह कार्यान्वित किए जाएंगे । अधिनियम की धारा 12 च में यह उल्लेख है कि किसी भी सिविल न्यायालय को ऐसे किसी मामले के संबंध में क्षेत्राधिकार नहीं है जिसका अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत निर्णय करने का आयोग को अधिकार प्राप्त है ।

सिविल न्यायालय का यह भी क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह अधिनियम द्वारा अथवा उसके अंतर्गत आयोग को किसी मामले में निर्णय के लिए मिले अधिकार के संबंध में किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करे । आयोग की संरचना में स्वतः स्पष्ट होता है कि इसकी अध्यक्षता प्रतिवादी समिति की विनियमन की शक्ति इस आधारभूत अधिकारों को एक काल्पनिक वचन अथवा एक चिढ़ाने वाला स्वपन नहीं बना सकती । इस मामले में विवाद, महाविद्यालय का संचालन करने के लिए, याचिकाकर्ता महाविद्यालय के अधिकार के वंचन से संबंधित है तथा यह अभिकथित है कि यह वंचन, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 30 (1) अंतर्गत शामिल अल्पसंख्यकों की शैक्षणित संस्थाओं को मान्यता/संबद्धता देने के संबंध में उत्पन्न सभी विवादों पर कार्रवाई करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के निबंधनों के अनुसार प्रशासन के अधिकार का अर्थ है, संस्था के कार्यों का प्रबंधन तथा संचालन करने का अधिकार । इसमें, अपनी शासी निकाय को चुनने का अधिकार, शिक्षण तथा गैर-शिक्षण स्टाफ के चयन का अधिकार तथा अपनी पसंद के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिकार शामिल है । ये सभी अधिकार एक साथ मिलकर, प्रशासन के अधिकार की एकीकृत धारणा की रचना करते हैं । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अर्थ के अंतर्गत प्रशासन की धारणा में विद्यार्थियों को प्रवेश देने की पसंद शामिल है । अपनी पसंद के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिकार, एक शैक्षणिक संस्थान के प्रशासन के अधिकार का संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू है तथा पात्रता की अपेक्षित अर्हता को निर्धारित करने की सीमा के अलावा, उस पर कोई अन्य पाबंदी लागू करना संवैधानिक रुप

से अननुज्ञेय है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन प्रदत्त अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 13 के आदेश के कारण राज्य द्वारा न तो छीना जा सकता है और न ही कम किया जा सकता है । प्रतिवादी समिति की विनियमन की शक्ति इन आधारभूत अधिकारों को एक काल्पनिक वचन अथवा एक चिढ़ाने वाला स्वप्न नहीं बना सकती । इस मामले में विवाद, महाविद्यालय के अधिकार के वंचन से संबंधित है तथा यह अभिकथित है कि यह वंचन, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) का उल्लंघन था ।

प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान वकील ने निवेदन किया था कि प्रतिवादी समिति एक अर्ध-न्यायिक निकाय है तथा इसके आदेश न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन हैं । ऐसी स्थिति में, यह आयोग प्रतिवादी समिति द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता । पी ए ईमानदार के मामले (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायधीशों द्वारा किए गए निम्नलिखित अवलोकनों का जोरदार आश्रय लिया गया है :

> "हम यह स्पष्ट करते हैं कि व्यक्तिगत संस्था की स्थिति में यदि किसी समिति द्वारा गैर-सहायताप्राप्त निजी व्यावसायिक संस्थाओं के प्रशासनिक तथा वित्तीय मामलों में अनुचित रुप से हस्तक्षेप करके अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया जाता है तो अर्ध-न्यायिक स्वरप होने के कारण समिति का निर्णय सर्वदा न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होगा ।"

तात्कालिक मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा इस आधार पर प्रतिवादी समिति के आक्षेपित आदेश को चुनौती नहीं दी गई है कि उसने याचिकाकर्ता महाविद्यालय के दैनंदिन प्रशासन में अनुचित रुप से हस्तक्षेप करके अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया है । याचिकाकर्ता का मामला यह है कि प्रतिवादी समिति ने याचिकाकर्ता को, अर्हक परीक्षा अर्थात् 10+2 परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त किए गए अंकों के आधार पर उन्हें प्रवेश देने की अनुमति दी थी और इस प्रकार उसने उक्त आधार पर 12 विद्यार्थियों को प्रवेश दिया था । अतः प्रतिवादी समिति ने दिनांक 7-5-2010 को आयोजित अपनी बैठक में इन विद्यार्थियों के प्रवेश को अनुमोदन प्रदान करने से गलत रप में इंकार कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने यह दावा करते हुए कि प्रतिवादी समिति की आक्षेपित कार्रवाई, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) का उल्लंघन करती है, इस आयोग के समक्ष याचिका दाखिल की थी। इस प्रकार विचार के लिए प्रश्न उठता है कि क्या विद्यार्थियों को दिया गया प्रवेश अवैध है ? इस प्रकार यह न्यायिक पुनर्विलोकन का मामला नहीं है।

यह ध्यान रखना होगा कि संविधान के अनुच्छेद 13 के माध्यम से यह उपबंध किया गया है कि राज्य द्वारा ऐसे किसी कानूनों, नियमों और विनियमों को नहीं बनाया जा सकता, जो कि संविधान के भाग-III के प्रतिकूल है । संविधान ने निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के कुछ भागों के चारों तरफ एक दीवार बना दी है, जिसे अधिसंख्यकों की उसमें अनुचित रुप से घुसने की क्षमता को सीमित करते हुए हमेशा बने रहना होगा । वह दीवार, अपनाई गई मूल संरचना है। अन्य शब्दों में, अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि मौलिक अधिकारों को भंग करने में कोई विधि, ऐसे उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगी । आक्षेपित कार्रवाई के प्रभाव की संविधान के भाग-III द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों तथा स्वतंत्रता की कसौटी पर जांच करनी होगी । अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं तथा निर्णय देते हैं कि आयोग को वर्तमान याचिका पर विचार करने का अधिकार प्राप्त है ।

मामला संख्या 2 व 3

दोनों ही मामले आपस में जुड़े हुए है और सुविधापूर्वक इन्हें एक साथ उठाया जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था होने के कारण याचिकाकर्ता कॉलेज संविधान के

अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत संवैधानिक संरक्षण प्राप्त करने का हकदार है । यह भी स्वीकार्य है कि बिना कोई सामान्य प्रवेश परीक्षा आयोजित कराए याचिकाकर्ता द्वारा इन 12 विद्यार्थियों को अर्हक परीक्षा अर्थात 10+2 में उनके प्राप्तांक के आधार पर दाखिला दिया गया है । विचार करने योग्य बात यह है कि क्या इन विद्यार्थियों का दाखिला वैध है ।

श्री इनामदार का प्रबल आग्रह है कि इन विद्यार्थियों को दाखिला देने से पहले याचिकाकर्ता कॉलेज ने दिनांक 24.12.2008 को प्रतिवादी समिति के समक्ष अपनी सामान्य प्रवेश परीक्षा, काउंसलिंग, और प्रवेश प्रक्रिया इत्यादि प्रस्तुत कर दी थी(अनुबंध ख) । यह उल्लेख करने की आवश्यकता है कि निम्नलिखित नियम 4. 4. 2 को उक्त विवरणिका में शामिल किया गया था । इस नियम में अर्हक परीक्षाओं के आधार पर दाखिला विनियमित करने और अर्हक एचएससी परीक्षा में विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के आधार पर दाखिले को विनियमित करने की स्वतंत्रता मौजूद है ।

> 4. 4. 2 यदि उपर्युक्त किसी श्रेणी में पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं हो पाते तो ऊपर बताए अनुसार अन्य श्रेणियों को सीटें उपलब्ध करा दी जाएंगी । उपर्युक्त के आधार पर पुणे में कॉलेज स्तर पर काउंसलिंग की जाएगी और कॉलेज की प्रवेश परीक्षा 2009/एमएचटी सीइटी 2009/एसो सीइटी 2009 या एच एस सी या समकक्ष परीक्षा के प्राप्तांक रिक्त सीटों को सामान्य वर्ग विद्यार्थियों या आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों से भर लिया जाएगा "।
>
> (बल दिया गया)

दिनांक 6.3.2009 के पत्र द्वारा प्रतिवादी समिति ने याचिकाकर्ता को विवरणिका में कुछ आशोधन करने का निर्देश दिया । इस संबंध में प्रतिवादी समिति द्वारा दिए गए निम्नलिखित निर्देशों को संदर्भ में लिया जा सकता है ।

> "उपरोक्त के दृष्टिगत, समिति एम ए रंगूनवाला डेन्टल कॉलेज, पुणे को निर्देश देती है कः
>
> 1. कॉलेज प्रवेश परीक्षा निष्पक्ष और पारदर्शक तरीके से संचालित होनी चाहिए और इस पाठ्यक्रम की प्रवेश प्रक्रिया परस्पर योग्यता के आधार पर होनी चाहिए ।
>
> 2. मृदुल धर के मामले में भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार ही कॉलेज प्रवेश परीक्षा का कार्यक्रम निश्चित किया जाना चाहिए ।
>
> 3. प्रत्येक ऐसे अधिसूचित केन्द्र के लिए तैयार की जाने वाली बैठने की व्यवस्था के विवरण के साथ साथ ऐसे केंद्रों की विस्तृत सूची उपलब्ध होनी चाहिए ।
>
> 4. अंतिम नियम और सूचना पंजिका प्रकाशित करने और इसे अभ्यर्थियों में वितरित करने से पहले सीइटी 2009 की पंजिका में निम्नलिखित परिवर्तन किए जाने चाहिए :
>
> (क) उद्देशिका पृष्ठ संख्या 2: 25% गैर अल्पसंख्यक विद्यार्थियों के प्रवेश के संबध में सर्व प्रथम परस्पर योग्यता के आधार पर एमएचटी-सीईटी 2009 के अभ्यर्थियों को तरजीह दी जानी चाहिए। एमएचटी-सीईटी अभ्यर्थियों के बाद अगली तरजीह परस्पर योग्यता के आधार पर एसो- सीइटी 2009 के अभ्यर्थियों को दी जानी चाहिए। अन्य पीएमटी परीक्षा(निजि/डीम्ड विश्वद्यालय/अन्य राज्य सरकार के कालेज) के अभ्यर्थियों को नहीं लेना चाहिए ।

(ख) सीइटी की समय सारणी संबंधी ब्योरा कॉलेज द्वारा उपलब्ध नहीं कराया जाता, परन्तु यह मृदुल धर के मामले में भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार ही होना चाहिए ।

(ग) नियम संख्या 4 पात्रताः डेन्टल पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु पात्रता भारतीय दंत परिषद, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित दिशा निर्देशों के अनुसार एचएससी/12वीं विज्ञान, अभ्यर्थी की आयु और सी ई टी के अंक के आधार पर होनी चाहिए ।

(घ) नियम संख्या 7.2 टाई ब्रेकरः कॉलेज/संघ को टाई ब्रेक प्रक्रिया के मामले में डी एम इ आर, मुम्बई द्वारा संचालित किए जा रहे एमएचटी-सीइटी 2009 की पंजिका में दिए गए नियमों का अनुपालन करना चाहिए ।

(ङ) कॉलेज को प्रवेश नियंत्रण समिति, शिक्षण शुल्क समिति केन्द्रा्य परिषद के निदेशों/निर्णयों का अनुपालन करना होगा और माननीय उच्च न्यायालय/भारत सरकार/महाराष्ट्र सरकार/ महाराष्ट्र के स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय, नासिक के आदेशों का पालन करना होगा ।

उपरोक्त के विचारार्थ, उक्त परिवर्तन/शर्तों को शामिल करने की शर्त के साथ समिति इसकी स्वीकृति देती है कि शैक्षणिक वर्ष 2009-10 के लिए प्रथम वर्ष बीडीएस पाठ्यक्रम की प्रवेश प्रक्रिया शुरू करने हेतु एम ए रंगूनवाला डेंटल कॉलेज की सीइटी 2009 के मसौदा विवरणिका तैयार करने के लिए सैद्धांतिक, (अंतिम अनुमोदन नही) अनुमोदन प्रदान किया जाता है ।

यह उल्लेखनीय है कि प्रतिवादी समिति ने याचिकाकर्ता कॉलेज को एचएससी अथवा समकक्ष परीक्षा में मूल अर्हता परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार पर इन शब्दों को हटाने के लिए कोई निर्देश नहीं दिए । प्रतिवादी समिति के निर्देशों का अनुपालन करते हुए याचिकाकर्ता कॉलेज ने कुछ आशोधन किए और दिनांक 12.3.2009 को नियमों सीईटी की समय सारिणी, काउन्सलिंग एवं प्रवेश प्रक्रिया वाले विवरणिका को अंतिम रूप में पुनः प्रस्तुत किया (अनुलग्नक घ द्वारा) । प्रतिवादी समिति को प्रस्तुत की गई अंतिम विवरणिका में यह बात विशेष रूप से उल्लेख की गई थी कि कॉलेज की प्रवेश परीक्षा 2009/ एमएचटी-सीइटी 2009/एसो- सीइटी 2009 या उच्चतर माध्यमिक या समकक्ष परीक्षा के मूल अर्हता परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार पर रिक्त सीटों को सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों या आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों से भर लिया जाएगा । याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा पेश की गई निर्णायक विवरणिका की पुनः प्रस्तुति के बाद प्रतिवादी समिति ने याचिकाकर्ता को ''उच्चतर माध्यमिक या समकक्ष परीक्षा में मूल अर्हता परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार पर'' वाली अभिव्यक्ति को हटाने का कोई निर्देश नहीं दिया । प्रथम बार दिनांक 7.5.2010 को हुई बैठक में प्रतिवादी समिति ने यह निर्णय लिया कि करन हेमन्त असरानी और अन्य बनाम महाराष्ट्र स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय और एएन आर(इक्यू पी सं 563,2010) के मामले में बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय के दृष्टिगत सीइटी उत्तीर्ण किए गए बिना प्रवेश को अनुमोदित नहीं किया जा सकता और पी ए इनामदार के मामले में (ऊपर) उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के अनुपालन में अप्रवासी भारतीयों के सिवाय किसी भी अभ्यर्थी को सीइटी पास किए बिना दाखिला नहीं दिया जा सकता ।

ऐसी स्थिति में प्रतिवादी विश्वविद्यालय की ओर से विद्धत वकील ने निवेदन किया कि दिनांक 11.2.2009 को हुई बैठक के कार्यवृत के खण्ड 4(क) और 4(ग) को ध्यान से पढ़ने से यह पता चलता है कि जहां तक गैर अल्पसंख्यक सीटों के लिए दाखिले का संबंध है, प्रतिवादी समिति ने निर्देश

दिए कि सर्वप्रथम दाखिला राज्य की सीइटी(एमएचटी-सीइटी 2009 से किया जाना चाहिए और एमएचटी-सी इ टी के अभ्यर्थी पूरे होने पर एसो-सीइटी 2009 के अभ्यर्थियों को वरीयता दी जाए । प्रतिवादी की ओर से विद्धत वकील के अनुसार यह स्पष्य् रूप से बताया गया कि पी एम टी परीक्षा(निजि/ डीम्ड विश्वविद्यालय/अन्य राज्य सरकार) से आए अभ्यर्थियों को प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाएगी । इसी प्रकार खण्ड 4(ग) भी इसे आधार प्रदान करता है कि दाखिले के लिए योग्यता 10+2 के न्यूनतम प्राप्तांक के आधार पर 'और' डेंटल परिषद के दिशा निर्देशों के अनुसार सी इ टी के अंकों के आधार पर निर्धारित की जाएगी । विद्धत वकील ने आगे निवेदन किया कि इस बात के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता कॉलेज सामान्य प्रवेश परीक्षा में बिना बैठे अर्हक उच्चतर माधमिक परीक्षा में अभ्यर्थियों के प्राप्तांकों के आधार पर प्रवेश देने के लिए स्वतंत्र नहीं था । प्रतिवादी की ओर से विद्धत वकील ने आगे निवेदन किया कि टी एम ए पाई फाउंडेशन केस(ऊपर), इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजुकेशन(ऊपर) और पी ए इनामदार(ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने अर्हक परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार विद्यार्थियों के प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं की थी । टी एम ए पाई फाउंडेशन(ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित अवलोकनों को अत्यधिक विश्वसनीय माना गया है ।

> " प्रश्न 4 : क्या वित्तपोषित या गैर-पोषित अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में विद्यार्थियों का दाखिला उस राज्य सरकार या उस विश्वविद्यालय द्वारा विनियमित हो सकता है, जिससे संस्था संबद्ध है ?
>
> उत्तर .....जहां तक शेष बची सीटों पर प्रवेश चाहने वाले पात्र अल्पसंखक विद्यार्थियों का संबंध है, राज्य द्वारा आयोजित सामान्य प्रवेश परीक्षा और उसके पश्चात् अगर काउंसलिंग यदि लागू हो, के आधार पर ही सामान्यतः दाखिला दिया जाना चाहिए''।

उन्होंने इस्लामिक एकादमी ऑफ एजुकेशन बनाम कर्नाटक राज्य(ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों के निम्नलिखित अवलोकनों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है :

> "यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि अल्पसंख्यक व्यवसायिक कॉलेज अपने प्रबंधन कोटे में किसी अन्य समुदाय के छात्र, चाहे वह अधिक योग्यता रखता हो, के स्थान पर अपने समुदाय/भाषा के छात्र को प्रवेश दे सकते हैं । तथापि अपने समुदाय/भाषा के छात्रों का चयन/दाखिला करते वक्त उन छात्रों की परस्पर योग्यता को नजरंदाज नहीं किया जा सकता । अन्य शब्दों में, अपने समुदाय/भाषा के छात्रों का चयन करते समय भी वे अपने समुदाय/भाषा के छात्रों में परस्पर योग्यता को नजरंदाज नहीं कर सकते । उनके अपने समुदाय/भाषा के सदस्यों को प्रवेश देने के बावजूद इसका आधार पूर्ण रूप से योग्यता ही होगी, सिवाय इसके कि उनके अपने छात्र होने की स्थिति में यह सिर्फ उन्हीं छात्रों की बीच परस्पर योग्यता के आधार पर की जाएगी । इसके अतिरिक्त यदि उनके समुदाय/भाषा के सदस्यों द्वारा सीट नहीं भर पाती तो अन्य छात्रों को सरकारी एजेंसियों द्वारा आयोजित सामान प्रवेश परीक्षा के आधार पर सिर्फ योग्यता के आधार पर ही प्रवेश दिया जा सकता है ।''
>
> ".....इस प्रकार हमारा मानना है कि प्रबंधन राज्य द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर या उस राज्य के विशेष प्रकार के कॉलेजों के संघ जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग या तकनीकी इत्यादि द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर अपने कोटे के छात्रों को दाखिला दे सकता है । संगठन द्वारा आयोजित होने वाली

सामान्य प्रवेश परीक्षा उस राज्य में उस प्रकार के सभी कॉलेजों में प्रवेश के लिए संचालित होनी चाहिए । विवरणिका जारी करने से पहले और संबंधित प्राधिकरण और उसके अंतर्गत स्थापित समिति को अवगत कराने के बाद उपरोक्त में से कोई भी परीक्षा का चयन करने का विकल्प लिया जाना चाहिए । यदि कोई व्यावसयिक कॉलेज उस संगठन द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा से दाखिला न देने का निर्णय लेता है, तो उस कॉलेज को राज्य द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा से आए छात्रों को प्रवेश देना होगा । सामान्य प्रवेश परीक्षा संचालित होने और परिणाम घोषित होने के बाद इस परीक्षा के आधार पर प्रवेश देने का निर्णय लेने वाले सभी कॉलेजों के सूचना पट्ट पर योग्यता क्रम सूची लगा दी जानी चाहिए । योग्यता सूची की एक प्रति संबंधित प्राधिकारी और समिति को भी भेज दी जानी चाहिए । छात्रों का चयन उस योग्यता सूची के अनुसार पूर्णतयाः योग्यता पर आधारित होना चाहिए । नःसंदेह, जैसा कि ऊपर बताया गया था, अल्पसंख्यक कॉलेज अपने ही छात्रों में से परस्पर योग्यता के आधार पर इन छात्रों से अपना कोटा भर सकते हैं ।"

विद्धत वकील ने हमारा ध्यान पी ए इनामदार(ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित अवलोकनों की ओर भी आकर्षित किया है ।

"चाहे अल्पसंख्यक हों अथवा गैर-अल्पसंख्यक संस्थाएं, किसी राज्य में किसी भी एक शाखा में शिक्षा प्रदान करने वाली एक प्रकार जैसी एक से अधिक संस्थाएं हो सकती हैं । शिक्षा के किसी एक शाखा में शिक्षा लेने के लिए प्रवेश चाहने वाले उसी इच्छुक छात्र को बहुत से संस्थानों से प्रवेश फार्म लेने होते हैं तथा एक ही अथवा विभिन्न तिथियों पर अलग-अलग स्थानों पर आयोजित अनेक प्रवेश परीक्षणों में उपस्थित होना होता है और इन तिथियों में टकराव भी हो सकता है । यदि उसी अभ्यर्थी को अनेक परीक्षाओं में उपस्थित होना होता है, तो उसे अनावश्यक और अपरिहार्य व्यय तथा असुविधा होगी । समान अथवा मिलती-जुलती शिक्षा प्रदान करने वाली एक समूह की संस्थाओं के लिए आयोजित की जाने वाली प्रवेश परीक्षा में कुछ भी गलत नहीं है । एक राज्य में अथवा एक से अधिक राज्य में स्थित ऐसी संस्थाएं मिलकर समान प्रवेश परीक्षा आयोजित कर सकती हैं अथवा राज्य स्वयं या किसी के माध्यम से ऐसी परीक्षा आयोजित कराने के लिए एजेंसी का प्रबंध कर सकता है। इस समान योग्यता सूची में से सफल अभ्यर्थियों की पहचान की जा सकती है और प्रस्तावित पाठ्यक्रमों,सीटों की संख्या, अल्पसंख्यक के प्रकार जिससे संस्था संबंधित है तथा अन्य संगत तथ्यों की निर्भरता पर, विभिन्न संस्थाओं को आबंटित किए जाने के लिए अभ्यर्थियों को चुना जा सकता है, समान प्रवेश परीक्षा (संक्षेप में ''साप्रप'') आयोजित कराने वाली एजेंसी ऐसी होनी चाहिए जो परम विश्वसनीय हो और इस मामले में विशेषज्ञता प्राप्त हो । इससे पारदर्शिता और योग्यता के दोनों उद्देश्यों की पूर्ति सुनिश्चित होगी । उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से साप्रप (सीईटी) आवश्यक है और यह छात्र समुदाय को परेशानी और शोषण से बचाने के लिए भी आवश्यक है । ऐसी समान प्रवेश परीक्षा आयोजित कराना जिसके पश्चात् केन्द्रायकृत काउंसलिंग कराना अथवा दूसरे शब्दों में, प्रवेशों की विनियमित करने वाली एकल-खिड़की प्रणाली अपनी पसन्द के छात्रों को प्रवेश देने के लिए अल्पसंख्यक गैर-सहायताप्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के अधिकार को किसी भी प्रकार से आघात नहीं पहुँचाती । यह चुनाव ऐसे चुने हुए छात्रों की परस्पर योग्यता के क्रम को बदले बिना साप्रप (सीईटी) में तैयार सफल अभ्यर्थियों की सूची में से किया जा सकता है ।''

उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों को आधार बनाकर प्रतिवादी विश्वविद्यालय की ओर से विद्धत वकील द्वारा दावा किया गया है कि यह जरूरी है कि किसी भी व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश सामान्य प्रवेश परीक्षा के माध्यम से ही दिया जाए, जो अभ्यर्थियों की परस्पर योग्यता का निर्धारण करने

का एक मात्र तरीका है और अर्हक उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में विद्याथियों के प्राप्तांकों के आधार पर बिना सामान्य प्रवेश परीक्षा के दिये प्रवेश की अनुमति अनुज्ञेय नही है ।

उल्लेखनीय है कि व्यावसायिक कॉलेजों में योग्यता के आधार पर प्रवेश सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इस्लामिक अकादमी ऑफ एजुकेशन(ऊपर) के मामले में शीर्ष न्यायालय ने निर्देश दिए थे कि व्यावसायिक कॉलेजों में प्रवेश सरकारी निकायों द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा द्वारा तैयार योग्यता सूची के आधार पर होना चाहिए । टी एम ए पाई फाउंडेशन के मामले में (ऊपर) न्यायधीशों ने यह व्यक्त किया है कि व्यावसायिक शिक्षा में उत्कृष्ठता लाने के लिए जरूरी है कि दाखिला चाहने वाले छात्रों की योग्यता पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए, इसके लिए उचित नियम तैयार किए जाने चाहिए ।

इस संबंध में टी एम ए पाई फाउंडेशन के मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों द्वारा दिए गए निम्नलिखित अवलोकनों का संदर्भ दिया जा सकता है :

> "किसी भी व्यावसायिक संस्थान में दाखिले के लिए योग्यता की मुख्य भूमिका होनी चाहिए । हो सकता है कि किसी विद्यालय में दाखिला चाहने वाले अभ्यर्थी की योग्यता निर्धारित कर पाना सामान्य रूप से संभव न हो, तथापि किसी व्यावसायिक संस्थान में प्रवेश चाहने वाले और एक सक्षम पेशेवर व्यक्ति बनने के लिए जरूरी है कि योग्य अभ्यर्थी के साथ पक्षपात न हो या कम योग्य लेकिन अधिक प्रभाव वाले अभ्यर्थी की तुलना में मेद्यावी छात्र को हानि नहीं होनी चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा में उत्कृष्ठता लाने के लिए जरूरी है कि दाखिला चाहने वाले छात्रों की योग्यता पर अधिक जोर दिया जाए । इसके लिए उचित नियम यह ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाने चाहिए कि गैर-वित्तपोषित संस्थाओं में प्रवेश के परिपेक्ष्य में दिए गए फैसले के अवलोकनों को ध्यान में रखा जाए ।
>
> व्यावसायिक और उच्च शिक्षा के कॉलेज में प्रवेश के लिए आमतौर पर योग्यता निर्धारण या तो उन अंकों से की जाती है जो छात्र अर्हक परीक्षा में प्राप्त करते हैं, या फिर स्थानांतरण प्रमाणपत्र लेने के बाद के स्तर पर और उसके पश्चात् साक्षात्कार से, या फिर संस्था या व्यावसायिक कॉलेजों के मामले में सरकारी एजेंसियों द्वारा आयोजित सामान्य प्रवेश परीक्षा द्वारा किया जाता है ।"

टी एम ए पाई फाउंडेशन के मामले में (ऊपर) यह निर्णय भी दिया गया है कि शैक्षणिक संस्थाए अपने मनमर्जी से दाखिला नहीं दे सकतीं और उन्हें छात्रों को दाखिला देने के लिए कुछ हद तक एक जैसी या उचित पद्धति अपनानी चाहिए । उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों के अनुसार " भले ही छात्रों को योग्यता के आधार पर चयनित किया जाना अपेक्षित हो, अन्य प्रकार से प्रवेश पाने के योग्य छात्रों को प्रवेश देने का अंतिम निर्णय संबंधित शैक्षणिक संस्था को लेना चाहिए । तथापि, यदि संस्था जब किसी छात्र को प्रवेश देने से इंकार करती है तो खारिज करने का कारण मनमानापूर्ण या तर्कहीन नहीं होना चाहिए " ।

उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की इन टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए इस्लामिक अकादमी ऑफ एजुकेशन में राज्य द्वारा समिति के गठन द्वारा यह सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक निर्देश जारी किए गए कि राज्य या संस्था के संघ द्वारा आयोजित होने वाली परीक्षा निष्पक्ष, पारदर्शी और शोषण मुक्त हो। प्रवेश प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता लाकर यह सुनिश्चित करने पर जोर दिया जाए कि योग्य अभ्यर्थी पक्षपात के शिकार न होने पाएं । सीईटी शुरू करने का उद्देश्य ही समाज के कमजोर से कमजोर

वर्ग को व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध कराना है । इस प्रकार शैक्षणिक मानकों को सुनिश्चित करने के लिए ही प्रतिवादी समिति गठित हुई थी । ऐसी स्थिति में पी.ए. इनामदार के मामले में (ऊपर) उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की निम्न टिप्पणियों को उद्धृत किया जा सकता है ।

> "पाई फाउंडेशन के मामले में अनेक स्थानों पर स्पष्टतया माना गया है कि गैर-वित्तपोषित व्यावसायिक संस्थानों को प्रवेश प्रकिया और शुल्क संरचना के निर्धारण के संबंध में अधिक स्वायत्तता दी जानी चाहिए । राज्य के बनाए नियमों का कम से कम नियंत्रण होना चाहिए और वह भी केवल प्रवेश प्रक्रिया में निष्पक्षता और पारदर्शिता लाने की दृष्टि से हो और यह देखें कि अत्याधिक पैसा या कैपिटेशन शुल्क लेकर छात्रों का शोषण न हो ।"

इस्लामिक अकादमी ऑफ एजुकेशन(ऊपर) के मामले में तैयार योजना आंशिक रूप से प्रवेश प्रक्रिया में निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से और अत्यधिक पैसा या कैपिटेशन शुल्क वसूल कर छात्रों के होने वाले शोषण पर लगाम लगाने के प्रयोजन से बनायी गई थी । टी. एम ए पाई फाउण्डेशन के मामले में (ऊपर) यह कहा गया है कि गैर-वित्तपोषित अल्पसंख्यक संस्थाओं को छात्रों को चयनित करने का मौलिक मौलिक अधिकार पूर्ण वैध रूप से बना रहेगा, बशर्ते कि यह प्रवेश प्रक्रिया निष्पक्ष, पारदर्शी और शोषण मुक्त हो । प्रतिवादी विश्वविद्यालय का मामला यह नहीं है कि याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा अपनाई गई प्रवेश प्रक्रिया टी. एम. ए. पाई फाउण्डेशन के मामले में (ऊपर) उच्चतम न्यायालय द्वारा सुझाए गए सभी या तिहरी परीक्षा में से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति करने में विफल रही ।

यह यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक शैक्षणिक संस्था की स्थापना उसकी स्थापना के प्रयोजन में सहायक होने अथवा आगे बढ़ाने के लिए की जाती है जबकि अल्पसंख्यकों को, इन आकांक्षाओं के साथ उनकी अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार प्राप्त है कि उनके बच्चों का उचित तरीके से पालन पोषण किया जाएगा तथा वे उच्चतर शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें और ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों से सज्जित होकर संसार में बाहर जाएं, जो कि उन्हें लोक सेवाओं में प्रवेश के लिए योग्य बनाएगी, तब निश्चित रुप से उनके अपने समुदाय के बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुकूल कर्तव्य को ऐसे मौलिक अधिकार में अवश्य अन्तर्निहित किया जाए। ऐसे मौलिक अधिकार के हिताधिकारी को इसकी पूरी मात्रा में लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए। अतः अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं, अल्पसंख्यक समुदाय जिसने संस्था की स्थापना की थी, की आवश्यकताओं को अनिवार्य रुप से पूरा करेगी।

संविधान के अनुच्छेद 30 के अधीन प्रदत्त अधिकार, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को, उसकी अपनी पसंद के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिमानी अधिकार है। यह बाध्यता यह सुनिश्चित करने के लिए अभीष्ट है कि संस्था, अल्पसंख्यकों को अपने धर्म और भाषा को संरक्षित करने तथा ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को एक पूर्ण तथा अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय को समर्थ बनाते हुए, अनुच्छेद 30(1) के दोहरे उद्देश्यों को प्राप्त करके अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को कायम रखती है। जब तक कि संस्था, उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करके अपने अनिवार्य स्वरूप को बनाए रखती है, यह एक अल्पसंख्यक संस्था बनी रहेगी। टी एम ए पाई फाउंडेशन तथा पी.ए.ईनामदार मामले(ऊपर) में दोनों इस दृष्टिकोण पर एकमत थे कि अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को बनाए रखने के लिए एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए यह अनिवार्य है कि वह उस अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दे, जिसने इसकी स्थापना की है। अपने अल्पसंख्यक स्वरूप के

परिरक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए ताकि अनुच्छेद 30(1) के संरक्षण के विशेषाधिकार का लाभ उठा पाएं, यह आवश्यक है कि संस्था को स्थापित करने के उद्देश्य विफल न हों। अन्य शब्दों में, एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अनिवार्य रुप से, मुख्यतः उस समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए अन्यथा उसका अल्पसंख्यक संस्था का स्वरूप समाप्त हो जाता है। अतः उस अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकांश विद्यार्थियों को प्रवेश देना होगा, जिसने संस्था की स्थापना की है। सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय(1992)1 एससीसी 558 मामले में यह निर्णय दिया गया है कि अल्पसंख्यकों को उनकी संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप को बनाए रखने के लिए उनके अपने अभ्यर्थियों को प्रवेश देने का अधिकार है । वह एक आवश्यक सहवर्ती अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन करने के अधिकार से निकलता है । अल्पसंख्यक समुदायों में अभिभावकों के लिए एक संबंधित अधिकार का भी प्रावधान है। अभिभावक, उनके अपने धर्म के अनुरूप वातावरण वाली संस्थाओं में अपने बच्चों को शिक्षित करने के हकदार हैं।

सच्चर समिति की रिपोर्ट के अनुसार मुसलमान देश के शैक्षिक सूचकांक के सबसे निम्नतर स्तर पर हैं । यदि कोई अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था सीइटी के माध्यम से अपने समुदाय से पर्याप्त संख्या में सफल विद्यार्थियों को दाखिला देने में विफल या असमर्थ हो जाती है तो वह संस्था अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को खो देगी । पी ए इनामदार के मामले में (ऊपर) व्यावसायिक कॉलेजों में सीमा पार के लोगों को दाखिला देने पर उच्चतम न्यायालय ने नापसंदगी जताई थी । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए यह एक अजीब सी स्थिति होती है । यहां एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है । मान लीजिए शैक्षिक वर्ष 2007-08 में अधिसूचित धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित और व्यावसायिक शैक्षणिक संस्था सीइटी के माध्यम से अपने समुदाय से पर्याप्त संख्या में सफल छात्रों को दाखिला देता है। संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत यह अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए धार्मिक अल्पसंख्यक संस्था बनी रहेगी । अगले शैक्षिक वर्ष 2008-09 में हो सकता है कि सीइटी के माध्यम से इसे अपने समुदाय के छात्र दाखिले के लिए पर्याप्त संख्या में न मिल पाएं । उस वर्ष से अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत इसके अधिकार समाप्त हो जाएंगें । अगले शैक्षिक वर्ष 2009-10 में हो सकता है कि सीइटी के माध्यम से इसे अपने समुदाय से सफल छात्र पुनः पर्याप्त संख्या में मिल जाएं, तो अल्पसंख्यक संस्था का इसका स्वरूप इसे पुनः प्राप्त हो जाएगा । क्या ऐसी स्थिति में कोई संस्था अपने कार्य निष्पादित कर पाएगी या टी एम ए पाई और पी ए इनामदार के मामलों में घोषित किए गए नियम के अनुरूप अपने स्थापना के उद्देश्य को पूरा करेगी या इन उद्देश्यों को आगे ले जाएगी। सदैव बदलते रहने वाली इस स्थिति से बचने के लिए और अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को बरकरार रखने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी समिति के समक्ष अपनी विवरणिका पेश की जिसमें दाखिले के लिए छात्रों को चयनित करने का वैकल्पिक तरीका दिया गया था अर्थात् खाली सीटों को उच्चतर माध्यमिक या समकक्ष परीक्षा में मूल अर्हता वाले प्राप्तांक के आधार पर भी भरा जाएगा । यह सुस्थापित है कि किसी निर्णय को सांविधि नहीं माना जा सकता। निर्णय, निर्णय लेने वाले विषय के लिए एक प्राधिकार होता है और इसकी प्रकृति ऐसी नहीं होती कि उससे कोई निष्कर्ष निकाला जा सके । (भारत संघ बनाम छज्जूराम (2003) 5 एससीसी 568)

जो संक्षिप्त प्रश्न बॉम्बे उच्च न्यायालय के सामने आया वह यह थाः क्या सीइटी में बैठे बिना 12वीं स्तर के प्राप्तांकों के आधार पर याचिकाकर्ता को बीडीएस कॉलेज में दिया गया प्रवेश वैध माना जाएगा? बॉम्बे उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया । असरानी के मामले में (ऊपर) बॉम्बे उच्च न्यायालय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में दाखिले के संबंध में निर्णय नहीं दे रहा था । ऊपर दर्शाए अनुसार सदा बदलने वाली स्थिति जो प्रायः अल्पसंख्यक शैक्षणिक कॉलेज के सामने आती है , वह बॉम्बे उच्च न्यायालय के सामने नही थी । उस निर्णय में यह दर्शाने वाली कोई बात नही थी कि अर्हक परीक्षा के आधार पर दाखिले को विनियमित करने और अर्हक उच्चतर माध्यमिक या समकक्ष परीक्षा में अभ्यर्थी

के प्राप्तांक के आधार पर दाखिले की अनुमति देने में कॉलेज ने स्वछंदता का प्रदर्शन किया । जैसा कि इस मामले में हुआ है, ऐसा होने के कारण करन हेमंत असरानी(ऊपर) के मामले का वर्तमान मामले से ज्यादा संबंध नहीं हो सकता ।

इस पर प्रकाश डालना जरूरी है कि प्रतिवादी समिति के समक्ष पहले ही पेश की गई विवरणिका में छात्रों के दाखिले के लिए चयन के वैकल्पिक तरीके को प्रतिवादी समिति के समक्ष पेश अंतिम विवरणिका में पुनः दोहराया गया था । प्रतिवादी समिति ने प्रवेश के लिए छात्रों के प्रवेश की प्रक्रिया को एकदम से अस्वीकार नहीं किया था । नोटिस दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता के इस प्रकथन का विरोध नही किया कि प्रवेश हेतु चयन के वैकल्पिक तरीके को प्रतिवादी समिति द्वारा चतुराईपूर्वक अनुमोदित कर दिया था । इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुंचा जा सकता है कि सीइटी द्वारा अपने ही समुदाय के सफल छात्रों के प्रवेश प्राप्त करने में याचिकाकर्ता की असमर्थता को समझते हुए प्रतिवादी समिति ने अर्हक परीक्षा में प्राप्तांक के आधार पर प्रवेश के लिए इसके समुदाय के छात्रों के चयन के वैकल्पिक तरीके को चतुराई से अनुमोदित कर दिया। लेकिन बाद में असरानी के मामले(ऊपर) में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार पर याचिकाकर्ता के 12 छात्रों के प्रवेश को अनुमोदित करने से प्रतिवादी समिति ने मना कर दिया। श्री इनामदार ने हमारा ध्यान दिनांक 19.9.2009 को दिए गए बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय की ओर आकर्षित किया है , जिसके द्वारा शैक्षिक वर्ष 2009-10 के लिए बीएएसएलपी में प्रवेश प्रक्रिया शुरू करने के लिए इसने अयोध्या चैरिटेबल ट्रस्ट के विशेष शिक्षा कॉलेज, पुणे को अनुमति प्रदान की थी । डब्ल्यू पी 6332/2005 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए निर्देश पर कार्य करते हुए प्रतिवादी समिति ने आवेदनकर्ताओं की परस्पर योग्यता के आधार पर और निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीके से अपने स्तर पर ही कॉलेज द्वारा रिक्त सीटें भरने की प्रवेश प्रक्रिया अनुमोदित कर दी है ।

इसका उल्लेख करना प्रासंगिक है कि उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में अभ्यर्थियों के प्राप्तांक के आधार पर दाखिले के लिए छात्रों के चयन का वैकल्पिक तरीका भी व्यावसायिक कॉलेज में दाखिला चाहने वाले विद्यार्थियों की योग्यता जांचने की एक पद्धति ही है । इस संबंध में डब्ल्यू पी(सिविल) 420/2009 और डब्ल्यू पी(सिविल) सं.481/2009 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 23.10.2009 को दिए गए निम्नलिखित आदेश का संदर्भ लिया जा सकता है । उस मामले में याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा इस बात की अनुमति मांगते हुए उच्चतम न्यायालय में एक आवेदन दिया गया कि निम्नलिखित आदेश को प्राथमिकता के क्रम में मंजूरी देते हुए अंतिम तिथि बढ़ा कर शैक्षणिक वर्ष 2009-10 के लिए 27 खाली सीटों को भरने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति दी जाए :

(i) कॉलेज सी ई टी 2009 के प्राप्तांकों के आधार पर,
(ii) महाराष्ट्र राज्य सरकार के एम एच-सी ई टी-2009 के प्राप्तांक के आधार पर
(iii) एसोसिएशन एएसएस-2009 के प्राप्तांक के आधार पर
(iv) भारत सरकार के सी ई टी-2009 के प्राप्तांक के आधार पर
(v) अन्य राज्य द्वारा संचालित सीइटी के प्राप्तांक के आधार पर
(vi) 10+2 (एचएससी) विज्ञान वर्ग की अर्हक परीक्षा 2009 के प्राप्तांक के आधार पर

(vii) प्रेयर क्लाज(क) के अनुसार अस्थायी एकपक्षीय राहत दी जाए और प्रतिवादियों को नोटिस जारी कर इसकी पुष्टि की जाए ।

(viii) अन्य उपयुक्त हलफनामा पारित किया जाए ।

(बल दिया गया)

उद्देश्य की सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित कर दिया:

आदेश

डब्ल्यू पी(सी) सं. 420/2009:

आवेदक मेडिकल और डेन्टल कॉलेजों में प्रवेश प्रक्रिया पूरा करने के लिए समय विस्तार की मांग करता है, जिसकी अनुमति पहले ही प्रदान कर दी गई है । हमें बताया गया है कि काउंसलिंग हो जाने के बाद भी बहुत सी सीटें खाली पड़ी है । प्रवेश प्रक्रिया पूरी करने के लिए 5.11.2009 तक समय दिया जाता है । लेकिन यह केवल नए दाखिलों के संबंध में प्रदान किया जा रहा है ।

तद्नुसार आई.ए. की अनुमति दी जाती है ।

डब्ल्यू पी(सी) सं. 461/2009:

दोनों पक्षों के विद्वत वकीलों की दलीलें सुनी । याचिकाकर्ता कॉलेज को दिनांक 5.11.2009 तक प्रवेश प्रक्रिया पूरी करने की अनुमति दी जाती है, बशर्ते उन्हें संबंधित प्राधिकारी से संबद्धता प्राप्त हो ।

रिट याचिका का तद्नुसार समापन किया जाता है ।

जी. वी. रमन	वीरा वर्मा
कोर्ट मास्टर	कोर्ट मास्टर

डब्ल्यू पी (सिविल) सं. 350/1993 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 23 सितम्बर, 2005 को दिए गए निम्नलिखित आदेश का संदर्भ भी लिया जा सकता है ।

आदेश

आई.ए. सं.90
इंटर क्यूटरी आवेदन रद्द किया जाता है ।
आई. ए. सं.96

यह अर्जी अखिल भारतीय मेडिकल तथा इंजीनियरी महाविद्यालय संगठन द्वारा दाखिल की गई है, लेकिन यह इंजीनियरी कॉलेज में प्रवेश तक सीमित है । आवेदक के अनुसार आज तक संगठन के सदस्य इंजीनियरी कॉलेजों में प्रवेश के लिए संबंधित राज्यों द्वारा आयोजित सामान्य प्रवेश परीक्षा में बैठने वाला उम्मीदवार प्रवेश के लिए उपलब्ध नही है और सीटें अभी भी खाली पड़ी हैं। मंतत्व यह है कि यदि इन सीटों को केन्द्राय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) द्वारा आयोजित 10+2 परीक्षा या राज्य सरकार द्वारा आयोजित समतुल्य परीक्षा में अर्जित अंकों की वरीयता के आधार पर छात्रों को प्रवेश देकर या जो अन्यथा पात्रता रखते हैं या योग्यता प्राप्त है परन्तु उन्होंने संबंधित राज्य सरकारों द्वारा संपादित सामान्य

प्रवेश परीक्षा नहीं दी है, उनसे नहीं भरा गया तो ये सभी सीटें बेकार चली जाएंगी । इन परिस्थितियों में हम इस आवेदन का निस्तारण निम्न निर्देशों के साथ करते है :

1. राज्य सरकारें उन उम्मीदवारों की सूची भेजेगी जो इंजीनियरी पाठ्यक्रम में प्रवेश लेना चाहते है और जो राज्य सरकारों द्वारा आयोजित सामान्य प्रवेश परीक्षा/कॉलेजों के संगठन द्वारा आयोजित प्रवेश परीक्षा में बैठे हैं और जिन्हें प्रवेश नहीं मिल पाया है । उक्त सूची इंजीनियरी कॉलेजों को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बारे में राज्य सरकारों को अधिसूचित होने के एक सप्ताह के अन्दर भेज दी जाएगी । ये आदेश राज्य सरकारों को आवेदकों द्वारा तुरन्त लेकिन किसी भी स्थिति में, 72 घण्टों के अन्दर, अधिसूचित कर दिए जाएंगे । यदि किसी राज्य सरकार द्वारा उच्च मानदण्ड तय किए गए हैं तो प्रवेश देने में उनका अनुपालन किया जाएगा ।

2. यदि खण्ड(1) में यथा उल्लिखित नाम प्राप्त होते है तो कॉलेज इन छात्रों को पहले प्रवेश देंगे ।

3. **और सभी शेष सीटों को सीबीएसई या अन्य बोर्डों द्वारा आयोजित 10+2 परीक्षा में अर्जित अंकों की वरीयता के आधार पर भरा जाएगा** ।

(बल दिया गया)

उपरोक्त निदेश वर्तमान शैक्षणिक वर्ष अर्थात 2005-2006 के लिए हैं ।

उपरोक्त आदेश उच्चतम न्यायालय द्वारा टी.एम. ए. पाई फाउंडेशन(ऊपर) के मामले में 11 न्यायधीशों की खण्डपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात पारित किए गए हैं ।

यहां यह उल्लेख करना भी संगत होगा कि हाल ही में तकनीकी शिक्षा निदेशालय महाराष्ट्र ने 16/9/2010 को अधिसूचना सं. 2ए/एडीएम/एम बी ए/2010/2892 जारी किया है । मूल आदेश मराठी भाषा में है और इसका हिन्दी अनुवाद(अंग्रेजी से अनुदित) निम्नानुसार है :-

तकनीकी शिक्षा निदेशालय महाराष्ट्र
3, महापालिका मार्ग, पी.ओ.बॉक्स न.1967
मुम्बई -400001

अधिसूचना **सं. 2ए/एडीएम/एमबीए/2010/2892**
दिनांक 16.9.2010

विषयः स्नातकोत्तर एम बी ए/एम एम एस पाठ्यक्रम में प्रवेश

महाराष्ट्र सरकार पत्र सं टी ई एम 2010/सी-237/10/टी ई/4 दिनांक 15.9.2010 के तहत निम्न निदेश देती है :

यह परिपत्र स्नातकोत्तर प्रबंधन पाठ्यक्रमों के लिए इच्छुक छात्रों को अवसर प्रदान करने के संबंध में है । ये निदेश शैक्षणिक वर्ष 2010-11 के लिए, सहायता न पाने वाले संस्थानों में रिक्तियों को भरने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने के लिए है ।

1. ऐसे इच्छुक छात्र जिन्होंने सामान्य प्रवेश परीक्षा पास की है; उन्हें अवसर देते हुए शैक्षणिक वर्ष 2010-11 में एम बी ए/एम एम एस पाठ्यक्रमों में प्रवेश में प्राथमिकता ।

2. केवल उपरोक्त (क) के पश्चात शेष रिक्तियों को भरा जाएगा उन उम्मीदवारों से जो :-

   (क) सामान्य प्रवेश परीक्षा/जीडीपी आई में नहीं बैठा है ।

   (ख) लेकिन इसमें प्रवेश स्नातक स्तर पर छात्र द्वारा अर्जित अंकों के आधार पर दिया जाएगा।

साथ ही, संस्थान यह सुनिश्चित करेगा कि कार्रवाई सभी इच्छुक छात्रों को न्यायोचित अकसर देते हुए की जाएगी ।

छात्रों को पुनः अधिसूचित किया जाता है कि यदि उन्हें कोई शिकायत/विवाद/परेशानी हो तो वे संबंधित डिवीजन ऑफिस या तकनीकी शिक्षा के सक्षम प्राधिकारी को लिखित शिकायत कर सकते हैं।

पर्याप्त जांच के पश्चात यदि यह पता लगता है कि संस्थान ने अनियमितता बरती है तो आवश्यक मनाही या निवारण संबंधी कार्रवाई की जाएगी ।

हस्ताक्षर
डॉ. एस के महाजन
कार्यकारी निदेशक
(तकनीकी शिक्षा)
मुम्बई, महाराष्ट्र

श्री इनामदार ने बताया कि अपने भरसक प्रयासों के बावजूद याचिकाकर्ता कॉलेज 100 छात्रों को प्रवेश नही दे सका और 15 सीटे अभी भी खाली हैं । सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त अंतरिम आदेशों को ध्यान में रखते हुए तथा तकनीकी शिक्षा निदेशालय महाराष्ट्र के अद्यतन अधिसूचना के मद्देनजर याचिकाकर्ता द्वारा छात्रों के चयन का वैकल्पिक सुझाव कि सामान्य प्रवेश परीक्षा के सफल उम्मीदवारों के चयन के बाद खाली बची सीटों को अर्हक परीक्षा में अर्जित अंकों की वरीयता के आधार पर भर लिया जाएगा, अवैध नहीं कहा जा सकता । हमने पहले ही प्रदर्शित किया है कि टी एम ए पाई फाउंडेशन के मामले में (ऊपर) पैरा 59 उदाहरण देकर योग्यता निर्धारित करने के अधिकार से संबंधित है । इसमें योग्यता निर्धारित करने के किसी अन्य तरीके की संभावना को समाप्त नही किया गया, जिसमें अर्हक परीक्षा में अर्जित अंक भी शामिल है। इस्लामिक अकादमी ऑफ एजुकेशन के 2003 6 एससीसी का पैरा 171(ऊपर) याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा जिन 12 छात्रों को प्रवेश दिया गया है उनकी योग्यता उनके द्वारा उत्तीर्ण अर्हक परीक्षा में अर्जित अंकों के आधार पर तय की गई है । ऐसा कुछ भी नही है जिससे लेशमात्र भी यह लगता हो कि याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा इन 12 छात्रों को प्रवेश देते हुए योग्यता वाले छात्रों के साथ अन्याय किया गया हो या कम योग्यता वाले लेकिन अनुचित प्रभाव वाले छात्रों को तरजीह देकर उनकों वंचित रखा गया हो। अतएव इससे ये अनुमान लगाया जा सकता है कि इन 12 छात्रों को प्रवेश देते समय पारदर्शिता को आधार बना गया है और योग्यता का पूरी तरह से ध्यान रखा गया है । दूसरे शब्दों में याचिकाकर्ता महाविद्यालय ने इन 12 छात्रों की प्रवेश प्रक्रिया में योग्यता आधारित प्रवेश प्रक्रिया का अनुपालन किया है । लगभग ऐसे ही एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने ए. सुधा बनाम मैसूर विश्वविद्यालय 1997 एससीसी 535 में छात्र को एम बी बी एस में अपनी स्थिति बनाए रखने की अनुमति दी तथा निदेश दिया कि उसका परिणाम

एम बी बी एस परीक्षा के वर्ष के लिए निर्धारित तारीख से दो सप्ताह पूर्व जारी किया जाए । उपर्युक्त तथ्यों के मद्देनजर मे लगता है और हम मानते है कि 12 छात्रों के प्रवेश का यह मामला करन हेमंत असरानी के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरोध में नही है और याचिकाकर्ता महाविद्यालय द्वारा दिया गया प्रवेश वैध है ।

इसमें ऊपर दी गई परिस्थितियों के हवाले से हमें लगता है और हम ये मानते हैं कि याचिकाकर्ता कॉलेज द्वारा इन 12 छात्रों का दिया गया प्रवेश अवैध नहीं है । हमे यह भी लगता है और हम यह मानते हैं कि प्रतिवादी समिति द्वारा इन छात्रों के प्रवेश के अनुमोदन में की गई आक्षेपित कार्रवाई भारत के संविधान के अनुच्छेद 30(1) में अल्पसंख्यकों को प्रतिष्ठापित शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

हमने दिनांक 20.5.2010 के अंतरिम आदेश के द्वारा प्रतिवादी विश्वविद्यालय को 25 मई, 2010 से आरम्भ होने वाली बीडीएस कोर्स की परीक्षा में 12 छात्रों को बैठाने की अनुमति दी थी परन्तु शर्त थी कि इनका परिणाम हमारे अगले आदेश तक घोषित न किया जाए । इसलिए हम प्रतिवादी विश्वविद्यालय को इन छात्रों का परीक्षा परिणाम घोषित करने का आदेश देते हैं ।

2010 का मामला सं. 1714

छात्रों के प्रवेश की अनुमति देने के लिए निदेश जारी करने के लिए याचिका

याचिकाकर्ता : आचार्य ज्ञान आयुर्वेद कॉलेज, तलवली चांद, ए बी रोड, पोस्ट मंगलिआ, इन्दौर (म.प्र) अध्यक्ष, प्रबंधन समिति

प्रतिवादी

1. आयुष विभाग स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, आई आर सी एस, नई दिल्ली ।
2. सेन्ट्रल कांसिल ऑफ इंडियन मेडिसिन 61-65 इंस्टिटूश्नल एरिया जनकपुरी, नई दिल्ली ।
3. सचिव, चिकित्सा शिक्षा विभाग वल्लभ भवन, भोपाल (म.प्र.)
4. निदेशक, भारतीय मेडिसिन तथा होम्योपैथी प्रणाली सतपुरा भवन, भोपाल (म.प्र.)
5. रजिस्ट्रार देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

इस याचिका के माध्यम से आचार्य ज्ञान आयुर्वेद कॉलेज, तलवली चांद सेन्ट्रल कांसिल एक्ट 1970 की धारा 13 ग के तहत शैक्षणिक वर्ष 2010-11 के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति देने के लिए तथा शैक्षणिक वर्ष 2010-11 के लिए सितम्बर, 2010 के अंतिम सप्ताह में आयोजित होने वाले कांउसलिंग कार्यक्रम में याचिकाकर्ता कॉलेज को हिस्सा लेने की अनुमति देने के लिए प्रतिवादी -1 को निदेश जारी करवाना चाहता है । याचिकाकर्ता कॉलेज को मध्य प्रदेश राज्य द्वारा अल्पसंख्यक दर्जे का प्रमाण पत्र प्रदान किया गया है और इसीलिए यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत सांविधानिक संरक्षण के लिए पात्रता रखता है । कॉलेज की स्थापना वर्ष 2001 में हुई है और इसे इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार वर्ष 2002 में प्रतिवादी-2 द्वारा अपेक्षित अनुमति प्रदान की गई है । इसे देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर से संबद्धता प्राप्त हुई और यह 2010 तक लगातार इससे संबद्ध रहा है । याचिकाकर्ता निरन्तर 2001-2010 तक अधिनियम के अधीन अनुमति का नवीनकरण हासिल करता रहा है ।

प्रतिवादी-2 ने इस अधिनियम की धारा 13क/13ग के अंतर्गत 2010-11 के शैक्षणिक वर्ष के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण करने के बाद संकाय में कुछ कमी पायी। प्रतिवादी-2 की उक्त निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादीं(आयुष विभाग, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय) ने प्रतिवादी-2 द्वारा पायी गई कमियों और खामियों के संबंध में अपने दिनांक 6.8.2010 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किया । दिनांक 14.8.2010 को याचिकाकर्ता कॉलेज ने प्रतिवादी -1 के समक्ष प्रतिवादी-2 द्वारा दर्शायी गई कमियों और खामियों के सुधार के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । यह अभिकथित है कि प्रतिवादी संख्या-1 ने गलत ढंग से अधिनियम की धारा 13(ग) के तहत याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति देने से मना कर दिया । यह अभिकथित है कि मान्यता प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता के पास सभी आधारभूत तथा निदेशात्मक सुविधाएं हैं और परिणामतः प्रतिवादी-1 की इस अधिनियम की धारा 13 ग के अंतर्गत मान्यता प्रदान न करने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

नोटिस भेजने के बावजूद प्रतिवादी 1,3 तथा 5 की ओर से कोई उपस्थित नही हुआ, परिणामस्वरूप मामला उनके विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही के रूप में चला । प्रतिवादी-4 उपस्थित हुआ लेकिन उसने कोई जवाब दाखिल नही किया । प्रतिवादी-2 ने याचिका का इस आधार पर विरोध किया कि यह मामला आयोग के संज्ञान से बाहर का है क्योंकि इसके पास प्रतिवादी-1 को अपास्त करने का कोई अधिकार नहीं है । यह अभिकथित है कि सेन्ट्रल काउंसिल ऑफ इंडियन मेडिसिन(प्रतिवादी संख्या-2) की स्थापना अधिनियम के तहत हुई है और इसने भारतीय औषधि प्रणाली के क्षेत्र में शिक्षा, आधारभूत ढांचा आदि के न्यूनतम मानदण्ड निर्धारित किए हैं । 13क, 13ख तथा धारा 13ग नए कॉलेज, पी.जी. कॉलेज शुरू करने तथा यूजी और पी जी कोर्सों में प्रवेश क्षमता बढ़ाने के लिए कार्यविधियों को सुव्यवस्थित करने के लिए बनाए गए थे । यहां तक कि मौजूदा कॉलेजों को भी इस अधिनियम के उपरोक्त संशोधित प्रावधानों की परिधि में लाया गया है । यह भी अभिकथन किया गया कि याचिकाकर्ता कॉलेज में निरीक्षण 20.8.09 तथा 2009-10 में किए गए थे और पायी गई कमियों के बारे में प्रतिवादी -1 को रिपोर्ट भेजी गई थी । प्रतिवादी-2 ने भी कॉलेज का निरीक्षण किया था और शैक्षणिक वर्ष 2010-11 के लिए अपनी निरीक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत की थी । प्रतिवादी-2 ने कुछ बड़ी और भारी खामियां पायीं और प्रतिवादी-1 ने उक्त निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर अपने 20.9.2010 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को अनुमति देने से मना कर दिया ।

यह विवाद से परे है कि याचिकाकर्ता कॉलेज संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के अंतर्गत आता है । इसमें भी कोई विवाद नही है कि प्रतिवादी-2 द्वारा गठित निरीक्षण दल ने याचिकाकर्ता कॉलेज का निरीक्षण किया और प्रतिवादी-1 को अपनी सिफारिशे प्रस्तुत की जिसने इस अधिनियम के अंतर्गत निर्मित इंडियन मेडिकल काउंसिल रेगुलेशन द्वारा निर्धारित पात्रता संबंधी शर्तों तथा मानकों के संबंध में कई खामियां पायी गईं थीं । आगे यह भी विवाद रहित है कि प्रतिवादी-2 की निरीक्षण रिपोर्ट याचिकाकर्ता की टिप्पणियों के लिए उन्हें प्रदान की गई। याचिकाकर्ता ने उक्त रिपोर्ट के खिलाफ अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । याचिकाकर्ता के प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद 20.9.2010 को एक आदेश पारित किया गया । उक्त आदेश स्वतः स्पष्ट है । इसमें याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई वांछित अनुमति न देने के संबंध में पर्याप्त कारणो का उल्लेख किया गया है । प्रतिवादी-2 द्वारा पायी गई खामियां यह थीं कि 35 के मानक स्टाफ की तुलना में अध्यापकों की संख्या काफी कम थी ।

बाह्य रोगी विभाग में कब्जाधारिता(अधिभाग) भी कमतर था । आईपी डी, रेडियालॉजी, पैथालॉजी, लेबोरेटरी काम नही कर रहे थे । याचिकाकर्ता कॉलेज में स्नातकोत्तर डिग्रीधारी अध्यापकों की अपेक्षित संख्या भी कम थी और उपलब्ध अध्यापक भी नियमित रूप से कार्य नहीं कर रहे थे । यह भी पाया गया था कि कॉलेज का समग्र कार्यकलाप और अस्पताल प्रतिवादी द्वारा निर्धारित न्यूनतम मानदण्डों से निम्नतर स्तर का था । प्रतिवादी-2 द्वारा बतायी गई उक्त कमियों और कमीपेशी को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी-1 ने शैक्षणिक वर्ष 2010-11 के लिए छात्रों को स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश देने के लिए याचिकाकर्ता कॉलेज को अनुमति प्रदान नही की । यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि प्रतिवादी-1 द्वारा पारित 20.9.2010 के आदेश को याचिकाकर्ता ने चुनौती नही दी । यही नही, यह आयोग भी कानूनी रूप से सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी आदेश को आपास्त करने के लिए ऐसे मामलों में अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नही कर सकता । यह ध्यान में रखना होगा कि शिक्षा के सिद्धांत और मानदंड अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन का हिस्सा नही है और उन्हें संविधान के अनुच्छेछ 30(1) की आड़ लेकर नजंरअंदाज नहीं किया जा सकता । शिक्षा के सिद्धांत और मानदंड देश की उन्नति और शैक्षणिक उत्कृष्टता द्वारा शासित ढांचागत आधार है । परिणास्वरूप हमने यह पाया कि प्रतिवादी-1 द्वारा 20.9.2010 को पारित आदेश विधिक रूप से पुष्ट है ।

याचिका में कोई गुणावगुण नही है और यह निरस्त करने योग्य है जो हम कर रहे हैं । याचिकाकर्ता को छूट है कि वह कमियों और कमीपेशियों को दूर करने के बाद आगामी शैक्षिणिक वर्षो के लिए अनुमति हेतु आवेदन कर सकता है ।

2010 का मामला सं. 1733

गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्था को अपनी इच्छानुसार छात्रों को प्रवेश देने की अनुमति प्रदान करने के लिए राज्य को निदेश जारी करने के लिए आवेदन

याचिकाकर्ता : गीतांजली बी एड कॉलेज, नागौड जिला, राजस्थान, गीतांजली शिक्षण संस्थान द्वारा प्रबंधनीय, इसके सचिव के मार्फत

प्रतिवादी

1. कुलपति, एम डी एस विश्वविद्यालय,अजमेर,राजस्थान
2. समन्वयक, पी टी ई टी, जयनाराण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान
3. रजिस्ट्रार, एम डी एस विश्वविद्यालय, अजमेर राजस्थान
4. प्रिसिंपल सेक्रेटरी, शिक्षा ग्रुप-1, सचिवालय, जयपुर राजस्थान
5. समन्वयक, बीएसटीसी, राजकीय महाविद्यालय,अजमेंर
6. रजिस्ट्रार, शिक्षा, परीक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर, राजस्थान
7. उपसचिव,राजस्थान सरकार, स्कूल एंड संस्कृत शिक्षा, विभाग, प्राथमिक शिक्षा (योजना) जयपुर राजस्था
8. एनआरसी, एनसीटीई, ए-46, शान्तिपथ, तिलकनगर जयपुर ।

याचिकाकर्ता कॉलेज, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम 2004 (संक्षेप में अधिनियम) के लिए राष्ट्रीय आयोग के 2(छ) के अर्थाधीन एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । इसे 200 छात्रों को वार्षिक रूप से बी एड कोर्स चलाने के लिए एनसीटीई से और वार्षिक रूप से 50 छात्र लेकर बीएसटीसी से मान्यता प्राप्त है । याचिकाकर्ता संस्था कम से कम 50% छात्र मुस्लिम समुदाय के लेना चाहता है । जब याचिकाकर्ता संस्था ने उक्त प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी से संपर्क किया तो उन्होंने इस आयोग द्वारा प्रदत्त अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र स्वीकार करने से मना कर दिया और जोर दिया कि राज्य के सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित सूची में से ही छात्रों को उपर्युक्त पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिया जाए । चूंकि प्रवेश प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है अतः याचिकाकर्ता सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित केन्द्रीय प्रवेश परीक्षा में सफल उम्मीदवारों से प्रवेश हेतु आवेदन आमंत्रित करने के लिए सीटों की संख्या का विज्ञापन देने की अनुमति चाहता था ।

आयोग ने 29.9.2010 के आदेश द्वारा प्रतिवादी को इस आयोग द्वारा याचिकाकर्ता कॉलेज को दिए गए अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र पर कार्रवाई करने का निदेश दिया । आयोग ने याचिकाकर्ता को यह अनुमति भी दी कि वह इस आशय का विज्ञापन जारी करें कि याचिकाकर्ता कॉलेज केन्द्रीय प्रवेश परीक्षा में सफल उम्मीदवारों की बनायी गई सूची में से छात्रों का चयन कर सकर्ता है लेकिन ऐसे चयन में विद्यार्थियों की परस्पर योग्यता के क्रम को नही बदला जाएगा ।

आयोग के उक्त निदेशों के अनुसरण में, प्रतिवादी विश्वविद्यालय ने आयोग को उनके अल्पसंख्यक का दर्जा प्रदान करने वाले प्रमाणपत्र की स्वीकृति के ब्योरों के बारे में सूचित किया।

नोटिस जारी करने के बावजूद प्रतिवादियों की ओर से कोई भी उपस्थित नही हुआ इसलिए मामले पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

विचाराधीन प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता कॉलेज, एक गैर-सहायता प्राप्त अल्पसख्यक शैक्षणिक संस्था होने के नाते मुस्लिम समुदाय के छात्रों को प्रवेश देने का हकदार है? उच्चतम न्यायालय ने टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य [(2002) 8 एससीसी 481] में निर्णय दिया है कि "गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्था वैधानिक रूप से प्रवेश देने के लिए छात्रों के चयन का अबादित मौलिक अधिकार का दावा कर सकता है । बशर्ते कि इसकी प्रक्रिया उचित पारदर्शी और शोषण से मुक्त हो" पी ए इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 एससीसी 537 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि "एकल-खिड़की प्रणाली अपनी पसन्द के छात्रों को प्रवेश देने के लिए अल्पसंख्यक गैर-सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के अधिकार को किसी भी प्रकार से आघात नहीं पहुँचाती । यह चुनाव ऐसे चुने हुए छात्रों की परस्पर योग्यता के क्रम को बदले बिना साप्रप (सीईटी) में तैयार सफल अभ्यर्थियों की सूची में से किया जा सकता है" । इस स्थिति में हम पी ए इनामदार(ऊपर) के मामले उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित अवलोकनों का हवाला देना उपयोगी समझते है :

> "प्रथम प्रश्न का हमारा उत्तर यह है कि राज्य द्वारा किसी अल्पसंख्यक अथवा गैर-अल्पसंख्यक गैर-सहायता शैक्षिक संस्था में न तो आरक्षण नीति ही लागू की जा सकती है और न ही अपनाए जाने के लिए कोई भी कोटा अथवा प्रवेश का प्रतिशत निर्धारित किया जा सकता है। अल्पसंख्यक संस्थाएं गैर-अल्पसंख्यक समुदाय से विद्यार्थियों तथा अन्य राज्यों से अपने समुदाय के भी सदस्यों सहित अपनी पसंद के

विद्यार्थियों को केवल सीमित सीमा तक ही लेकिन प्रवेश देने के लिए स्वतंत्र हैं। और उस रूप में तथा उस हद तक नहीं कि उनका अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था वाला दर्जा ही समाप्त हो जाए, यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे अनुच्छेद 30(1) का संरक्षण खो देते हैं।"

पी.ए. इनामदार के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में याचिकाकर्ता संस्था एक गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था होने के नाते गैर अल्पसंख्यक समुदाय और अन्य राज्यों के मुस्लिम समुदाय के सदस्य छात्रों को शामिल करते हुए अपनी पसंद के अनुसार छात्रों को प्रवेश देने का हक रखती है । ऐसा विकल्प का प्रयोग छात्रों के पारस्परिक योग्यता के क्रम में फेरबदल किए बिना समान प्रवेश परीक्षा द्वारा निर्मित मुस्लिम समुदाय के सफल उम्मीदवारों की सूची में से किया जा सकता है । जैसा उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया है कि "अल्पसंख्यक या गैर-अल्पसंख्यक गैर-सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्था में न तो आरक्षण की नीति राज्य द्वारा लागू की जा सकती है और न ही प्रवेश का कोटा या प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा विनियोजित किया जा सकता है।" परिणामस्वरूप प्रतिवादी को निदेश दिया जाता है कि समान प्रवेश परीक्षा द्वारा निर्मित सफल उम्मीदवारों की सूची में से बीएड और बीएससीटी पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए याचिकाकर्ता द्वारा चयनित मुस्लिम समुदाय के उम्मीदवारों की सूची को अनुमोदन प्रदान करें ।

2010 का मामला सं. 316

याचिकाकर्ता : सचिव, सी एम एस सेंट जौन हाई स्कूल, पश्चिम बंगाल तथा अन्य

प्रतिवादी

1. अनिन्दा बिश्वास, चापरा आर सी पारा, डाकघर बंगालझी, जिला नाडिया
2. प्रणव कुमार मण्डल, बनश्री हाऊसिंग सोसायटी, अनन्तेश्वर रोड, कृष्णा नगर, जिला नाडिया ।
3. अरुण रतन बिश्वास, सीएमएस क्रिस्टिनपारा पोस्ट आफिस कृष्णा नगर, नाडिया जिला ।

आयोग ने शपथ पत्र सहित याचिका, प्रतिवादियों के प्रस्तुत जवाब और प्रतिवादी के प्रत्युत्तर शपथपत्रों का विस्तार से अवलोकन किया ।

1. याचिकाकर्ता पुष्टि करते हैं कि उनका स्कूल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है और विशेष नियमों के तहत सूचीबद्ध है । याचिकाकर्ता के अनुसार 2 जुलाई, 2004 को सरकार द्वारा संस्वीकृत रिक्तियों के लिए प्रबंधन समिति ने अध्यापक नियुक्त करने का निर्णय लिया। राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पात्रता संबंधी योग्यताओं का याचिकाकर्ता विद्यालय द्वारा अध्यापक की नियुक्ति में पालन किया गया था । नियमानुसार विज्ञान वर्ग में दो सहायक अध्यापक और वर्ग घ में एक पद हेतु विज्ञापन जारी किया गया । चयन समिति, जो संवीक्षा समिति का कार्य भी कर रही थी, उसने आवेदनपत्रों की संवीक्षा की और 9 आवेदन वैध पाए तथा वर्ग घ के मामले में 27 आवेदन वैध थे और ऐसे उम्मीदवारों का साक्षात्कार सहायक अध्यापक और वर्ग के कर्मचारी हेतु संबंधित पदों के लिए 18 अक्तूबर, 2004 को हुआ । ऐसा लगता है कि रिक्त पदों के अनुसार तीन पैनल तैयार किए गए तथा प्रतिवादी 4 और 5 तथा 6 इन पैनलों में अग्रणीय थे ।

इन तीन सहायक अध्यापकों नामतः 1 अनिन्दा बिश्वास, प्रणव कुमार मण्डल तथा अरूप बिश्वास को सचिव द्वारा नियुक्ति आदेश जारी किए गए और इन्होंने 1 नवम्बर, 2004 को कार्यग्रहण किया ।

इस आयोग के समक्ष याचिकाकर्ता संस्थान की शिकायत यह है कि राज्य सरकार(जिला स्कूली शिक्षा निरीक्षक(एसई) नाडिया)को अध्यापकों की चयनित सूची का पैनल अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करने पर इसे अनुमोदित करने के बदले प्रतिवादी ने उन आधारों पर अनुमोदन देने से मना कर दिया जो अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था पर लागू ही नहीं होते । अल्पसंख्यक संस्था में अध्यापकों का चयन और नियुक्ति उसी स्कूल के प्रबधन के दायरे में रहता है क्योंकि यह स्कूल भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 द्वारा शासित अल्पसंख्यक संस्था है ।

सक्षम प्राधिकारी(राज्य सरकार) द्वारा निर्धारित अपेक्षित योग्यता युक्त स्वीकृत पदों पर अध्यापकों की भर्ती अपनी पसंद से करने की सक्षमता शैक्षणिक संस्था चलाने वाले स्कूल प्राधिकरण को है । निदेशक, स्कूल शिक्षा प्रतिवादी सं.3 ने अपने दिनांक 16 नवम्बर,2004 के ज्ञापन सं.1141/जीइएन/एसई के तहत सूचित किया कि सरकार को प्रस्तुत किए गए पैनल पर अनुमोदन देने के लिए विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि स्कूल प्राधिकरण ने अनुमोदन के लिए प्रस्तुत पैनल तैयार करते समय दिनांक 17 सितम्बर,2002 के ज्ञापन सं.1314(50)-एएई(एस)4ए-35/2002 के तहत मौजूदा नियमों का पालन नही किया है ।

याचिकाकर्ता की शिकायत है कि स्कूल प्राधिकरण, जो एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है, (ऐसी स्थिति राष्ट्रीय आयोग द्वारा आदेश 2007 की फाइल सं 163 के तहत प्रदान की गई है) द्वारा चयनित और नियुक्त अध्यापकों के पैनल को अनुमोदन देने से मना करके प्रतिवादियों ने अपनी पसंद की संस्था को चलाने के स्कूल प्राधिकरण के अधिकार में हस्तक्षेप किया है और ऐसा हस्तक्षेप भारत के संविधान के अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है । याचिकाकर्ता का यह तर्क है कि चूंकि संविधान का अधिदेश सर्वोच्च है इसलिए प्रतिवादियों को उसमें हस्तक्षेप का अधिकार नही है ।

याचिकाकर्ता ने आगे दलील दी कि संस्था को चलाने के लिए राज्य द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता को देखते हुए राज्य प्राधिकरण को केवल स्वीकृत पदों के संबंध में अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की अर्हता और पात्रता एवं सेवा शर्तों के लिए मानदंड निर्धारित करने का हक है । अध्यापन और गैर अध्यापन कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार प्रशासनिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है और इसलिए इसमें राज्य प्राधिकरण द्वारा हस्तक्षेप नही किया जा सकता क्योंकि यह संविधान के विरूद्ध होगा और उसके अनुच्छेद 30 के प्रावधानों का स्पष्ट तौर पर उल्लंघन करेगा । अतएव प्रतिवादियों को संस्था के प्रशासनिक अधिकारों में हस्तक्षेप का कोई अधिकार नही है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30 के परिप्रेक्ष्य में एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के दायरे में आता है । याचिकाकर्ता संस्था का यह विचार है कि यदि सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित योग्यता तथा शैक्षिक मानदंडों का अनुपालन किया जाता है तो अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की नियुक्ति में हस्तक्षेप नही किया जाना चाहिए । वह आक्षेपित सरकारी आदेश(अनुबंध पी 7) जिसके माध्यम से राज्य सरकार ने निदेश दिया है कि पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा बनाए गए आरक्षण नियमों के अनुसार रिक्तियां भरी जाएं, उस आक्षेपित सरकारी आदेश को

याचिकाकर्ता द्वारा यह दलील देते हुए चुनौती दी जा रही है कि चूंकि यह संस्था एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है और इसीलिए यह राज्य सरकार की आरक्षण नीति द्वारा बाध्य नही है । इस मामले में याचिकाकर्ता ने यह शिकायत भी की है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को यह भी निदेश दिया कि नियुक्ति के लिए चयनित उम्मीदवारों के नाम रोजगार कार्यालय में पंजीकृत होने चाहिए । याचिकाकर्ता का यह प्रतिरोध है कि प्रतिवादी द्वारा याचिकाकर्ता को इस प्रकार के निदेश जारी करना स्पष्ट रूप से अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रशासनिक मामलों में नियंत्रण करने का प्रयास है और प्रतिवादी के पास ऐसा करने का कोई हक नही है ।

इस आयोग के समक्ष याचिकाकर्ता का मुख्य प्रतिरोध यह है कि राज्य प्राधिकरण द्वारा निर्धारित पात्रता मानदण्डों के अनुसार स्वीकृत रिक्तियों पर स्कूल प्राधिकरण द्वारा नियुक्त किए गए अध्यापकों को मंजूरी देने से इनकार करने में सरकार का आक्षेपित आदेश संविधान को अधिकारातीत करता है और इसलिए मनमाना और अवैध होने के कारण रद्द किए जाने योग्य है।

संबंधित आक्षेपित आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता ने माननीय राज्य उच्च न्यायालय के समक्ष(माननीय न्यायाधीश श्री जे.के. बिश्वास के समक्ष) रिट याचिका दर्ज की और 6.9.2007 को संबंधित पक्षों को सुनने के बाद न्यायाधीश महोदय ने प्रतिवादी द्वारा 16 नवम्बर,2004 को जारी ज्ञापन को रद्द करते हुए स्कूल निरीक्षक, नाडिया को निर्देश दिया कि वे इस मामले में(रिट याचिका सं.7555(डब्ल्यू)-2005- पृष्ठ 8 पर प्रतिवादी द्वारा संलग्न किया गया है) नया युक्तियुक्त आदेश जारी करें ।

इसके बाद जिला स्कूल निरीक्षक, नाडिया ने दिनांक 22.7.2008 के ज्ञापन सं.91(3) विधि/ एसई द्वारा उक्त स्कूल के शैक्षिक एवं गैर शैक्षिक कर्मचारियों के अनुमोदन का पूरा मामला अन्तिम निर्णय हेतु पश्चिम बंगाल सरकार के स्कूल शिक्षा निदेशक को अग्रेषित कर दिया क्योंकि वे ही नियम निर्धारण प्राधिकरण थे ।

पुनः जिला स्कूल निरीक्षक नाडिया ने अपने दिनांक 9.9.2008 के ज्ञा.सं.140/विधि/एसई के तहत इस आधार पर उक्त स्कूल के शैक्षिक कर्मचारियों की नियुक्ति को अनुमोदन देने में अपनी असमर्थता सूचित की कि पैनल के बनाने में जो तरीका अपनाया गया है वह दिनांक 17.9.2002 के ज्ञा.सं.1314(50) एस ई की के अनुरूप अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में शैक्षिक एवं गैर शैक्षिक कर्मचारियों की भर्ती प्रक्रिया से संबंधित सरकारी परिपत्र के मेल नही खाता है।

याचिकाकर्ता ने यह भी निवेदन किया कि स्कूल शिक्षा निदेशक पश्चिम बंगाल ने दिनांक 4.11.2008 के एक अन्य ज्ञा.सं.134-एलसी/एलसी-एलएस-1444/05 के द्वारा उक्त 3 अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अनुमोदन देने के दावे को अस्वीकार कर दिया ।

तथ्यों के और कानूनी आधार पर याचिकाकर्ता का तर्क यह है कि स्कूल निरीक्षक नाडिया और स्कूल शिक्षा निदेशक पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा जारी ज्ञापनों और पारित आदेशों में विधिगत और समुचित तार्किकता की शिथिलता है अतएव ये अपास्त के दायी हैं ।

याचिकाकर्ता ने आगे दलील दी है कि वह सरकारी आदेश जिसका प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता द्वारा की गई अध्यापकों की नियुक्ति को रद्द करने के लिए आश्रय लिया है वह आदेश कानून की कसौटी पर खडा रहने की स्थिति में नही है क्योंकि यह उक्त स्कूल पर लागू नही होता है क्योंकि यह स्कूल अभी भी 23 मई,1974 की उस अधिसूचना सं.641 शिक्षा(एस) के अनुसार विशेष नियमों के अधीन शासित है जो आज भी प्रवृत्त है जबकि जिनमें उक्त स्कूल जैसी अल्पसंख्यक संस्थाओं को, जो प्रशासनिक शक्तियां प्रदान की गई है उनमें अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की नियुक्ति करना भी शामिल है बशर्ते कि नियुक्त कर्मचारी राज्य प्राधिकारी द्वारा पदों के लिए निर्धारित न्यूनतम अपेक्षित योग्यताओं को पूरा करता हो ।

हमारे समक्ष प्रस्तुत वर्तमान मामले में

1. याचिकाकर्ता स्कूल, सीएमएस सेंट जॉन्स हाई स्कूल,नाडिया लिजा,पश्चिम बंगाल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है जिसे इस आयोग द्वारा 13 जून, 2007 में केस सं.163/2007 के मामले में पारित आदेश के तहत अल्पसंख्यक का दर्जा प्राप्त है । यह स्कूल संविधान के अनुच्छेद 30 के दायरे में आता है और उन लोगों द्वारा स्थापित और संचालित किया जाता है जो ईसाई अल्पसंख्यकों से संबंध रखते है और क्रिश्चियन चर्च/मिशनरी सोसायटी (पश्चिम बंगाल में विधिक रूप से उनके उत्तराधिकारियों के बोर्ड/धार्मिक सोसायटी/सब्सिडियरी ट्रस्ट) द्वारा संचालित स्कूल प्रबंधन के लिए विशेष नियमों के अंतर्गत आता है । आक्षेपित सरकारी आदेश राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित और राजपत्र में अधिसूचित किसी नियम पर आधारित नही है अपितु यह सरकार के विशेष सचिव द्वारा जारी आदेश पर आधारित है । कोई भी ऐसा प्रयास जो 1974 के विशेष नियमों में हस्तक्षेप करता हो तो उसे संविधान के अनुच्छेद 30 की भावना का उल्लंघन ही माना जाएगा जो अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और उनका संचालन करने के अधिकारों की गारंटी देता है ।

टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम् कर्नाटक राज्य [(2002 (8) एससीसी 481] में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि संविधान के अनुच्देद 30 (1) के अधीन अध्यापन तथा अध्यापनेतर स्टाफ को नियुक्त करने के अधिकार को लागू करना, अल्पसंख्यकों के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है । यह भी निर्णय दिया गया कि राज्य या उनकी एजेन्सियों से केवल सहायता प्राप्त करने पर, एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अपना अस्तित्व नहीं खोती ।। अन्य शब्दों में, सहायता की प्राप्ति , सहायता प्राप्त कर रही अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के स्वरुप और प्रकृत में परिवर्तन नहीं करती है । सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम् टी. जोस तथा अन्य (2003 की सिविल अपील सं.8599, निर्णय की तारीख 27.11.2006) में उच्चतम न्यायालय के हाल ही में किए गए फैसले में कहा गया है कि '' अनुच्देद 30 (1) में स्पष्ट रुप से अन्तर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता, जो कि शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना या संचालन करने में, अल्पसंख्यकों के अधिकारों को किसी तरह से कम या संक्षिप्त करती हों । ''राज्य, जो कि एक शैक्षणिक संस्था को सहायता प्रदान करता है, निश्चित रुप से ऐसी शर्तें लागू कर सकता है, जो कि शिक्षा के उच्च स्तर को यथोचित रुप से बनाए रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि वित्तीय बोझ में राज्य की हिस्सेदारी है । अन्य शब्दों में, सहायता की वह शर्तें, जिनमें सारभूत प्राबंधिक अधिकार का अभ्यर्पण शामिल नहीं है, सांविधानिक

गारंटियों के साथ असंगत नहीं होंगी, हालांकि वे प्रशासन के कुछ पहलुओं का अप्रत्यक्ष रुप से अतिक्रमण करती हों । स्पष्ट रुप से, वह सभी शर्तें जिनका एक शैक्षणिक संस्था द्वारा प्राप्त की गई सहायता के यथोचित उपयोग के साथ संबंध है, को लागू किया जा सकता है । इसलिए टी एम ए पाई फाउंडेशन (ऊपर) में यह निर्णय लिया गया है कि शैक्षणिक स्वरुप तथा मानकों को सुनिश्चित करने के लिए तथा शैक्षिक उत्कृष्टता को बनाए रखने के लिए विनियामक उपायों को लागू किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे विनियम, संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार में किसी तरह से बाधा नहीं डालते हैं । इस संबंध में टी.एम.ए. पाई (ऊपर) मामले में, उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ लिया जा सकता है :

> "इसका तात्पर्य है कि अनुच्छेद 30 (1) के अधीन दिए गए अधिकार में अन्तर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता, जो कि उस संस्था की स्थापना या संचालन करने में अल्पसंख्यक संस्था के अधिकारों को किसी तरह से कम या संक्षिप्त करती हों । वे शर्तें जिन्हें आम तौर पर सहायता प्राप्त कर रही शैक्षणिक संस्थाओं पर लागू करने की अनुमति दी जा सकती है, निश्चित रुप से अनुदान के यथोचित उपयोग तथा अनुदान के उद्देश्यों को पूरा करने से संबंधित होनी चाहिए । इस प्रकार निर्धारित ऐसी कोई दीर्घकालिक शर्ते जैसे निधियों के उपयोग के संबंध में उचित ढंग से लेखा-परीक्षा तथा वह तरीका जिसके अनुसार निधियों का उपयोग किया जाना है, लागू होंगी तथा शैक्षिक संस्थाओं की अल्पसंख्यक स्थिति को कम नहीं करेगी । ऐसी शर्तें तभी मान्य होंगी यदि इन्हें अनुदान प्राप्त कर रही अन्य शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू किया गया हो।"

सचिव मालंकर सीरियन कैथोलिक कालेज (ऊपर) मामले में, टी एम ए पाई फाउंडेशन (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की व्याख्या करते समय, यह निर्णय लिया गया कि राज्य निम्नलिखित का निर्धारण कर सकता है :-

(i) नियुक्तियां करने के लिए न्यूनतम अर्हताएं, अनुभव तथा योग्यता से संबंधित अन्य मानदण्ड ।

(ii) स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण के साथ हस्तक्षेप किए बिना कर्मचारियों की सेवा शर्तें ।

(iii) कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण के लिए एक क्रिया-विधि ।

(iv) शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा व्यवस्था के अधिकार को कम या संक्षिप्त किए बिना, शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा सहायता के यथोचित उपयोग के लिए शर्तें ।

यह निर्णय भी दिया गया कि यदि कोई विनियम, स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में बाधा उत्पन्न करता है या शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और व्यवस्था के अधिकार को किसी अन्य प्रकार से संक्षिप्त/कम करता है, तो ऐसा विनियम, उस सीमा तक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए अप्रयोज्य होगा ।

टी एम ए पाई फाउंडेशन मामला (ऊपर में उच्चतम न्यायालय में माननीय न्यायाधीश द्वारा टिप्पणी की गई कि:

> "यद्यपि राज्य तथा इसके शैक्षणिक प्राधिकारियों के लिए अध्यापकों की अर्हताएं निर्धारित करना उचित था, यह निर्णय दिया गया कि एक बार अपेक्षित अर्हताएं अध्यापकों को अल्पसंख्यकों द्वारा उनकी शैक्षणिक संस्थाओं के लिए चयनित कर लिया गया, तो राज्य को उन अध्यापकों के चयन को वीटो करने का अधिकार नहीं होगा । एक शैक्षणिक संस्था के लिए अध्यापकों के चयन तथा नियुक्ति को, अनुच्छेद 30(1) के अन्तर्गत एक आवश्यक घटक माना गया था। न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया कि केरल शिक्षा विधेयक, 1957 मामले में, इस न्यायालय ने राय व्यक्त की थी कि खण्ड 11 तथा 12 के तहत सभी सहायता प्राप्त विद्यालयों के लिए, लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्येक जिले से चयनित किए गए पेनल से अध्यापकों का चयन करना अनिवार्य कर दिया गया था और कि प्राधिकृत अधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना, एक सहायता प्राप्त विद्यालय के किसी अध्यापक को पदच्युत, निष्कासित या पदावनत नहीं किया जा सकता। एस सी आर में पृष्ठ 245 पर खन्ना जे ने टिप्पणी की कि केरल शिक्षा विधेयक 1957 मामले में दी गई राय के बाद वाले मामलों में इस न्यायालय ने खण्ड 11 तथा खण्ड 12 जैसे मिलते-जुलते उपबंधों को संविधान के अनुच्छेद 30(1) का उल्लंघन माना था।"

हमारे समक्ष प्रस्तुत दस्तावेज और पक्षकारों द्वारा की गई बहस के प्रकाश में इस आयोग का यह मत है कि याचिकाकर्ता द्वारा की गई अध्यापकों की नियुक्ति एवं चयन न्यायसंगत है क्योंकि स्कूल को अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार केवल इस शर्त के साथ है कि ऐसे चयनित उम्मीदवार राज्य प्राधिकरण द्वारा निर्धारित न्यूनतम योग्यता रखते हो । इस वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता स्कूल द्वारा इन पूरे मानदंडों का अनुपालन किया गया है ।

प्रतिवादी उक्त स्कूल द्वारा नियुक्त अध्यापकों के लिए अनुमोदन देने से इनकार करने में अपने प्राधिकारों की सीमाओं के क्षेत्राधिकारों से बाहर चला गया है और ऐसा लगता है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रशासनिक क्षेत्र में उसने हस्तक्षेप का प्रयास किया है । स्कूल को जारी आक्षेपित सरकारी ज्ञापन/आदेश संविधान के अनुच्छेद 30 में विहित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है ।

अतएव यह आयोग कानून और इसके समक्ष प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर योग्यता और पात्रता के निर्धारित मानदण्डों का अनुपालन करते हुए अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की आवश्यक नियुक्ति करने के याचिकाकर्ता संस्था के अधिकार को स्वीकार करता है । याचिकाकर्ता स्कूल और साथ ही अन्य अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को चाहिए कि वे भर्ती प्रक्रिया और कार्यविधि को पारदर्शी बनाएं । वर्तमान मामले में आयोग ने यह पाया कि स्कूल एक अल्पसंख्यक संस्था है जो अनुच्छेद 30 के प्रावधानों के दायरे में आता है, अतः यह प्रतिवादी को संदर्भाधीन नियुक्तियों को अनुमोदन देने का निदेश देता है क्योंकि आरक्षण संबंधी नियम

याचिकाकर्ता स्कूल पर लागू नही होते हैं । अतएव आक्षेपित सरकारी आदेश और प्रतिवादी द्वारा जारी ज्ञापनों का कोई आधार नहीं है ।

याचिकाकर्ता स्कूल द्वारा किए गए अनिन्दा बिश्वास, प्रणव कुमार मण्डल, अरूप रतन बिश्वास- प्रफोर्मा प्रतिवादी की नियुक्ति विधिक एवं मान्य मानी जाती है और मानदंडों के अंतर्गत मानी जाती है ।

डॉ. सिरियक थामस
(सदस्य)

डॉ. मोहिन्दर सिंह
(सदस्य)

न्यायमूर्ति एम एस ए सिद्दिकी(अध्यक्ष)

मुझे अपने विद्वत भाई की राय पढ़ने का सुअवसर मिला । मैं इस निर्णय में लिए गए निष्कर्षों से सहमत हूँ । टी एम ए पाई बनाम कर्नाटक राज्य ए आई आर 2003 एस सी 355 में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि अध्यापन और गैर-अध्यापन कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रशासनिक एवं प्रबंधन अधिकारों का एक महत्वपूर्ण पहलू है । राज्य, अध्यापकों के लिए अपेक्षित योग्यताओं का निर्धारण करके उनके चयन और नियुक्ति की पद्धति को विनियमित कर सकता है । योग्यता प्राप्त उम्मीदवारों में से अध्यापकों का चयन करने की आजादी किसी सहायता प्राप्त संस्था के शैक्षणिक और प्रशासकीय स्वायत्तता को बनाए रखने के लिए मौलिक है । यदि अपेक्षित योग्यता रखने वाले अध्यापकों का चयन अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए कर लिया जाता है तो राज्य को अध्यापकों के चयन को वीटो करने का अधिकार नहीं है । अल्पसंख्यक के पास उस व्यक्ति को चुनने का अधिकार अंतर्निहित होता है जो इनकी नजर में संस्था के अनुरूप सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से अधिक उपयुक्त होगा ।

यहां यह उल्लेख करना संगत होगा कि केवल राज्य की सहायता ले लेने मात्र से संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रत्याभूत अधिकार की समाप्ति नही हो जाती है । पी ए इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005)6 एससीसी 537) रोजगार में आरक्षण की नीति अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में लागू नही की जा सकती क्योंकि सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्था में सेवाएं राज्य के अंतर्गत सेवाओं के रूप में नही मानी जा सकतीं चाहे वह सहायता संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत ही क्यों न हो । मेरे इस दृष्टिकोण की पुष्टि उच्चतम न्यायालय के सिन्धी शैक्षणिक सोसायटी बनाम मुख्य सचिव, दिल्ली सरकार, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र 2010 ए आई आर एस सी डब्ल्यू 5393 में दिए गए निर्णय से होती है । उपर्युक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने निर्णय दिया कि केवल अनुदान प्राप्त कर लेने मात्र से कोई सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर 'राज्य' नहीं बन जाता है । इस संबंध में माननीय न्यायाधीशों की टिप्पणी संदर्भ हेतु नीचे प्रस्तुत है -

> "संविधान का अनुच्छेद 15(5) अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को किसी सामाजिक या पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के संबंध में शैक्षणिक संस्थाओं में चाहें वे प्राइवेट शैक्षणिक सस्था हो

जो सहायता प्राप्त है या सहायता प्राप्त नहीं है, उनमें ऐसे लोगों के उत्थान के लिए कानूनी तौर पर किसी भी तरह के प्रावधान करने के राज्य के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखता है । यह अनुच्छेद बहुत विस्तृत व्याख्या की क्षमता रखता है और राज्य को इस अनुच्छेद में बताए प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए बहुत व्यापक अधिकार प्रदान करता है । लेकिन संविधान निर्माताओं ने विशेषतौर पर अल्पसंख्यक शैक्षणिक समुदाय को इस खण्ड के प्रचालन क्षेत्र से बाहर रखा है। अनुच्छेद 16, जो पुनः सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसर की समानता सुनिश्चित करता है, इस प्रकार अभिव्यक्ति देता है जिससे कि भेदभाव को रोका जा सके और साथ ही साथ राज्य को विशेष वर्ग या विशेष व्यक्तियों के वर्ग के संबंध में प्रावधान कानून और आरक्षण करने की शक्ति भी प्रदान करता है। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि राज्य की इस शक्ति का उपयोग ''राज्य के अधीन सेवा'' के संबंध में ही किया जा सकता है । यह अभिव्यक्ति इन श्रेणियों में रोजगार और कानून/आरक्षण की व्यवस्था करने से संबंधित अनुच्छेद के समस्त खण्डों में इस्तेमाल हुई है । अपने सही स्वरूप में यह अभिव्यक्ति स्वयं में बहुत व्यापक स्वरूप देने में सक्षम है और इसका आशय भी उदारता से लेना चाहिए तथा इसे सीमित दायरे में प्रतिबंधित नही करना चाहिए । ''राज्य के अंतर्गत सेवा'' संबंधी अभिव्यक्ति में स्पष्ट तौर पर राज्य सरकार के अंतर्गत या इसके अभिकरण और/या ऐसे क्षेत्र जो संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के दायरे में राज्य की परिभाषा के अंदर आते हैं, ऐसी सभी सेवा शामिल है । एक बार यदि कोई संस्था या सोसाइटी इस परिधि से बाहर आती है तो ऐसी स्थिति में न्यायालय के लिए यह निर्णय देना कठिन हो जाता है कि राज्य को इन सोसाइटियों में रोजगार के क्षेत्र में कानून या प्रावधान या आरक्षण करने का अधिकार प्राप्त है ।

'राज्य' शब्द की बहुत अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नही रह गई है क्योंकि यह पहलु अब अनिर्णित विषय नही रहा है और अजय हसिआ बनाम खालिद मुजिब सेहरावरदी [(1981)1 एससीसी 722]:(एआईआर 1931 एससी 487) के मामले में कानून द्वारा इसे स्पष्ट कर दिया गया है जहां न्यायालय ने यह तय करने के लिए कि कोई निगम या सरकारी कंपनी या प्राइवेट निकाय राज्य का अभिकरण या एजेंसी है या नही यह निर्धारण के लिए एक कसौटी तय कर दी है जो इसमें अपनायी जा सकती है । प्राथमिक तौर पर, कई प्रकार के नियंत्रण होते हैं जिसका उपयोग राज्य संविधान के अनुच्छेद 12 में वर्णित राज्य या अन्य प्राधिकार संबंधी अभिव्यक्तियों की परिधि के अंतर्गत किसी प्राधिकरण, सोसायटी, संगठन या निजी निकाय पर कर सकता है । ये वित्तीय, प्रबंधकीय और प्रशासनिक नियंत्रण और कार्यात्मक नियंत्रण है । दूसरे तरीके से कहें तो ऐसे निकायों पर चाहें उस निकाय के कार्य सरकारी कार्य ही हो या इससे निकट से जुड़े हो, सरकार जिन प्रशासनिक नियंत्रण्णों का उपयोग इन पर करेगी उसमें राज्य नियंत्रण की मात्रा, वित्तीय सहायता की मात्रा और उस निकाय की प्रकृति तथा ढ़ांचा एवं इन घटको का संचित

प्रभाव आदि शामिल है । यह सतत रूप से निम्नलिखित मामलों में पाया गया हे जोरोस्ट्रियन कॉ-आपरेटिव हाऊसिंग सोसायटी(अर्बन) [(2005) 5 एससीसी 632]:(ए आईआर 2005 एससी 2306: 2005 एआईआर एससी डब्ल्यू 2317) और हाल ही के उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राधेश्याम राय [(2009) 5 एससीसी 577):(2009 एआईआर सएसी डब्ल्यू 2165), के मामले में लिए गए निर्णय में इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि उत्तर प्रदेश गन्ना किसान संस्थान(संस्थान) एक राज्य है क्योंकि यहाँ ये मानदंड खरे उतरते है और यहां तक कि राज्य भी संस्थान के कार्य अपने हाथ में ले सकता है । जब तक ये सभी तीनों पहलू स्थापित न हो या इन्हें पर्याप्त संतोषजनक ना पाया जाए तब तक उस सोसाइटी या संगठन को या निकाय को 'राज्य' शब्द के अंतर्गत मानना अनुज्ञेय नहीं होगा ।

यदि एक बार राज्य ऐसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के बारे में विशेष प्रावधान और आरक्षण करने के क्षेत्राधिकार की आधारभूत शक्ति से वंचित होता है जो राज्य के अंतर्गत सेवाओं का एक हिस्सा नहीं होते हैं, यह मानना कठिन हो जाता है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं में रोजगार में आरक्षण की नीति लागू की जा सकती है ।अपने पसंद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना और संचालन के अल्पसंख्यकों के अधिकार के साथ सामंजस्य बनाए जाने की जरूरत है ताकि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत इसका सामंजस्य बनाया जा सके है । एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को ऐसी कार्रवाई या कार्य निष्पादन करने के लिए बाध्य करना मुश्किल हो सकता है जिनसे अन्यथा उसके प्रशासनिक एवं नियंत्रणात्मक अधिकारों का अतिलंघन होता हो। वास्तव में यह बिना अनुमति के प्रतिबंध लगाना होगा ।अतएव राज्य अपने सांविधानिक दायित्व के दायरे में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को ऐसी किसी नीति को अपनाने के लिए बाध्य नहीं कर सकता जिसके लागू होने से संस्था के अपने मौलिक अधिकार और या सांविधानिक संरक्षण का अतिलंघन होता हो ।परिणामतः, मैं निःसंकोच इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि रोजगार में आरक्षण की नीति याचिकाकर्ता स्कूल पर लागू नही हो सकती और प्रतिवादी की प्रश्नगत अध्यापकों के चयन और नियुक्ति के अनुमोदन को रोकने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के सांविधानिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

2009 का मामला सं.732

अल्पसंख्यक संस्था के उन्नयन के लिए अनुमति देने से संबंधित निदेश हेतु अनुरोध

याचिकाकर्ता : एम आई सी अनाथालय, यू पी स्कूल, कैपामंगलम, त्रिसूर जिला, केरल

प्रतिवादी : 1. सचिव, सामान्य शिक्षा विभाग केरल सरकार, सचिवालय तिरुवन्तपुरम, केरल

2. निदेशक जन अनुदेश, केरल सरकार, जगती तिरुवन्तपुरम, केरल

इस याचिका के माध्यम से याचिककर्ता अपने अप-ग्रेडेशन के लिए राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी को अनुमति प्रदान करने के लिए निदेश दिलवाना चाहता है । याचिकाकर्ता विद्यालय संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत एक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था है । याचिकाकर्ता स्कूल इसे अपग्रेड करवाकर हाई स्कूल बनाना चाहता है ।सर्वेक्षण करने के बाद सहायक शिक्षा अधिकारी

वलापडु ने याचिकाकर्ता विद्यालय को अपग्रेड करने के प्रस्ताव की सिफारिश शिक्षा विभाग केरल सरकार को कर दी । चूंकि याचिकाकर्ता मुस्लिम समुदाय के पिछड़े वर्ग के लोगों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है, इसने सक्षम प्राधिकारी से अपने अग्रेडेशन के लिए आवेदन किया । उप निदेशक शिक्षा, त्रिसूर ने भी अपग्रेडेशन के याचिकाकर्ता के प्रस्ताव की सिफारिश निदेशक जन-अनुदेश, केरल सरकार को कर दी । लेकिन उक्त प्राधिकारी ने उप निदेशक, शिक्षा की सिफारिशों को स्वीकार करने से मना कर दिया । यह अभिकथित है कि निदेशक, जन-अनुदेश, केरल सरकार का याचिकाकर्ता स्कूल को अपग्रेडेशन की अनुमति से इन्कार संबंधी आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में विहित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है।

निदेशक जन-अनुदेश, केरल सरकार ने याचिकाकर्ता स्कूल का विरोध इस आधार पर किया है कि याचिकाकर्ता के अपग्रेडेशन आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि सरकार ने विशेष परिस्थितियों को छोड़कर स्कूल का अपग्रेडेशन न करने की नीति अपनाई हुई है ।

विचारार्थ मुद्दा यह है कि क्या निदेशक, जन-अनुदेश, केरल सरकार का याचिकाकर्ता के अग्रेडेशन के लिए मना करना संविधान के अनुच्छेद 30(1) में विहित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन माना जाए ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को `अपनी पसंद`की शैक्षिक संस्था स्थापित करने और उसके संचालन का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के पीछे औचित्य अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की संस्था को चलाने की सुरक्षा प्रदान करना है । इन अधिकारों को उल्लंघन की स्थिति में प्रतिषेध के माध्यम और लागू करने के वचन से सुरक्षित किया गया है । प्रतिषेध अनुच्छेद 13 में समाहित है जो राज्य को ऐसे किसी भी कानून या नियम बनाने से रोकते है जो संविधान के अध्याय-III के तहत प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त या संकुचित करते हैं या इससे असंगत किसी कानून, नियम या विनियम को वीटों की धमकी देते हैं ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय `राष्ट्र के विवेक को दिया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने के प्रयोजन से अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं खोलने और चलाने से नहीं रोका गया है ताकि वे उन्हें सही अर्थों में देश के स्त्री-पुरुष बना सके । अल्पसंख्यकों को संविधान के इस अनुच्छेद 30 (1) के तहत सुरक्षा देने का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित तथा मजबूती देना है । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का आशय अपने देश में बालक बालिकाओं का समन्वित विकास करना है । यह शिक्षा के माध्यम द्वारा स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व की सच्ची भावना है । यदि अल्पसंख्यकों को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के तहत अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार नहीं दिया तो वह स्वयं को अलग थलग और पृथक समझेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।

संदर्भ हेतु केरल शिक्षा विधेयक (उपर्युक्त) में श्री एस आर दास मुख्य न्यायाधीश ने निम्न टिप्पणी दी :-

"विचाराधीन अनुच्छेद के सही अर्थ और प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए मुख्य शब्द `अपना पसंद` है ंयह कहा जाता है कि प्रभावशाली शब्द `पसंद` है और इस अनुच्छेद का सारतत्व उतना ही व्यापक है जितना किसी अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद इसे बना सकती है ।"

सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एस एस सी 558 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि अनुच्छेद 30 (1) में `अपनी पसंद के` शब्द अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं, जिसकी वे स्थापना करना चाहते हैं, का स्वरुप चुनने के अपार विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण या सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या दोनों प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना कर सकते हैं ।

इस मौके पर पी ए इनामदार एंड अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का निम्नलिखित टिप्पणी का मुख्यांश देना उपयोगी होगा :-

"..... अनुच्छेद 30 (1) में निहित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की यह इच्छा पूरी होते हुए देखना है उनके बच्चों का पालन पोषण उचित प्रकार से तथा प्रभावी ढंग से हो तथा उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए वे योग्यता हासिल करें तथा संसार में वह ऐसी बौद्धिक उपलब्ध्यों के साथ भली-भांति तैयार होकर प्रवेश करें जिससे कि वे सार्वजनिक सेवाओं, सामान्य पंथ निरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च शिक्षा देने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए स्वयं को उपयुक्त पाएं । इस प्रकार अल्पसंख्यकों के हितार्थ निम्नानुसार है :-

(i) ऐसे समुदाय को अपना धर्म और भाषा के संरक्षण के लिए योग्य बनाना (ii) तथा ऐसे समुदाय से संबंध प्रदान करना । जब तक ये संस्थान उपर्युक्त उक्त दो उद्देश्यों को हासिल करके और हासिल करते हुए अपने अल्पसंख्यक चरित्र को बनाए रखते है जब तक वे संस्थान एक अल्पसंख्यक संस्थान बने रहेंगे ।

`अपनी इच्छा` के शैक्षिक संस्थान की स्थापना के अधिकार का तात्पर्य ऐसे संस्थान वास्तव में स्थापित करना है जो कारगर ढंग से अपने समुदाय और अपने शिक्षण संस्थानों के लिए समर्पित विद्धतजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956)

श्री एम पे अबुबकर ने इस याचिका में किए गए प्रकथन के समर्थन में शपथ पत्र दाखिल किया है । शपथ पत्र में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता स्कूल पिछले वर्ग के मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय की शैक्षिक जरुरतों को पूरा करता है । इस समय स्कूल में कुल 523 विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं जिसमें से 361 विद्यार्थी मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय से संबंध रखते हैं । केरल शिक्षा नियमों के अनुसार हाई स्कूल के लिए 1. 2 से 2 हैक्टेयर भूमि की आवश्यकता होती है । याचिकाकर्ता के पास 1. 5 हैक्टेयर भूमि है । स्कूल में 6 मीटर x 6 मीटर के आकार के 24 कमरे हैं जो केरल शिक्षा नियमों द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुरुप हैं । भवन में आफिस का कमरा, स्टाफ रुम, पुस्तकालय, प्रयोगशाला तथा स्मार्ट क्लास रुम भी है । हाई स्कूल के लिए मौजूदा भवन में स्टैण्डर्ड VIII के लिए दो कमरे भी तय कर दिए गए हैं । याचिकाकर्ता स्कूल के प्रबंधक ने भवन तीन मंजिला 24 कमरों के निर्माण की अनुमति ले ली है और ग्राउंड फ्लोर पर कार्य आरंभ भी हो गया है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि शिक्षा विभाग ने निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश को याचिकाकर्ता स्कूल के अपग्रेडेशन की सिफारिश

की थी । साथ ही याचिकाकर्ता स्कूल के पास केरल शिक्षा अधिनियम, 1958 के तहत निर्मित नियमों के अनुसार अपग्रेडेशन के लिए समस्त आधारभूत संरचना और अनुदेशनात्मक सुविधाएं मौजूद हैं । बच्चों को निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के मद्देनजर 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को निशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना सरकार का भी दायित्व है ।

याचिकाकर्ता स्कूल एक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थान है और अनुच्छेद 30 के अंतर्गत धार्मिक अल्पसंख्यक संस्थान के रुप में इसके मूलभूत अधिकारों को दृष्टि में रखना चाहिए । सचिव, कन्नौर जिला मुस्लिम शिक्षा एसोसिएशन, कन्नौर बनाम केरल राज्य एवं अन्य ए आई आर 2010 एम सी सी 1955 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित व्यवस्था के मद्देनजर याचिकाकर्ता स्कूल को अपना हाई स्कूल में अपग्रेडेशन करवाने की अनुमति लेने की वैधानिक प्रत्याशा है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार राज्य सरकार की नीति पर बलि नहीं चढ़ाए जा सकते। प्राथमिक और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सच्चर समिति द्वारा व्यापक अध्ययन द्वारा मूल्यांकित अभिलक्षणों में यह दर्शाया गया है कि तुलनीय समूहों में मुस्लिम समुदाय देश में शिक्षा के मामले में अपेक्षाकृत बहुत पीछे हैं । केन्द्र सरकार ने भी मुस्लिम समुदाय की साधनहीनता के विभिन्न पहलुओं के उपचार के लिए सार्थक प्रयास किए हैं और मुस्लिम समुदाय की मुख्यधारा में लाने के प्रयास भी किए हैं । परन्तु मुख्यधारा से कटकर रहने की प्रवृत्ति से राज्यीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर संघर्ष करना अपेक्षित है । शिक्षा में मुक्त करने की क्षमता होती है लेकिन कई बार राज्य सरकारों में दिग्भ्रमित तत्वों द्वारा इससे वंचित कर दिया जाता है । वर्तमान मामला शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिमों को वंचित करने का ज्वलंत उदाहरण है ।

सचिव, कन्नौर जिला मुस्लिम शिक्षा एसोसियेशन, कन्नौर बनाम केरल राज्य तथा अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला लेते हुए हम ठोस सिफारिश करते हैं कि राज्य सरकार याचिकाकर्ता स्कूल के इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि यह स्कूल क्षेत्र के मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के अत्यंत साधनहीन पिछड़े वर्ग की शैक्षिक जरुरतों को पूरा कर रहा है, याचिकाकर्ता स्कूल के अपग्रेडेशन की अनुमति प्रदान करें ।

2008 का मामला सं 327

अल्पसंख्यक संस्थान के अपग्रेडशन की अनुमति राज्य से लेने के लिए निदेश जारी करने का अनुरोध

याचिकाकर्ता : नंदूवन्नुर साउथ ए एम यू पी स्कूल द्वारा इसके प्रबंधक, श्री एम पी इस्माइल कालिकट, जिला, केरल के माध्यम से

प्रतिवादी :
1. सचिव, शिक्षा विभाग, केरल सरकार, सचिवालय, त्रिरुवन्तपुरम, केरल
2. निदेशक, जन-अनुदेश, शिक्षा विभाग, केरल राज्य, त्रिरुवन्तपुरम, केरल
3. जिला शिक्षा अधिकारी, जिला शिक्षा कार्यालय, तमरासरी, कोझिकोड ताल्लुक, केरल

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता हाई स्कूल में अपग्रडेशन के लिए राज्य सरकार को निदेश जारी कराना चाहता है । याचिकाकर्ता स्कूल संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत एक अल्पसंख्यक शैक्षिक समुदाय है । याचिकाकर्ता स्कूल सन 1928 में एक मदरसे के रुप में

आरंभ हुआ था और इसके बाद 1967-68 में उच्च प्राथमिक स्कूल के रुप में अपग्रेड हो गया । स्कूल में अधिकांश बच्चे मुस्लिम समुदाय के पिछड़े साधनहीन वर्ग से संबंध रखते हैं । क्षेत्र की मुस्लिम लड़कियाँ अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए हाई स्कूल और हायर सैकन्डरी स्कूलों में जाने की अनिच्छुक होती हैं क्यांकि इसके लिए उन्हें 1 से 3 किलोमीटर दूर तक जाना पड़ता है। याचिकाकर्ता स्कूल ने शैक्षणिक वर्ष 2008 से अपने स्कूल के अपग्रेडेशन की याचिका लगाई। लेकिन सरकार ने अभी तक अनुमति प्रदान नहीं की है । यह कहा गया कि अपगेडेशन के लिए अनुमति नहीं देने को राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रदत्त अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता स्कूल के पास केरल शिक्षा अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार अपगेडेशन के लिए सभी आधारभूत संरचना तथा अनुदेशात्मक सुविधाएं उपलब्ध है । जिला शिक्षा अधिकारी, तमरासरी ने याचिकाकर्ता स्कूल का निरीक्षण करने के बाद स्कूल के अपग्रेडेशन की सिफारिश की थी ।

प्रतिवादी ने याचिका का प्रतिरोध इस आधार पर किया कि वर्तमान याचिका आयोग के संज्ञान क्षेत्र से बाहर है । यह अभिकथित है कि सरकार ने नये स्कूल खोलने, मौजूदा स्कूलों के अपग्रेडेशन, सहायता प्राप्त या गैर सहायता प्राप्त स्कूलों की मान्यता, सी बी एस ई आई सी एस ई स्कूलों के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए और हायर सेकन्डरी स्कूलों में नये पाठयक्रम शुरु करने की अनुमति देने के संबंध में दिशा निर्देश बनाने के लिए एक समिति का गठन किया है । समिति की सिफारिशों पर विचार करने के बाद सरकार ने इस संबंध में 13-6-2007 को एक आदेश जारी किया । मुस्लिम समुदाय में शैक्षिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए राज्य सरकार ने मतलपुरम, कोझिकोड, कासरगोड, कन्नौर वायानाड जिले के गैर सहायता प्राप्त स्कूलों को मान्यता तथा सी बी एस ई/आई सी एस ई को अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्णय लिया। यह भी अभिकथित है कि राज्य सरकार ने मौजूदा स्कूलों के अपग्रेडेशन की मंजूरी देने के संबंध में एक नीति अपनाई है और न्यायिक आदेशों में भी यही निर्णय दिया गया । यदि याचिकाकर्ता स्कूल के अपग्रेडेशन के आवेदन को अनुमोदन दिया गया तो इसका वित्तीय प्रभाव भी पड़ेगा क्योंकि अध्यापन और गैर अध्यापन कर्मचारियों को वेतन की अदायगी राज्य सरकार को करनी होती है।

प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता ने दलील दी है कि याचिकर्ता स्कूल कोझिकोड़ जिले में पड़ता है जो एक पिछड़े जिले के रुप में जाना जाता है जहां अपग्रेडेशन दिया जा सकता है । चूंकि याचिकाकर्ता स्कूल एक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था है इसकी हाई स्कूल में अपग्रेडेशन की विधिक आकांक्षा है । साथ ही अन्य हाई स्कूल 3 से 5 किलोमीटर दूर पड़ते हैं । मुस्लिम लड़कियां काफी दूर इन स्कूलों में जाने की अनिच्छुक होती हैं । राज्य सरकार ने अल्पसंख्यक समुदायों को बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए पहले ही अन्य स्कूलों को हाई और हायर सेकैण्डरी स्कूल में अपग्रेड करने के लिए आदेश जारी किए हैं। इसलिए याचिकाकर्ता को स्कूल अपग्रेडेशन न करने का निर्णय संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 16 के अर्थों में भेदभाव का परिचायक है ।

प्रथम प्रश्न तो यह निर्धारित करना है कि वर्तमान याचिका आयोग के क्षेत्राधिकार में आती है या नहीं । तथ्यों का वास्तविक प्रकटन प्रथम साक्ष्यतः सिद्ध परता है कि यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) में निहित शिक्षा के अधिकारों का उल्लंघन है और इसीलिए वर्तमान याचिका पर विचार करने आयोग का क्षेत्राधिकार है ।

दूसरा प्रश्न जो विचारार्थ उठता है, वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता स्कूल को अपग्रेड करने से मना करने में संबंधित राज्य सरकार की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है ? यह संदेह से परे है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत याचिकाकर्ता विद्यालय एक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था है और ये केरल राज्य के एक पिछड़े हुए जिले में स्थित है । याचिकाकर्ता ने प्रथम दृष्टया यह सिद्ध कर दिया कि उसके पास हाई स्कूल के रुप में अपग्रेड करने के लिए अपेक्षित आधारभूत संरचना तथा अनुदेशात्मक सुविधाएं उपलब्ध है । इस तथ्य को याचिकाकर्ता स्कूल के अपग्रेडेशन के लिए जिला शिक्षा अधिकारी की सिफारिशों से पुष्टि मिलती है। याचिकाकर्ता स्कूल मुस्लिम समुदाय के पिछड़े सुविधाहीन वर्ग की शैक्षिक जरुरतों की पूर्ति करता है । याचिकाकर्ता स्कूल एक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था है तथा ये भी ध्यान में रखना होगा कि इसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यक संस्था के रुप में मूलभूत अधिकार प्राप्त है । सचिव, कैन्नोर जिला मुस्लिम शैक्षिक एसोसिएशन, कन्नौर बनाम केरल राज्य व अन्य एआईआर 2010 एससीसी 1955 में किए गए अभिकथन के मद्देनजर याचिकार्ता स्कूल अपने अपग्रेडेशन की विधिक आकांक्षा रखता है । सामान्य रुप में भेदभावपूर्ण रवैया का आरोप लगाते हुए याचिकाकर्ता का विशिष्ट निष्कर्ष था कि यहां एक और प्रबंधकों को एक ओर तो एक बाद एक हाई स्कूल बनाने की मंजूरी दी जा रही थीं वहीं याचिकाकर्ता स्कूल को हाई स्कूल खोलने की अनुमति नहीं दी जा रही थी यह स्पष्ट रुप से भेदभाव था। इसलिए याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 16 की प्रताड़ना का सहारा लेते हुए इस भेदभाव के खिलाफ अपना मामला पेश किया है ।

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को `अपनी इच्छा` का शैक्षिक संस्थान खोलने और चलाने का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 30 (1) के पीछे औचित्य यही है कि अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्थान खोलने एवं चलाने के लिए सुरक्षा प्रदान की जाए । ये अधिकार इनके उल्लंघन के खिलाफ प्रतिबंध द्वारा सुरक्षा प्रदान करते हैं और लागू करने का वचन देकर इसे मजबूत करते हैं । प्रतिबंध अनुच्छेद 13 में दिए गए है जो ऐसे कानून या नियम या विनियम बनाने से राज्य को रोकते हैं जो संविधान के अध्याय-III के अंतर्गत प्रत्याभूत मूलभूत अधिकारों को कमतर या सीमित करते है तथा इनसे असंगत कानून, नियम या विनियम को वीटों करने की धमकी देते हैं।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय `राष्ट्र के विवेक को दिया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने के प्रयोजन से अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं खोलने और चलाने से नहीं रोका गया है ताकि वे उन्हें सही अर्थों में देश के स्त्री-पुरुष बना सके । अल्पसंख्यकों को संविधान के इस अनुच्छेद 30 (1) के तहत सुरक्षा देने का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित तथा मजबूती देना है । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का आशय अपने देश में बालक बालिकाओं का समन्वित विकास करना है । यह शिक्षा के माध्यम द्वारा स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व की सच्ची भावना है । यदि अल्पसंख्यकों को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के तहत अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार नहीं दिया तो वह स्वयं को अलग थलग और पृथक समझेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।

केरल शिक्षा विधेयक (ऊपर) के मामले में एस आर दास सी जे ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

'' विचाराधीन अनुच्छेद का वास्तविक अर्थ और तात्पर्य की व्याख्या का मूल-भाव '' उनकी पसन्द के '' शब्द हैं । यह कहा गया है कि प्रमुख शब्द '' पसन्द '' है तथा उस अनुच्छेद की विषय-वस्तु इतनी विस्तृत है जितना कि विशेष अल्पसंख्यक समुदाय की पसन्द इसे बना सकती है । ''

सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एस एस सी 558 में सर्वोच्य न्यायालय ने यह माना है कि अनुच्छेद 30 (1) में `अपनी पसंद के` शब्द अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं, जिसकी वे स्थापना करना चाहते हैं, का स्वरुप चुनने के अपार विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण या सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या दोनों प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना कर सकते हैं ।

इस परिस्थिति में, पी ए ईनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धत करना उपयोगी होगा :-

''..... अनुच्छेद 30 (1) का उद्देश्य यह देखना है अल्पसंख्यकों की आकांक्षाओं को पूरा किया जा रहा है, कि उनके बच्चों का उचित तरीके तथा कुशलता से पालन-पोषण किया जाए और वे उच्चतर विश्वविद्यालय में शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें और ऐसी बौद्विक उपलब्धियों से सुज्जित होकर संसार में बाहर जाएं, जो कि उन्हें लोक सेवाओं सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सहित उच्चतर शिक्षा प्रदान कर रहे शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए योग्य बनाएगी । इस प्रकार, अल्पसंख्यकों के हित में, अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले दोहरे उद्देश्य हैं : -

(i) ऐसे अल्पसंख्यकों को अपने धर्म और भाषा को संरक्षित करने के योग्य बनाना, और (ii) ऐसे अल्पसख्ंयकों के बच्चों को एक सम्पूर्ण, अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करना । जब तक कि संस्था उपरोक्त कथित दो उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, उन्हें पूरा करते हुए तथा जारी रखते हुए अपने अल्पसंख्यक स्वरुप को बनाए रखती है, वह संस्था एक अल्पसंख्यक संस्था बनी रहेगी।''

`अपनी इच्छा` के शैक्षिक संस्थान की स्थापना के अधिकार का तात्पर्य ऐसे संस्थान वास्तव में स्थापित करना है जो कारगर ढंग से अपने समुदाय और अपने शिक्षण संस्थानों के लिए समर्पित विद्धतजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956) ।

संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार राज्य सरकार की नीति पर बलि नहीं चढ़ाए जा सकते। प्राथमिक और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सच्चर समिति द्वारा व्यापक अध्ययन द्वारा मूल्यांकित अभिलक्ष्णों में यह दर्शाया गया है कि तुलनीय समूहों में मुस्लिम समुदाय देश में शिक्षा के मामले में अपेक्षाकृत बहुत पीछे हैं । केन्द्र सरकार ने भी मुस्लिम समुदाय की साधनहीनता के विभिन्न पहलुओं के उपचार के लिए सार्थक प्रयास किए हैं और मुस्लिम समुदाय की मुख्यधारा में लाने के प्रयास भी किए हैं। परन्तु मुख्यधारा से कटकर रहने की प्रवृत्ति से राज्यीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर संघर्ष करना अपेक्षित है । शिक्षा में मुक्त करने की क्षमता होती है लेकिन कई बार राज्य सरकारों में दिग्भ्रमित तत्वों द्वारा इससे वंचित कर दिया जाता है । वर्तमान मामला शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिमों को वंचित करने का ज्वलंत उदाहरण है ।

चूंकि याचिकाकर्ता स्कूल हाई स्कूल के रुप में अपग्रेडेशन के लिए समस्त आधारभूत और अनुदेशात्मक सुविधाएं रखता है और यह अपने क्षेत्र के मुस्लिम समुदाय के पिछड़े सुविधाहीन तबके की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर रहा है, अतः राज्य सरकार की अपग्रेडेशन न करने की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में निहित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

सचिव, कन्नौर जिला मुस्लिम शिक्षा एसोसिएशन, कन्नौर बनाम केरल राज्य तथा अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्य न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला लेते हुए हम ठोस सिफारिश करते हैं कि राज्य सरकार याचिकाकर्ता स्कूल के इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि यह स्कूल क्षेत्र के मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के अत्यंत साधनहीन पिछड़े वर्ग की शैक्षिक जरुरतों को पूरा कर रहा है, याचिकाकर्ता स्कूल के अपग्रेडेशन की अनुमति प्रदान करें ।

2010 की अपील सं 07

एक बी एड कॉलेज़ अल्पसंख्यक संस्था की स्थापना के लिए अनापत्ति पत्र देने से मना करने के आदेश के खिलाफ अपील

याचिकाकर्ता : दि कलगीधर ट्रस्ट, बारु साहिब, जिला सिरमौर, वाया राजगढ़, हिमाचल प्रदेश

प्रतिवादी : निदेशक, उच्च शिक्षा, हिमाचल प्रदेश सरकार, शिमला

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम, 2004 (संक्षेप में अधिनियम) के लिए राष्ट्रीय आयोग की धारा 12 `क` के अंतर्गत दर्ज इस अपील में बारु साहिब, जिला सिरमौर, वाया राजगढ़, हिमाचल प्रदेश में अल्पसंख्यक संस्था के रुप में बी एड कालेज खोलने के लिए आवेदक को अनापत्ति देने से मना करने के आदेश को चुनौती दी गई है । आवेदक ने बारु साहिब में बी एड कालेज खोलने के लिए अनापत्ति देने हेतु प्रतिवादी के पास दिनांक 12-2-2010 को आवेदन किया जिसे राज्य सरकार के सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपने 30-4-2010 के पत्र द्वारा मना कर दिया गया । ये पत्र 14-5-2010 को आवेदक को प्राप्त हुआ । आवेदक के अनुसार 30-4-2010 का आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

प्रतिवादी ने याचिका का प्रतिविरोध इस आधार पर किया कि हिमाचल प्रदेश में बहुत से प्राइवेट बी एड कालेज पहले से ही मौजूद है । हिमाचल प्रदेश राज्य में किसी अन्य बी एड कालेज की अनुमति/मान्यता देना जरुरी नहीं है । प्रतिवादी के अनुसार यह अभिकथन किया गया है कि राज्य में इस समय 70 से अधिक बी एड कालेज है जिनकी वार्षिक प्रवेश क्षमता 8700 विद्यार्थियों की है। यह भी अभिकथन किया गया कि वर्ष 1988, 1995 तथा 1997 के वर्ष में अपनी डिग्री विभिन्न श्रेणियों में लेने वाले प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक बैचवार भर्ती प्रक्रिया के तहत अभी नियुक्ति के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं । यही नहीं हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय भी आई सी डी ई ओएल के अंतर्गत 450 विद्यार्थियों की वार्षिक प्रवेश क्षमता वाला बी एड कालेज चला रहा है । पुनः इग्नू से काफी संख्या में विद्यार्थी बी एड कर रहे हैं । राज्य सरकार के साथ परामर्श से एन सी टी ई द्वारा दी गई इस सार्वजनिक सूचना का भी आश्रय लिया है कि 2010-11 के शैक्षिक वर्ष के लिए बी एड कोर्स चलाने के लिए हिमाचल प्रदेश राज्य में किसी संस्था को मान्यता/अनुमति प्रदान नहीं की जाए । अतंतः यह अभिकथन भी किया गया कि राज्य सरकार द्वारा लिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए राज्य में काफी संख्या में प्राइवेट बी एड कालेज मौजूद होने के कारण हिमाचल प्रदेश में बी एड कालेज के लिए मान्यता/अनुमति देने की जरुरत नहीं है ।

पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों को देखते हुए जो मुद्दा विचारार्थ उठा है वह यह कि क्या 30-4-2010 का आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है ?

प्रारंभ में, हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि संविधान का अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को `अपनी पसंद` की शैक्षिक संस्था स्थापित करने और उसके संचालन का मूलभूत अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के पीछे औचित्य अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की संस्था को चलाने की सुरक्षा प्रदान करना है । इन अधिकारों को उल्लंघन की स्थिति में निषेध के माध्यम और लागू करने के वचन से सुरक्षित किया गया है । निषेध अनुच्छेद-13 में समाहित है जो राज्य को ऐसे किसी भी कानून या नियम बनाने से रोकते है जो संविधान के अध्याय-III के तहत प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त या संकुचित करते हैं या इससे असंगत किसी कानून, नियम या विनियम को वीटो की धमकी देते हैं ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1389 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय `राष्ट्र के विवेक' को दिया है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा देने के प्रयोजन से अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं खोलने और चलाने से नहीं रोका गया है ताकि वे उन्हें सही अर्थों में देश के स्त्री-पुरुष बना सके । अल्पसंख्यकों को संविधान के इस अनुच्छेद 30 (1) के तहत सुरक्षा देने का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित तथा मजबूती देना है । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा क्षेत्र का आशय अपने देश में बालक बालिकाओं का समन्वित विकास करना है। यह शिक्षा के माध्यम द्वारा स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व की सच्ची भावना है । यदि अल्पसंख्यकों को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के तहत अपनी इच्छा के अनुसार शैक्षिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार नहीं दिया तो वह स्वयं को अलग थलग और पृथक समझेंगे । सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।

संदर्भ हेतु केरल शिक्षा बिल (उपरोक्त) में श्री एस आर दास मुख्य न्यायाधीश ने निम्न टिप्पणी दी :-

> ''विचाराधीन अनुच्छेद के सही अर्थ और प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए मुख्य शब्द `अपनी पसंद` है यह कहा जाता है कि प्रभावशाली शब्द `पसंद` है और इस अनुच्छेद का सारतत्व उतना ही व्यापक है जितना किसी अल्पसंख्यक समुदाय की पसंद इसे बना सकती है ।''

'सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) एस एस सी 558 में सर्वोच्य न्यायालय ने यह माना है कि अनुच्छेद 30 (1) में `अपनी पसंद के` शब्द अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं, जिसकी वे स्थापना करना चाहते हैं, का स्वरुप चुनने के अपार विकल्प प्रदान करता है । वे अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण या सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या दोनों प्रयोजनों के लिए संस्था की स्थापना कर सकते हैं ।

इस मौके पर पी ए इनामदार एंड अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की निम्नलिखित टिप्पणी का मुख्यांश देना उपयोगी होगा :-

"..... अनुच्छेद 30 (1) में निहित उद्देश्य अल्पसंख्यकों की यह इच्छा पूरी होते हुए देखना है उनके बच्चों का पालन पोषण उचित प्रकार से तथा प्रभावी ढंग से हो तथा उच्च विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए वे योग्यता हासिल करें तथा संसार में वह ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों के साथ भली-भांति तैयार होकर प्रवेश करें जिससे कि वे सार्वजनिक सेवाओं, सामान्य पंथ निरपेक्ष शिक्षा सहित उच्च अनुदेश देने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए स्वयं को उपयुक्त पाएं । इस प्रकार अल्पसंख्यकों के हितार्थ निम्नानुसार है :-

(i) ऐसे समुदाय को अपना धर्म और भाषा के संरक्षण के लिए योग्य बनाना (ii) तथा ऐसे समुदाय से संबंध प्रदान करना । जब तक ये संस्थान उपर्युक्त उक्त दो उद्देश्यों को हासिल करके और हासिल करते हुए अपने अल्पसंख्यक चरित्र को बनाए रखते है जब तक वे संस्थान एक अल्पसंख्यक संस्थान बने रहेंगे ।"

`अपनी पसंद`की शैक्षिक संस्था की स्थापना के अधिकार का तात्पर्य वास्तव में ऐसी संस्थाओं को स्थापित करना है जो कारगर ढंग से अपने समुदाय और अपने शिक्षण संस्थानों के लिए समर्पित विद्धतजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । (देखें ए आई आर 1958 एस सी 956)

अतएव आवेदक को बारु साहिब में अपनी पसंद का बी एड कालेज खोलने का अधिकार है । यह सुस्थापित है कि ऐसा कोई भी कानून या कार्यकारी आदेश, जो संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रत्याभूत अधिकारों की भावना का अतिलंघन करता है तो वह अतिउल्लंघन की सीमा तक अमान्य है । संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार का आशय प्रभावी होना है और इन्हें किसी प्रशासनिक अत्यावश्यकता द्वारा कम नहीं किया जा सकता । किसी भी प्रकार की प्रशासनिक अथवा वित्तीय असुविधा या कठिनाई इन मौलिक अधिकारों के अतिउल्लंघन को उचित नहीं ठहरा सकती । इसलिए संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में संरक्षित आवेदक के मौलिक अधिकारों को राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय की वेदी पर न्यौच्छावर नहीं किया जा सकता है । एन सी टी ई द्वारा जारी जिस सार्वजनिक सूचना का प्रतिवादी ने आश्रय लिया है उसमें भी विशेष रुप से उल्लेख किया गया है कि यह अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं पर लागू नहीं होगा । आवेदक की ओर से यह तर्क भी दिया गया है कि हिमाचल प्रदेश राज्य में सिख समुदाय से संबद्ध कोई भी बी एड कालेज नहीं है । इसलिए हिमाचल प्रदेश में मौजूद बी एड कालेज संविधान में प्रतिष्ठापित अनुच्छेद 30 (1) के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को उचित नहीं ठहरा सकते । यह भी तर्क दिया गया कि जिन लोगों ने राज्य में स्थित बी एड कालेजों से बी एड कोर्स किया है वे रोजगार लेने के लिए हिमाचल प्रदेश राज्य तक सीमित नहीं है । इनमें बहुतों को बाहर रोजगार मिल गया होगा । इसके बारे में राज्य सरकार के पास अपेक्षित जानकारी उपलब्ध नहीं है । पुनः यह माना गया कि बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 के अधिकारों के कार्यान्वयन से प्रशिक्षित स्नातक अध्यापकों की मांग और बढ़ेगी तथा एन सी टी ई/राज्य सरकार को राज्य में और बी एड कालेज खोलने की अनुमति नहीं देने की अपनी नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए । यह भी कहा गया है कि कलगीधर सोसायटी ने पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में 70 से अधिक स्कूल पहले ही स्थापित कर चुकी है । आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा देने के साथ-साथ ये अकादमियां विद्यार्थियों को सिख संस्कृति, परंपरा तथा रीति-रिवाजों, जो सिख समुदाय से संबंध रखने वाले बच्चों को बेहतर ढंग से तैयार करने के लिए अनिवार्य है उनको शामिल करते हुए सिख धर्म के बारे में जानने के पर्याप्त अवसर प्रदान

करती हैं । समुदाय के माता-पिता भी अपने बच्चों को सिख धर्म, संस्कृति और परंपराओं को सिखाने के लिए प्रेरक माहौल और वातावरण प्रदान करने वाले इन संस्थानों में शिक्षा का अवसर प्रदान करते हैं । वह भी अभिपथन किया गया कि अकाल अकादमी ने निकट भविष्य भविष्य में तकरीबन 500 अकादमी स्थापित करने का लक्ष्य रखा है और इस मांग को पूरा करने के लिए अकाल अकादमी को प्रशिक्षित अध्यापकों की जरुरत है और इसीलिए आवेदक के लिए स्वयं बी एड कालेज खोलना जरुरी बन गया है ।

30-4-2010 के आक्षेपित आदेश में यह उल्लेख नहीं है कि आवेदक द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र दिए जाने की अर्जी को राज्य सरकार की किस नीति के आधार पर रद्द किया गया है। यह साधारण रुप में यही कहता है कि `इस समय राज्य सरकार नये बी एड कालेज खोलने के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी नहीं कर रहा है । `इसलिए ये आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 30 (1) का सीधे तौर पर विरोध करता है और ऐसा आक्षेपित कानूनी तौर पर तर्कसंगत ही नहीं है।

उपर्युक्त कारणों को देखते हुए अपील अधिनियम की धारा 12 (क) के अंतर्गत स्वीकार्य है और 30-4-2010 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा अपास्त/रद्द किया जाता है । बारु साहिब हिमाचल प्रदेश में प्रस्तावित बी एड कालेज खोलने के लिए आवेदक को अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है ।

2010 का मामला सं 838

सहायक अध्यापक की नियुक्ति हेतु अनुमोदन देने के लिए राज्य को निदेश देने का अनुरोध करना ।

याचिकाकर्ता : आजाद मैमोरियल इन्टर कालेज, डाकघर-डासना टाउन, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

प्रतिवादी : 1. जिला स्कूल निरीक्षक, उत्तर प्रदेश सरकार, नंदिग्राम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

2. संयुक्त निदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार, मेरठ, उत्तर प्रदेश

याचिकाकर्ता कालेज को जिला शिक्षा अधिकारी, मेरठ के 16-7-1976 के आदेश के तहत अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था के रुप में घोषित किया गया है । याचिकाकर्ता कालेज की शुरुवात जुनियर हाई स्कूल के रुप में हुई थी और वर्ष 1969 में इंटरमीडिएट स्तर तक इसको मान्यता प्राप्त हो गई । साहित्य ग्रुप तथा विज्ञान ग्रुप की इन्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए सरकार द्वारा 1-3-1983 में मान्यता दी गई। हाई स्कूल कक्षाओं में विज्ञान ग्रुप में जीवविज्ञान विषय शुरु किया गया था और शिक्षा विभाग द्वारा 23-3-1983 के आदेश के तहत उसे मान्यता दी गई थी। अध्यापकों को वेतन सरकार द्वारा दिया जाता है । दो अध्यापक नामतः श्री युसुफ अली और श्री जे डी रे की सेवानिवृत्ति के परिणामस्वरुप प्रबंधन ने यु पी इन्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 16 च च में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार खाली पदों को भरने का निर्णय लिया । याचिकाकर्ता कालेज के प्रबंधन ने श्री शकील और सुश्री शमा परवीन का चयन 10-7-2009 के पत्र के माध्यम से सहायक अध्यापक के रुप में किया। उक्त अध्यापकों के चयन और नियुक्ति से संबंधित अपेक्षित दस्तावेज प्रतिवादी के पास उनका वेतन जारी करने के लिए भेजे गए । चार महीने बीत जाने के बाद याचिकाकर्ता को जिला स्कूल निरीक्षक की ओर से 20-1-2010 का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 2-6-1976 के सरकारी आदेश में समाहित निर्देशों के अनुसार पदों को भरने के लिए निदेश दिया गया । याचिकाकर्ता ने पत्र का उत्तर देते हुए खाली पदों तथा पदों के लिए की गई नियुक्ति का पूरा ब्यौरा दिया । चूंकि प्रतिवादी से कोई अनुमोदन

नहीं मिला है इसलिए याचिकाकर्ता ने उक्त सहायक अध्यापकों के चयन और उनका वेतन जारी कराने के लिए अनुमोदन देने हेतु प्रतिवादी को निदेश देने के संबंध में यह याचिका दर्ज की है ।

नोटिस देने के बावजूद प्रतिवादी प्रस्तुत नहीं हुआ । अतः मामले में उनके विरद्व एकपक्षीय कार्यवाही की जाती है ।

यहॉ निर्धारण के लिए यह मुद्दा उठता है कि क्या याचिकाकर्ता कॉलेज के प्रबंधक द्वारा की गई सहायक शिक्षकों के चयन और उनकी नियुक्ति का अनुमोदन न देने में प्रतिवादियें की अपेक्षित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों का उल्लंघन है ।

याचिकाकर्त्ता का कॉलेज एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है जो संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत आता है । टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य {2002 (8)एस सी सी 481} में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति करना संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित करने के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है । यह भी निर्णय दिया गया कि राज्य या उसकी एजेंसियो से केवल सहायता प्राप्त करने पर एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का स्वरप समाप्त नहां हो जाता । दूसरे शब्दें मे सहायता की प्राप्ति, सहायता प्राप्त कर रहे अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानो के स्वरप और प्रकृति में परिवर्त्तन नहीं करती है ।

इस अवसर पर हम देख सकते हैं कि सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम् टी.जोस तथा अन्य (2003 की सिविल अपील सं. 8599- निर्णय की तारीख 27.11.2006) में उच्चतम न्यायालय के हाल ही में किए गए निर्णय में कहा गया है कि "अनुच्छेद 30(1) में स्पष्ट रुप से अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता, जो कि शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना या उनके संचालन करने में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को किसी तरह से कम या उन्हें संक्षिप्त करती हों ।" राज्य जो कि एक शैक्षणिक संस्था को सहायता प्रदान करता है, निश्चित रुप से ऐसी शर्तें लागू कर सकता है जो कि शिक्षा के उच्च स्तर को यथोचित रुप से बनाए रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि वित्तीय बोझ में राज्य की हिस्सेदारी होती है । अन्य शब्दों में सहायता की वह शर्तें, जिनसे सारभूत प्राबंधिक अधिकार का अभ्यर्पण नही होता, संवैधानिक प्रत्याभूतियों के साथ असंगत नहीं होगी, हालांकि वे प्रशासन के कुछ पहलूओं का अप्रत्यक्ष रुप से अतिक्रमण करती हों । स्पष्ट रुप से वह सभी शर्तें जिनका एक शैक्षणिक संस्था द्वारा प्राप्त की गई सहायता के यथोचित उपयोग के साथ संबंध है, को लागू किया जा सकता है । इसलिए टी एम ए पाई फाऊंडेशन(ऊपर) में यह निर्णय किया गया है कि शैक्षणिक स्वरुप और मानकों को सुनिश्चित करने के लिए तथा शैक्षिक उत्कृष्ट ता को बनाए रखने के लिए विनियामक उपायों को लागू किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे विनियम संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार में किसी तरह से बाधा नहीं डालते हैं । इस संबंध में, टी.एम.ए. पाई(ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ लिया जा सकता है

> "इसका तात्पर्य है कि अनुच्छेद 30(1) के अधीन दिए गए अधिकार में अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता जो कि उस संस्था की स्थापना या उसका संचालन करने में अल्पसंख्यक संस्था के अधिकारों को किसी तरह से कम या उन्हें संक्षिप्त करती हों । वह शर्तें जिन्हें आम तौर पर सहायता प्राप्त कर रही शैक्षणिक संस्थाओं पर लागू

करने की अनुमति दी जा सकती है, वह निश्चित रुप से अनुदान के यथोचित उपयोग तथा अनुदान के उद्देश्य को पूरा करने से संबंधित होनी चाहिए । इस प्रकार निर्धारित ऐसी कोई दीर्घकालिक शर्तें, जैसे निधियों के उपयोग के संबंध में, उचित ढंग से लेखा परीक्षा,व तौर-तरीकों जिनके अनुसार निधियों का उपयोग किया जाना है, लागू होगी तथा यह शैक्षिक संस्थाओं की अल्पसंख्यक दर्जे को कम नहीं करेंगी । ऐसी शर्तें तभी मान्य होंगी यदि इन्हें अनुदान प्राप्त कर रही अन्य शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू किया गया है।"

सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज(ऊपर) मामले में टी एम ए पाई फाऊंडेशन(ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की व्याख्या करते समय यह निर्णय किया गया कि राज्य निम्नलिखित का निर्धारण कर सकता है-

(i) नियुक्तियां करने के लिए न्यूनतम अर्हताएं, अनुभव तथा योग्यता से संबंधित अन्य मानदण्ड।

(ii) स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण के साथ हस्तक्षेप किए बिना कर्मचारियों की सेवा शर्तें ।

(iii) कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण के लिए एक तंत्र ।

(iv) शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके संचालन के अधिकार को कम या संक्षिप्त किए बिना शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा सहायता के यथोचित उपयोग के लिए शर्तें ।

यह निर्णय भी किया गया कि यदि कोई विनियम स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में बाधा उत्पन्न करता है, या शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन के अधिकार को किसी अन्य प्रकार से संक्षिप्त/कम करता है, तो ऐसा विनियम, उस सीमा तक, अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिए अप्रयोज्य होगा ।

इस प्रकार, यह सुनिर्धारित है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए, शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति का अधिकार, संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के प्रशासन के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है ।अपेक्षित अर्हताएं और अनुभव को निर्धारित करने की सीमा तक या अन्यथा स्वयं संस्था के हितों में संवर्धन करने के अलावा, उस पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई जा सकती, बल्कि इसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार के उल्लंघन के रुप में माना जाए ।[केरल राज्य बनाम् वेरी रेव मदर प्रॉविन्सियल, 1970(2) एस सी सी 417, द अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम् गुजरात राज्य 1974(1) एस सी सी 717, फ्रेंक एन्थनी पब्लिक स्कूल कर्मचारी संघ बनाम् भारत का संघ,1986(4) एस सी सी 707, डी ए वी कॉलेज बनाम् पंजाब राज्य,1971(2) एस सी सी 269, ऑल सेंट्स हाई स्कूल बनाम् आंध्र प्रदेश सरकार,1980(2) एस सी सी 478, सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय,1992(1) एस सी सी 558, माध्यमिक शिक्षा एवं अध्यापन प्रशिक्षण बोर्ड बनाम् संयुक्त निदेशक, लोक शिक्षण, सागर 1998(8) एस सी सी 555] ।

इस प्रकार, किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन द्वारा अपने शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के लिए किसी योग्य व्यक्ति को चुनने के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के संरक्षणात्मक

आवरण द्वारा पूरी तरह सुरक्षा प्रदान की गई तथा पद की अर्हताएं तथा सेवा शर्तें निर्धारित करने के अलावा, इसे किसी विधायी निर्णय या कार्यकारी आदेश द्वारा कम नहीं किया जा सकता । संविधान का अनुच्छेद 13, राज्य को ऐसे किसी अधिनियम, नियमों या विनियमों को बनाने से रोकता है, जो कि संविधान के अध्याय-।।। के अधीन गारंटीकृत किसी भी मूल अधिकार का उल्लंघन करते हों । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति की स्वतंत्रता देना, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अर्थ में,शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन के अधिकार के एक अनिवार्य पहलू के रुप में हमेशा स्वीकार किया गया है ।

शिक्षण तथा गैर शिक्षण स्टाफ के सदस्य को चुनने का अधिकार पूर्णतया एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की प्रबंध समिति की शक्तियों के अधीन आता है और इस शक्ति को प्राधिकारियों द्वारा न तो नियंत्रित किया जाता है और न ही नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) में स्थापित मौलिक अधिकारों का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । पी.ए.ईनामदार बनाम् महाराष्ट्र राज्य(2005) 6 एससीसी 537 । इस स्थिति में, प्रतिवादी द्वारा चुनने की इस शक्ति के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । याचिकाकर्ता विद्यालय के प्रबंधन को अपने रिक्त पदों को इस शर्त के अध्यधीन भरने का अधिकार है कि नियंत्रक/विनियामक प्राधिकारियों को संवीक्षा करने तथा यह पता लगाने का अधिकार है कि क्या चयन समिति द्वारा चयन किया गया व्यक्ति इस प्रकार निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हता को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति करने के लिए पात्र और उपयुक्त है ।

याचिकाकर्त्ता कॉलेज के प्रबंधक श्री शमशाद अली खान ने यह पुष्टि करते हुए शपथपत्र दाखिल किया है कि सहायक शिक्षकों के सेवानिवृत्त हो जाने पर सहायक शिक्षकें के 2 पद रिक्त हो गए थे । याचिकाकर्त्ता ने 14062009 को टाइम्स आफ इंडिया अंगेजी और 11062009 को अमर उजाला (हिन्दी) में विज्ञापन प्रकाशित किया । अतः याचिकाकर्त्ता ने अधिनियम के अंतर्गत निर्मित के विनियम 17 की आवश्यकता को पूरा किया है । श्री शमशाद अली खान ने आगे उल्लेख किया कि चयन समिति विधिवत रप में गठित की गई और श्री शकील और सुश्री शमा परवीन का चयन कर उन्हें विद्यमान स्वीकृत पदों के प्रति सहायक शिक्षकों के पद पर नियुक्त किया गया । यह भी अभिकथित है कि उक्त सहायक शिक्षकों के चयन और नियुकति से संबंधित संगत दस्तावेज प्रतिवादियों को भेज दिए गए थे परन्तु उनसे किसी तरह का उत्तर प्राप्त नही हुआ । अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) यह समादेश देती है कि उप शिक्षा निदेशक, अथवा निदेशक, जैसा भी मामला हो, धारा 16 चच के अंतर्गत किए गए चयन, जहॉ कि चयनित व्यक्ति पात्र विहित न्यूनतम योग्यता रखता है और वह अन्यथा पात्र है, के अनुमोदन को नहीं रोकेगा । इस स्थिति में, श्री शकील और सुश्री शमा परवीन नामक सहायक शिक्षकों की शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के अंतर्गत विहित प्रकिया के अनुसार किए गए चयन के अनुमोदन को रोके रखने मे प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) और अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) का उल्लंघन है। यहॉ पर उल्लेख करने की आवश्यकता है कि सिंधी एजुकेशन सोसाइटी एवं अन्य बनाम मुख्य सचिव, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार एवं अन्य 2010 ए आइ आर एम सी डब्ल्यू 5393 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था मे रोजगार में आरक्षण लागू नहां किया जा सकता । याचिका मे यह उल्लेख किया गया है कि उक्त सहायक शिक्षको के चयन और नियुक्ति से संबंधित सभी संगत दस्तावेज 10072009 को प्रतिवादियों को प्रस्तुत कर दिए गए थे परन्तु उनसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। उ प्र इंटरमीडियट शिक्षा अधिनियम 1921 के अंतर्गत गठित विनियमों के विनियम 1.7(घ) में स्पष्ट रुप से यह निर्धारित है कि यदि अधिनियम

की धारा 16 च च की उप धारा (4) के अन्तर्गत कोई अनुमोदन सक्षम प्राधिकारी द्वारा दस्तावेज प्राप्ति के एक माह के भीतर नहीं दिया जाता है तो अनुमोदन दे दिया गया समझ लिया जाएगा । उक्त धारणा प्रावधानों के दि्ष्टगत हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि प्रतिवादियो ने उपर्युक्त सहायक शिक्षकों के चयन का अनुमोदन दे दिया है ।

पूर्वोक्त कारणों से हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि सहायक शिक्षकों नामतः श्री शकील और सुश्री शमा परवीन का चयन और उनकी नियुक्ति याचिकाकर्त्ता कॉलेज में प्रबंधन द्वारा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के अंतर्गत विहित प्रकिया के अनुसार ही की गई थी और इसलिए इस चयन का अनुमोदन रोकने में प्रतिवादियों की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों और अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) के अधिदेश का उल्लंघन है । हम यह पाते और निर्णय देते है कि उक्त सहायक शिक्षक अपने कार्यग्रहण करने की तारीख से ही राज्य सरकार से वेतन प्राप्त करने के हकदार भी हैं । उक्त निष्कर्ष अधिनियम की धारा 11 (ख) के अर्थों में इसके विधिवत कार्यान्वयन हेतु प्रतिवादियों को सूचित किए जाएं ।

2010 का मामला सं 839

एक अल्पसंख्यक संस्था में शिक्षको की नियुकति के लिए अनुमोदन देने हेतु राज्य को निदेश देने हेतु अनुरोध

याचिकाकर्ता आजाद मेमोरियल इंटर कॉलेज , दासना टाऊन गाजियाबाद, उ प्र

प्रतिवादी : 1. स्कूलों के जिला इंस्पैक्टर उ प्र सरकार, नंदीग्राम, गाजियाबाद, उ प्र

2. संयुक्त निदेशक, शिक्षा, उ प्र सरकार, मेरठ, उ प्र

याचिकाकर्त्ता कॉलेज को जिला शिक्षा अधिकारी, मेरठ के दिनांक 16-07-1976 के आदेश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन आने वाली एक अल्पसंख्यक संस्था घोषित किया गया है। पत्र सं स्टेनो/17578/196869 दिनांक 28-08-1969 द्वारा प्रतिवादी ने हिन्दी, अंगेजी, समाज विज्ञान, उर्दू, कला, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र और इतिहास में प्राध्यापकों के 8 पद स्वीकृत किए इसके अलावा प्रधानाचार्य का एक पद है । एक श्री रियाज खान जो प्राध्यापक और प्रधानाचार्य के पद के प्रति कार्य कर रहे थे, 30-06-1999 को सेवानिवृत हुए, जिसके बाद प्राध्यापक के केवल 7 पद ही उपलब्ध थे । दिनांक 30-06-2009 को श्री मोहम्मद शफीक के सेवानिवृत्त हो जाने के पश्चात अर्थ शास्त्र मे प्राध्यापक का पद भी रिक्त हो गया । याचिकाकर्त्ता कॉलेज ने अर्थशास्त्र में प्राध्यापक के पद के लिए विधिवत रप मे विज्ञापन दिया और उ प्र इंटरमीडियट शिक्षा अधिनियम 1921 (संक्षेप मे अधिनियम) की धारा 16 च च के अंतर्गत विहित प्रकिया के अनुसार श्री जावेद खान को प्राध्यापक के रुप मे चयन किया । इसके पश्चात दिनांक 10-07-2009 के पत्र द्वारा अपेक्षित दस्तावेज प्रतिवादियों को अनुमोदन के लिए भेज दिए गए । बारबार अनुस्मारक देने के बावजूद प्रतिवादियो से कोई अनुमोदन प्राप्त नहीं हुआ । तथापि, याचिकाकर्त्ता को प्रतिवादियो से दिनांक 21-2010 का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उनसे सरकारी नियम के अनुसार सभी पदों को भरने के लिए प्रस्ताव भेजे जाने के लिए कहा गया था । याचिकाकर्त्ता ने प्राध्यापक के खाली स्वीकृत पद के प्रति भी जावेद खान के चयन और नियुक्ति सहित रिक्त पदों का ब्यौरा देते हुए उत्तर दिया । चूंकि याचिकाकर्त्ता के जवाब का कोई प्रत्युत्तर नही मिला, अतः याचिकाकर्त्ता ने इस आयाग से यह अनुरोध करते हुए संपर्क किया

कि वे श्री जावेद खान के चयन और नियुक्ति को अनुमोदित करने और उनका वेतन जारी करने के लिए प्रतिवादियो को निदेश दें ।

नोटिस दिए जाने के बावजूद प्रतिवादियो की तरफ से कोई हाजिर नही हुआ । अतः इस मामले मे उनके विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

अब निर्धारण के लिए मुद्दा यह उठता है कि क्या याचिकाकर्त्ता कॉलेज के प्रबंधन द्वारा प्राध्यापक के चयन और नियुक्ति को अनुमोदन न देने मे प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यको के शैक्षणिक अधिकारें का उल्लंघन है ।

याचिकाकर्त्ता का कॉलेज एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है जो संविधान मे अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत आता है । टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002 (8) एम सी सी 481) में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति करना संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित करने के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं । यह भी निर्णय दिया गया कि राज्य या उसकी एजेंसियो से केवल सहायता प्राप्त करने पर एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का स्वरूप समाप्त नहीं हो जाता। दूसरे शब्दों में सहायता की प्राप्ति, सहायता प्राप्त कर रहे अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानो के स्वरूप और प्रकृति मे परिवर्त्तन नहीं करती है ।

इस अवसर पर हम देख सकते हैं कि सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम् टी.जोस तथा अन्य (2003 की सिविल अपील सं. 8599- निर्णय की तारीख 27.11.2006) में उच्चतम न्यायालय के हाल ही में किए गए निर्णय में कहा गया है कि ''अनुच्छेद 30(1) में स्पष्ट रुप से अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता, जो कि शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना या उनके संचालन करने में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को किसी तरह से कम या उन्हें संक्षिप्त करती हों।'' राज्य जो कि एक शैक्षणिक संस्था को सहायता प्रदान करता है, निश्चित रुप से ऐसी शर्तें लागू कर सकता है जो कि शिक्षा के उच्च स्तर को यथोचित रुप से बनाए रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि वित्तीय बोझ में राज्य की हिस्सेदारी होती है । अन्य शब्दों में सहायता की वह शर्तें, जिनसे सारभूत प्राबंधिक अधिकार का अभ्यर्पण नही होता, संवैधानिक प्रत्याभूतियों के साथ असंगत नहीं होगी, हालांकि वे प्रशासन के कुछ पहलूओं का अप्रत्यक्ष रुप से अतिक्रमण करती हों । स्पष्ट रुप से वह सभी शर्तें जिनका एक शैक्षणिक संस्था द्वारा प्राप्त की गई सहायता के यथोचित उपयोग के साथ संबंध है, को लागू किया जा सकता है । इसलिए टी एम ए पाई फाऊंडेशन (ऊपर) में यह निर्णय किया गया है कि शैक्षणिक स्वरुप और मानकों को सुनिश्चित करने के लिए तथा शैक्षिक उत्कृष्टता को बनाए रखने के लिए विनियामक उपायों को लागू किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे विनियम संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार में किसी तरह से बाधा नहीं डालते हैं । इस संबंध में, टी.एम.ए. पाई (ऊपर) मामले में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ लिया जा सकता है

> ''इसका तात्पर्य है कि अनुच्छेद 30(1) के अधीन दिए गए अधिकार में अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नहीं जोड़ा जा सकता जो कि उस संस्था की स्थापना या उसका संचालन करने में अल्पसंख्यक संस्था के अधिकारों को किसी तरह से कम या उन्हें संक्षिप्त करती हों । वह शर्तें जिन्हें आम तौर पर सहायता प्राप्त कर रही शैक्षणिक संस्थाओं पर लागू

करने की अनुमति दी जा सकती है, वह निश्चित रुप से अनुदान के यथोचित उपयोग तथा अनुदान के उद्देश्यों को पूरा करने से संबंधित होनी चाहिए । इस प्रकार निर्धारित ऐसी कोई दीर्घकालिक शर्तें, जैसे निधियों के उपयोग के संबंध में, उचित ढंग से लेखा परीक्षा, व तौर-तरीकों जिनके अनुसार निधियों का उपयोग किया जाना है, लागू होगी तथा यह शैक्षिक संस्थाओं की अल्पसंख्यक दर्जे को कम नहीं करेंगी । ऐसी शर्तें तभी मान्य होगी यदि इन्हे अनुदान प्राप्त कर रही अन्य शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू किया गया है ।''

सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज(ऊपर) मामले में टी एम ए पाई फाऊंडेशन(ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की व्याख्या करते समय यह निर्णय किया गया कि राज्य निम्नलिखित का निर्धारण कर सकता है-

(i) नियुक्तियां करने के लिए न्यूनतम अर्हताएं, अनुभव तथा योग्यता से संबंधित अन्य मानदण्ड।

(ii) स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण के साथ हस्तक्षेप किए बिना कर्मचारियों की सेवा शर्तें ।

(iii) कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण के लिए एक तंत्र ।

(iv) शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके संचालन के अधिकार को कम या संक्षिप्त किए बिना शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा सहायता के यथोचित उपयोग के लिए शर्तें ।

यह निर्णय भी किया गया कि यदि कोई विनियम स्टाफ पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में बाधा उत्पन्न करता है, या शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन के अधिकार को किसी अन्य प्रकार से संक्षिप्त/कम करता है, तो ऐसा विनियम, उस सीमा तक, अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिए अप्रयोज्य होगा ।

इस प्रकार, यह सुनिर्धारित है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए, शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति का अधिकार, संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के प्रशासन के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है । अपेक्षित अर्हताएं और अनुभव को निर्धारित करने की सीमा तक या अन्यथा स्वयं संस्था के हितों में संवर्धन करने के अलावा, उस पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई जा सकती, बल्कि इसे संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार के उल्लंघन के रुप में माना जाए । [केरल राज्य बनाम् वेरी रेव मदर प्रॉविन्सियल, 1970(2) एस सी सी 417, द अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सोसायटी बनाम् गुजरात राज्य 1974(1) एस सी सी 717, फ्रेंक एन्थनी पब्लिक स्कूल कर्मचारी संघ बनाम् भारत का संघ,1986(4) एस सी सी707, डी ए वी कॉलेज बनाम् पंजाब राज्य,1971(2) एस सी सी 269, ऑल सेंट्स हाई स्कूल बनाम् आंध्र प्रदेश सरकार,1980(2) एस सी सी 478, सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय,1992(1) एस सी सी 558, माध्यमिक शिक्षा एवं अध्यापन प्रशिक्षण बोर्ड बनाम् संयुक्त निदेशक, लोक शिक्षण, सागर 1998(8) एस सी सी555] ।

इस प्रकार किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन द्वारा अपने शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के लिए किसी योग्य व्यक्ति को चुनने के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के संरक्षणात्मक

आवरण द्वारा पूरी तरह सुरक्षा प्रदान की गई तथा पद की अर्हताएं तथा सेवा शर्तें निर्धारित करने के अलावा, इसे किसी विधायी निर्णय या कार्यकारी आदेश द्वारा कम नहीं किया जा सकता । संविधान का अनुच्छेद 13, राज्य को ऐसे किसी अधिनियम, नियमों या विनियमों को बनाने से रोकता है, जो कि संविधान के अध्याय-।।। के अधीन गारंटीकृत किसी भी मूल अधिकार का उल्लंघन करते हों । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को शिक्षण और गैर शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति की स्वतंत्रता देना, संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अर्थ में,शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन के अधिकार के एक अनिवार्य पहलू के रुप में हमेशा स्वीकार किया गया है ।

शिक्षण तथा गैर शिक्षण स्टाफ के सदस्य को चुनने का अधिकार पूर्णतया एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था की प्रबंध समिति की शक्तियों के अधीन आता है और इस शक्ति को प्राधिकारियों द्वारा न तो नियंत्रित किया जाता है और न ही नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 30(1) में स्थापित मौलिक अधिकारों का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । पी.ए.ईनामदार बनाम् महाराष्ट्र राज्य(2005) 6 एससीसी 537 । इस स्थिति में, प्रतिवादी द्वारा चुनने की इस शक्ति के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । याचिकाकर्ता विद्यालय के प्रबंधन को अपने रिक्त पदों को इस शर्त के अध्यधीन भरने का अधिकार है कि नियंत्रक/विनियामक प्राधिकारियों को संवीक्षा करने तथा यह पता लगाने का अधिकार है कि क्या चयन समिति द्वारा चयन किया गया व्यक्ति इस प्रकार निर्धारित पात्रता की न्यूनतम अर्हता को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति करने के लिए पात्र और उपयुक्त है ।

याचिकाकर्त्ता कॉलेज के प्रबंधक श्री शमशाद अली खान ने यह पुष्टि करते हुए एक शपथपत्र दाखिल किया है कि श्री मोहम्मद शफीक के सेवानिवृत हो जाने पर अर्थशास्त्र के प्राध्यापक का पद रिक्त हो गया था । याचिकाकर्त्ता ने 1406200 को टाइम्स आफ इंडिया अंगेजी और 11062009 को अमर उजाला (हिन्दी) में विज्ञापन प्रकाशित किया । अतः याचिकाकर्त्ता ने अधिनियम के अंतर्गत निर्मित विनियम 17 की आवश्यकता को पूरा किया है । श्री शमशाद अली खान ने आगे उल्लेख किया कि चयन समिति विधिवत रप में गठित की गई और श्री जावेद खान का चयन कर उन्हें विद्यमान स्वीकृत पदों के प्रति प्राध्यपक के पद पर नियुक्त किया गया । यह भी अभिकथित है कि उक्त प्राध्यापक के चयन और नियुक्ति से संबंधित संगत दस्तावेज प्रतिवादियों को भेज दिए गए थे परन्तु उनसे किसी तरह का उत्तर प्राप्त नही हुआ । अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) यह समादेश देती है कि उप शिक्षा निदेशक, अथवा निदेशक, जैसा भी मामला हो, धारा 16 च च के अंतर्गत किए गए चयन, जहॉ कि चयनित व्यक्ति के पास विहित न्यूनतम योग्यता है और वह अन्यथा पात्र है, के अनुमोदन को नहीं रोकेगा। इस स्थिति में श्री जावेद खान नामक प्राध्यापक की शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के अंतर्गत विहित प्रकिया के अनुसार किए गए चयन के अनुमोदन को रोक रखने मे प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30(1) और अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) का उल्लंघन है । यहां पर उल्लेख करने की आवश्यकता है कि सिंधी एजुकेशन सोसाइटी एवं अन्य बनाम मुख्य सचिव, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार एवं अन्य 2010 ए आइ आर एम सी डब्ल्यू 5393 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था में रोजगार में आरक्षण लागू नही किया जा सकता। याचिका मे यह उल्लेख किया गया है कि उक्त प्राध्यापक के चयन और नियुक्ति से संबंधित सभी संगत दस्तावेज 10072009 को प्रतिवादियों को प्रस्तुत कर दिए गए थे परन्तु उनसे कोई प्रत्युत्तर नही मिला । उ प्र इंटरमीडियट शिक्षा अधिनियम 1921 के अंतर्गत गठित विनियमों के विनियम 17(घ) में स्पष्ट रुप से

यह निर्धारित है कि यदि अधिनियम की धारा 16 च च की उप धारा (4) के अन्तर्गत कोई अनुमोदन सक्षम प्राधिकारी द्वारा दस्तावेज प्राप्ति के एक माह के भीतर नही दिया जाता है तो अनुमोदन दे दिया गया समझ लिया जाएगा । उक्त धारणा प्रावधानों के दृष्टिगत हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि प्रतिवादियों ने अर्थशास्त्र में प्राध्यापक के रप मे जावेद खान के चयन को अनुमोदन दे दिया है ।

पूर्वोक्त कारणों से हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि प्राध्यापक नामतः श्री जावेद खान का चयन और उनकी नियुक्ति याचिकाकर्त्ता कॉलेज मे प्रबंधन द्वारा शिक्षा अधिनियम की धारा 16 च च के अंतर्गत विहित प्रकिया के अनुसार ही की गई थी और इसलिए इस चयन का अनुमोदन रोकने में प्रतिवादियों की अल्पसंख्यको के शैक्षिक अधिकारों और अधिनियम की धारा 16 च च की उपधारा (4) के अधिदेश का उल्लंघन है । हम यह पाते और निर्णय देते है कि उक्त प्राध्यापक अपने कार्यग्रहण करने की तारीख से ही राज्य सरकार से वेतन प्राप्त करने के हकदार भी हैं । उक्त निर्णय अधिनियम की धारा 11 (ख) के अर्थों में इसके विधिवत कार्यान्वयन हेतु प्रतिवादियों को सूचित किये जाएं ।

वर्ष 2010 का मामला सं 1665

संकाय पद को भरने के लिए अल्पसंख्यक संस्था को अनुमति देने हेतु निदेश देने का अनुरोध

याचिकाकर्त्ता : निर्मला गर्ल्स हाई स्कूल, केन्सरा, सुंदरगढ, उड़ीसा

प्रतिवादी: 1. प्रधान सचिव, स्कूल एवं शिक्षा विभाग उडीसा सरकार, भुवनेश्वर, उडीसा

2. स्कूल निरीक्षक, सुंदरगढ, डाक घर/पुलिस स्टेशन जिला सुंदरगढ, उडीसा

याचिकाकर्त्ता हाई स्कूल संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत शामिल एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था है । स्कूल की प्रधान अध्यापिका श्रीमती शान्ति डुंगडुंग के सेवानिवृत हो जाने के पश्चात याचिकाकर्त्ता स्कूल के प्रबंधन ने सुश्री मेरी सुचिता तिर्की को दिनांक 30042010 के आदेश द्वारा स्कूल की प्रधान अध्यापिका के रूप में पदोन्नत कर दिया ।

स्कूल की प्रधान अध्यापिका के रूप मे सुश्री मेरी सुचिता की पदोन्नति और नियुक्ति को स्कूलों के निरीक्षक, सुंदरगढ सर्किल द्वारा दिनांक 6072010 के आदेश द्वारा अनुमोदन नहीं दिया गया और उसे निरस्त कर दिया गया । स्कूलों के निरीक्षक द्वारा दिनांक 17072010 के आदेश द्वारा याचिकाकर्त्ता स्कूल को यह निदेश दिया गया कि वो स्कूल की प्रधान अध्यापिका का कार्यभार किसी वरिष्ठतम प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक को सौंप दे और साथ मे यह चेतावनी भी दी गई कि इसका अनुपालन न करने पर जुलाई, 2010 माह से वेतन रोक लिया जाएगा । यह अभिकथित है कि उडीसा शिक्षा अधिनियम 1969 की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत आने वाली अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को उक्त अधिनियम के लागू होने से छूट प्रदान करती है । यह भी अभिकथित है कि स्कूल की प्रधान अध्यापिका के रूप में सुश्री सुचिता तिर्की को अनुमोदन न देने में स्कूलों के निरीक्षक, सुंदरगढ सर्किल, सुदरगढ़ की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन करती है ।

नोटिस देने के बावजूद, प्रतिवादी की तरफ से कोई हाजिर नही हआ । अतः मामले मे एकतरफा कार्यवाही की गई ।

यहॉ विचारार्थ निम्नलिखित मुद्दे उत्पन्न होते है ।

1. राज्य से सहायता प्राप्त करने वाली अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं को संचालन करने में उनके अधिकार को राज्य किसी सीमा तक विनियमित कर सकता है?

2. क्या प्रधान अध्यापिका को चुनने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत अल्पसंख्कों द्वारा अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने केअधिकार का ही एक हिस्सा है ? यदि ऐसा है तो क्या सुश्री मेरी सुचिता तिर्की की पदोन्नति और नियुक्ति को अनुमोदन न देने में प्रतिवादी की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के अधिकार का उल्लंघन है ?

मुद्दा सं 1

ऐसा ही मुद्दा उच्चतम न्यायालय के समक्ष सचिव, मलांकरा सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी जोस 2007 ए आई आर एस सी डब्ल्यू 132 में आया था । उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन और सहायता दिए जाने को लेकर राज्य द्वारा बनाए गए सभी कानून अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू होंगे । परन्तु यदि यह विनियम स्टाफ पर प्रबंधन के समूचे प्रशासनिक नियंत्रण मे बाधा उत्पन्न करता है, या शैक्षणिक संस्थाओ की स्थापनना और उनका संचालन करने के अधिकार को किसी अन्य प्रकार से कम या उन्हें संक्षिप्त करते हों, तो ये विनियम, उस सीमा तक, अल्पसंख्यक संस्थाओ पर अप्रयोज्य होंगे । इस स्थिति में, हम सचिव, मालंकर सीरियन कैथालिक कॉलेज बनाम टी जोस (अपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति के निम्नलिखित अवलोकनों का उद्धरण दे सकते हैं :

> अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने का अधिकार देता है । केरल राज्य बनाम वेरी रेव मदर प्रोविंशियल {1970(2)} एस सी सी 417 में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने प्रशासन के अधिकार को इस रूप में स्पष्ट किया है :
>
> "प्रशासन का तात्पर्य संस्था के कामकाज के प्रबंधन से है । यह प्रबंधन नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए ताकि संस्थापक तथा उनके नामजद व्यक्ति उपयुक्त समझे गए ढंग से और अपने उन आदर्शों, जिससे सामान्य रप से समुदाय के तथा विशेषतः संस्था के हितो को लाभ पहुंचे के मुताबिक संस्था को ढाल सकें । इस प्रबंधन का कोई पहलू हटाया नहीं जा सकता तथा प्रत्याभूत अधिकार पर अतिक्रमण किए बिना किसी दूसरे निकाय को इसे सौंपा नही जा सकता ।"
>
> तथापि इसका एक अपवाद है और वह यह है कि शिक्षा के मानक इस रुप मे प्रबंधन का हिस्सा नही है, ये मानक नीति कुशलता से संबंधित है और देश और उसके लोगों की उन्नति से अधिदिष्ट होते हैं। अतः यदि विश्वविद्यालय परीक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या बनाते है तो उसका अनुवर्त्तन किया जाना चाहिए, तथापि जो विशेष विषयों के अधीन है जिन्हें संस्था प्राप्त करना चाहता है, और कतिपय सीमा तक राज्य शिक्षकों के राजगार की शर्त्तों और छात्रों के स्वास्थ्य और स्वच्छता संबंधी शर्त्तें

को विनियमित कर सकता है । ये विनियम प्रबंधन को सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करते हैं हालांकि ये अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित कर सकते है । फिर भी शिक्षा, शैक्षणिक मानकों और संबद्ध मामलों को विनियमित करने के राज्य के अधिकार से इन्कार नहीं किया जा सकता है । अल्पसंख्यक संस्थाओं को इस बात की अनुमति नही दी जा सकती है कि उनकी शैक्षणिक संस्था के मानक उत्कृष्टता के उन मानकों से कम हों जिनकी किन्हीं शैक्षणिक संस्थाओ से आशा की जाती है, अथवा प्रबंधन के एकमात्र अधिकार की आड में वे सामान्य प्रतिरुपों का पालन ही न करें । हालांकि, प्रबंधन का अधिकार उन्हीं पर छोड दिया जाना चाहिए, तथापि उन्हें दूसरों से कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए बाध्य किया जा सकता है ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य {1974 (1) एस सी सी 717} में उच्चतम न्यायालय की न्यायधीशों वाली खंडपीठ ने अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थाओं को संचालित करने के उनके अधिकार के कार्यक्षेत्र और दायरे पर विचार किया । बहुमत की राय यह थी कि सेवा शर्त्तों को नियत करने से बेहतर और सक्षम शिक्षक मनोनीत किए जा सकेंगे और इससे अपनी पसंद के शिक्षक नियुक्त करने के अल्पसंख्यक संस्थाओं के प्रबंधन के अधिकार पर कोई संकट नही आएगा । इस संबंध में यह भी टिप्पणी की गई कि :

"प्रशासन में स्वायत्तंता का तात्पर्य संस्था के कुशलतापूर्वक प्रशासन चलाने के अधिकार तथा अपने कामकाज को व्यवस्थित करने और उसके संचालन करने के अधिकार से है । प्रशासन के अधिकार पर सीमा लगाने तथा प्रशासन के तौरतरीके को निर्धारित करने वाले विनियम के बीच अंतर है । प्रशासन का अधिकार रोजमर्रा का कामकाज चलाना है । प्रबंधन के लिए व्यक्तियों का चयन प्रशासन का ही एक हिस्सा है । विश्वविधालय को यह अधिकार सदैव प्राप्त होगा कि वह यह देखे कि कोई कुप्रबंधन न हो । यदि कोई कुप्रबंधन होता है तो विश्वविधालय इसका उपचार करने के लिए कदम उठाएगा । प्रशासन पर नियंत्रण और उसकी जांच की जा सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या अल्पसंख्यक संस्थाएं ऐसी कोई कार्यकलाप कर रही है जो अल्पसंख्यकों के हितों अथवा शिक्षकों और छात्रों की जरुरतों के अनुकूल नही है।"

सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने वाली अल्पसंख्यक संस्था का अन्तिम उद्देश्य भी ज्ञान के स्तर में बढोत्तरी करना है । इस न्यायालय ने लगातार यह कहा है कि शिक्षा के मानकों में उत्कृष्टता और एकरुपता लाने के लिए शैक्षणिक और शैक्षिक मामलों में सब कुछ विनियमित करना न केवल अनुज्ञेय परन्तु वांछनीय भी है ।

प्रशासन के क्षेत्र में, यह दावा करना तर्कसंगत नहीं है कि अल्पसंख्यक संस्थाओं को पूर्ण स्वायत्ता होगी । उनके प्रशासन पर नियंत्रण आवश्यक होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रशासन कार्यकुशल और सुदृढ है और वह संस्था की शैक्षिक जरुरतों को पूरा कर पाएगा । अल्पसंख्यकों का अपनी शैक्षणिक संस्थाओं का प्रशासन चलाने का अधिकार इसका एक भाग ही है, जो कि एक अच्छे प्रशासन का सहसंबंध कर्तव्य है ।

फ्रैंक ऐंथनी पब्लिक स्कूल एम्प्लाइज एसोसिएशन बनाम भारत संघ {1986 (4) एम सी सी 707} में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि :

> "किसी संस्था द्वारा दिए गए अनुदेश की उत्कृष्टता प्रत्यक्ष तौर पर शिक्षण स्टाफ की उत्कृष्टता पर निर्भर करेगी, जो आगे शिक्षकों की गुणवत्ता और उनके संतोष पर निर्भर करेगी, शिक्षको की न्यूनतम योग्यता से संबंधित सेवा शर्तों, उनके वेतन, भते और अन्य सेवा शर्तें, जिनसे शिक्षकों की सुरक्षा, संतोष और शालीन जीवन का स्तर सुनिश्चित होता है, जिसके परिणामस्वरप वे संस्था और बच्चों को बेहतर सेवा देने में समर्थ होते हैं, निश्चित तौर पर संविधान के अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार का उल्लघन नही कही जा सकती है । किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन को अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रत्याभूत मूलभूत अधिकार की आड में किसी अन्य निजी कर्मचारी से अधिक अपने कर्मचारियों का दमन करने या उनका शोषण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । किसी शैक्षणिक संस्था के शिक्षण स्टाफ के दमन या शोषण से असमान रुप से संस्था में असंतोष उत्पन्न होगा और प्रदान किए जा रहे अनुदेशों के स्तर में गिरावट आएगी, जिससे इन शैक्षिक संस्थाओं में जाने वाले अल्पसंख्यक समुदाय या अन्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा के एक प्रभावी साधन के रूप में इस संस्था को बनाने के उद्देश्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा । किसी अपसंख्यक संस्था का प्रबंधन संस्था का संचालन करने के मूलभूत अधिकार में तब तक अतिक्रमण करने की शिकायत नही कर सकता है जब वह अपने स्टाफ के सदस्यों को अनुच्छेद 30 (1) के उद्देश्य की प्राप्ति के अवसर से ही वंचित कर देता है, जिसका संस्था को शिक्षा का एक प्रभावी साधन बनाना मात्र है "।

टी एम ए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एस सी सी 481 में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि राज्य या उसकी एजेन्सियों से केवल सहायता प्राप्त करने पर एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का ऐसी संस्था होना समाप्त नही हो जाता है । अन्य शब्दों में, सहायता की प्राप्ति सहायता प्राप्त कर रही अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के स्वरप और चरित्र में परिवर्तन नही करती है । अनुच्छेंद 30 (1) में स्पष्टता अंतर्निहित है कि राज्य द्वारा अल्पसंख्यक संस्था को दिए गए किसी अनुदान के साथ ऐसी शर्तों को नही जोड़ा जा सकता जो कि शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना या उनके संचालन करने में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को किसी तरह से कम या उन्हें संक्षिप्त करती हो । तथापि, वे सभी शर्तों, जिनका एक शैक्षणिक संस्था द्वारा प्राप्त की गई सहायता के यथोचित उपयोग के साथ संबंध हैं, को लागू किया जा सकता है ।

किसी सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन के अधिकार को किस सीमा तक विनियमित किया जा सकता है, इस संबंध में टी एम vीं पाई (ऊपर) में 11 न्यायधीशों की खण्डपीठ की टिप्पणियां नीचे दी गई हैं :

> "-----राज्य, जब शैक्षणिक संस्थाओं को सहायता देने का निर्णय लेता है तो वह किसी धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यक संस्था को केवल इस आधार पर सहायता देने से इंकार नही कर सकता कि उस संस्था का प्रबंधन किसी अल्पसंख्यक के

हाथों में है । हम, तथापि, यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि यदि प्रबंधन के अधिकार को पूरी तरह से त्यागना ही सहायता देने की शर्त बना दी जाती है तो सहायता से यह वंचन अनुच्छेद 30 (2) का उल्लंघन होगा । तथापि, सहायता की ऐसी शर्ते जिनमें प्रबंधन का सारभूत अधिकार का अभ्यर्पण शामिल नहीं है, संवैधानिक प्रत्याभूतियों से असंगत नही होंगी, चाहे उनसे प्रशासन के कुछ पहलुओं का अप्रत्यक्ष रुप से टकराव होता हो ।`

यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि किसी अल्पसंख्यक संस्था को सहायता देते हुए कोई शर्तें लगाई नही जा सकती है । चाहे वह संस्था बहुसंख्यकों द्वारा चलाई जा रही हो या अल्पसंख्यकों द्वारा, वे सभी शर्तें लगाई जा सकती है, जिनकी किसी शैक्षिक संस्था को सहायतानुदान के यथोचित उपयोग से संगतता है । संस्था किसी बहुसंख्यक की हो या अल्पसंख्यक की, सहायता देने या सहायता न देने के लिए शर्तें एकसमान रुप से लागू करनी होंगी । बहुसंख्यको द्वारा चलाई गई संस्थाओं के मामले की तरह, जब कोई अल्पसंख्यक संस्था सहायतानुदान प्राप्त करती है, संविधान का अनुच्छेद 28 की भूमिका आरंभ हो जाती है । जब कोई शैक्षणिक संस्था राज्य निधियों से चलाई जाती है तो उस संस्था में कोई धार्मिक अनुदेश नही दिए जा सकते ।

इस संबंध में, निष्कर्षों का सार बनाते हुए बहुमत द्वारा तैयार जिन प्रश्नों का उत्तर दिया गया, उनमें प्रश्न सं 5 (ग) और उनके उत्तर विचाराधीन मुद्दे को प्रभावित करते हैं । प्रश्न सं 5 (ग) का उद्धरण नीचे दिया गया है :

'' सहायता प्राप्त व गैर सहायता प्राप्त संस्थाओं के कर्मचारियों जिन्हें दण्ड दिया जा सकता है अथवा सेवा से निष्कासित किया जा सकता है, की शिकायतों का निवारण करने के लिए एक तंत्र बनाना होगा और हमारे दृष्टिकोण में इसके लिए एक समुचित न्यायाधिकरण गठित किए जा सकतें है और तब तक इन न्यायाधिकरणों की अध्यक्षता जिला न्यायाधिश पद के एक न्यायिक अधिकारी द्वारा की जा सकती है।''

तथापि राज्य अथवा अन्य नियंत्रण प्राधिकारी किसी भी शैक्षणिक संस्था का अध्यापक अथवा प्रधानाचार्य नियुक्त करने के लिए किसी व्यक्ति की योग्यता को प्रभावित करने वाली न्यूनतम योग्यता, अनुभव व अन्य शर्तें निर्धारित कर सकते हैं । ''

''राज्य द्वारा, उस प्रबंधन के स्टाफ पर समूचे प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप किए बिना शिक्षण तथा अन्य स्टाफ की सेवा शर्तों पर नियंत्रण रखते हुए विनियमन तैयार किए जा सकते हैं जिन्हें उसके द्वारा सहायता प्रदान की जाती है ।`

<u>मुद्दा सं 2</u>

किसी कॉलेज या किसी स्कूल में प्रधानाचार्य या प्रधान अध्यापिका का पद एक शैक्षणिक संस्था के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद है । इस पद के चारों ओर ही उस संस्था का समग्र बुनियादी स्वरुप निर्धारित होता है । उसी पर उस संस्था की परम्पराओं की निरन्तरता, अनुशासन का अनुरक्षण और उस संस्था के शिक्षण की सक्षमता निर्भर करती है । प्रधानाचार्य को चुनने का अधिकार संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के संचालन के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है और अपेक्षित

अर्हताएं और अनुभव को निर्धारित करने की सीमा तक या अन्यथा स्वंय संस्था के हितों में संवर्धन करने के अलावा, उस पर किसी प्रकार की रोक नही लगाई जा सकती, बल्कि इसे संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अधिकार के उल्लंघन के रूप में माना जाए। केरल राज्य बनाम बेरी रेव मदर प्रॉविन्सियल, 1970 (2) एस सी सी 417 में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि अतः जहॉ तक प्रधानाचार्य के पद का संबंध है, हमारा विचार है कि यह प्रबंधन पर छोड दिया जाना चाहिए कि वे सबसे उपयुक्त उपलब्ध व्यक्ति की सेवाएं प्राप्त करें । यह हमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है, और स्टाफ की उन्नति के अवसरों को भी प्राथमिकता देती होगी । सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस (ऊपर) के मामले में उपर्युक्त प्राधिकारियों का उल्लेख अनुमोदन से किया गया है । मलांकार सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी जोस (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह भी निर्णय दिया गया है कि अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी पसंद के प्रधानाचार्यों/प्रधान अध्यापकों की नियुक्ति के अधिकार के महत्व का उल्लेख अनुच्छेद 30 के अंतर्गत मूलभूत अधिकारो के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप मे अहमदाबाद सैट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी बनाम गुजरात राज्य 1974 (1) एस सी सी 717 में किया गया था, `किसी शैक्षणिक संस्था का वातावरण और स्वरुप कैसा होगा यह एक कॉलेज के प्रधानाचार्य और शिक्षकों पर निर्भर करता है । किसी शैक्षणिक संस्था की प्रतिष्ठा, अनुशासन का रखरखाव और उसकी कार्यकुशलता उन्हीं पर निर्भर करेगी । प्रधानाचार्य को चुनने और प्रबंधन द्वारा शिक्षकों के दृष्टिकोण और उनकी धारणा के समग्र मूल्यांकन के पश्चात उनकी नियुक्ति कर उनसे शिक्षण कराना एक शैक्षणिक संस्था के संचालन के अधिकार का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण पहलू है । ---- जब तक कि चुने गए व्यक्तियों के पास विश्वविधालय द्वारा विहित योग्यताएं हैं, यह चयन प्रबंधन पर छोड़ दिया जाना चाहिए । यह अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित की गई शैक्षणिक संस्था के संचालन के मूलभूत अधिकार का ही एक हिस्सा है ।

एन अम्मद बनाम प्रबंधन, एमजे हाई स्कूल {1998 (6) एस सी सी 674} में अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि एक सहायताप्राप्त अल्पसंख्यक स्कूल का वरिष्ठतम स्नातक शिक्षक होने के कारण, प्रधान अध्यापक के पद पर किसी ओर की नियुक्ति न करके उसी की नियुक्ति की जानी चाहिए । उसने केरल शिक्षा नियमों के नियम 44 क का आश्रय लिया जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि प्रधान अध्यापक की नियुक्ति सामान्य तौर पर नियम 34 के खंड (क) और (ख) के अंतर्गत तैयार और रखरखाव की गई वरिष्ठता सूची से वरिष्ठता के अनुसार की जाएगी । इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि :

> "किसी स्कूल (अथवा कॉलेज का प्रधानाचार्य) में प्रधान अध्यापक का चयन और नियुक्ति का उस शैक्षिक संस्था के प्रशासन में मुख्य महत्व है । स्कूल चलाने में प्रधान अध्यापक एक प्रमुख पद है । वह एक केन्द्र बिन्दु है जिसके चारो ओर स्कूल की सारी गतिविधि संचालित होती हैं और इसके माध्यम से ही उनके परिणाम प्राप्त होते हैं । एक स्कूल के व्यक्तित्व का निर्माण उसके प्रधान अध्यापक के माध्यम से ही होता है। यही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके माध्यम से बाहरी लोग स्कूल का मूल्यांकन करते हैं । एक खराब प्रधान अध्यापक समूची संस्था को बरबाद कर सकता है, जबकि एक सक्षम, ईमानदार प्रधान अध्यापक इसमें कई गुणा सुधार कर सकता है । किसी स्कूल की कार्यात्मक प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ उसके प्रधानअध्यापक की कार्यकुशलता और समर्पण पर निर्भर करती है।

पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा के संरचनात्मक प्रतिरूपों में अनेक बदलाव आने के बावजूद इस पुरानी अवधारणा में कोई परिवर्तन नहीं आया है । किसी स्कूल की कार्यात्मक सक्षमता उसके प्रधानाध्यापक की कार्य कुशलता तथा समर्पण और बहुत कुछ उसके प्रधानाध्यापक पर निर्भर करती है । पिछले अनेक वर्षों में शिक्षा के संरचनात्मक प्रतिरूपों में अनेक परिवर्तन होने के बावजूद इस पुरानी अवधारणा में कोई बदलाव नहीं आया है ।

किसी स्कूल के प्रधानाध्यापक का पद कितना महत्वपूर्ण है, इसका उल्लेख सारगर्भित रुप में प्रधान न्यायमूर्ति एस एस मेनन वाली एलडो मारिया पैट्रानी बनाम लृ सी केशवम (ए आइ आर 1965 केर 75) में केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण खंडपीठ द्वारा इस रुप में किया गया :

"किसी स्कूल के जीवन में प्रधानाध्यापक का पद सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद है । इस पद के चारों ओर ही किसी संस्था का समग्र बुनियादी स्वरुप निर्धारित होता है । उसी पर उस संस्था की परंपराओं की निरंतरता, अनुशासन का अनुरक्षण और उस संस्था के शिक्षण की सक्षमता निर्भर करती है । प्रधानाध्यापक को चुनने का अधिकार संभवतः एक शैक्षणिक संस्था के संचालन के अधिकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है और हमें यह कहना पड़ता है कि अपेक्षित अर्हता और अनुभव निर्धारित करने तक की सीमा को छोड़कर उस पर किसी अन्य तरह की पाबंदी लगाना संविधान के अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का उल्लंघन ही मानी जाएगी । इससे अन्यथा निर्णय इस अधिकार को भ्रमपूर्ण, अवास्तविकपूर्ण वादा करने के समान होगा ।"

इसके पश्चात उच्चतम न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया कि अल्पसंख्यक संस्था का प्रबंधन रिक्ति भरने के लिए उसी संस्था से अथवा बाहर से किसी योग्य व्यक्ति का चयन करने के लिए स्वतंत्र है और यह कि स्कूल के प्रधानाध्यापक के रुप में किसी योग्य व्यक्ति को चुनने के प्रबंधन के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के सुरक्षात्मक आवरण द्वारा भली-भांति सुरक्षा प्रदान की गयी है और किसी पद के लिए अर्हताएं और सेवा शर्ते निर्धारित करने के अलावा इसे किसी विधायी निर्णय अथवा कार्यकारी नियम के माध्यम से कम नहीं किया जा सकता और यह कि ऐसा कोई भी सांविधिक या कार्यकारी अधिदेश अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित मूलभूत अधिकार का उल्लंघन होगा और इसलिए यह अमान्य होगा । उच्चतम न्यायालय ने आगे यह टिप्पणी की कि यदि स्कूल के प्रबंधन को निस्संदेह रुप से राज्य द्वारा विहित किए जा सकने वाली अर्हताओं के संबंध में लगाई गई रोक को छोड़कर प्रधानाचार्य के प्रमुख पद पर कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति को चुनने की व्यापक स्वतंत्रता नहीं दी जाती है तो स्कूल के संचालन करने के अधिकार में पर्याप्त रुप में कमी आ जाएगी।

बोर्ड ऑफ सैकेन्डरी एजुकेशन और टीचर्स ट्रेनिंग बनाम संयुक्त निदेशक, जन अनुदेश सागर (1998(8)एस सी सी 555), में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि :

"न्यायालय के निर्णयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति करने के मामले में, एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन को चुनने का अधिकार प्राप्त है । यह निर्णय दिया गया है कि एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था

के संचालन के अधिकार में प्रधानाचार्य का चयन करना शामिल है । प्रबंधन के इस अधिकार को समाप्त करने वाले किसी भी नियम को संविधान के अनुच्छेद 30 द्वारा प्रत्याभूत अधिकार के साथ हस्तक्षेप माना गया है । इस मामले में, प्रबंधन तथा तीसरे प्रतिवादी द्वारा चयनित जूलियस प्रसाद दोनों नियमों के अनुसार प्रधानाचार्य के पद पर चयन के लिए अर्हक और पात्र है । प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रबंधन अपनी पसंद के व्यक्ति का चयन करने के लिए हकदार नहीं है । केरल राज्य बनाम बेरी रेव मदर प्रोविन्शियल (1970(2) एस सी सी 417 और अहमदाबाद सैंट जेवियस कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य (ऊपर) में निर्णय सहित न्यायालयों के निर्णय से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के किन्हीं नियमों या विनियमों अथवा किसी अधिनियमन के द्वारा अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के अधिकार को समाप्त नहीं किया जा सकता है । अतः हमारी राय यह है कि इससे अन्यथा उच्च न्यायालय का निर्णय सही नहीं था । राज्य को अनुशासन और उत्कृष्टता बनाए रखने के हित में भी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के काम-काज को विनियमित करने का निस्संदेह रुप से अधिकार है, परन्तु उस प्रक्रिया में प्रबंधन के उपर्युक्त अधिकार को छीना नहीं जा सकता चाहे सरकार शत प्रतिशत सहायता दे रही हो ।"

अतः यह स्पष्ट है कि प्रधानाचार्य के रुप में किसी व्यक्ति को चुनने की स्वतंत्रता को शैक्षणिक संस्था का संचालन करने के अधिकार के महत्वपूर्ण पहलू के रुप में सदैव मान्यता मिलती रही है। टी एम ए पाई द्वारा इसे किसी भी तरह से कम या परिवर्तित नहीं किया गया है । एक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधन और संचालन में प्रधानाचार्य/प्रधान अध्यापक की प्रमुख भूमिका को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रधानाचार्य/प्रधान अध्यापक को चुनने का अधिकार निःसंदेह रुप से प्रशासन के अधिकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और चाहे संस्था सहायताप्राप्त ही क्यों न हो, उक्त अधिकार के साथ कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । इस तथ्य से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि प्रधानाचार्य/प्रधान अध्यापक का पद भी राज्य द्वारा दी गई सहायता के अंतर्गत आता है ।

सचिव, मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 30 (1) द्वारा विस्तारित संरक्षण शिक्षण स्टाफ के उस सदस्य को नहीं दिया जा सकता जो उसी अल्पसंख्यक समुदाय से संबद्ध हो । यह भी तर्क दिया गया कि कोई अल्पसंख्यक संस्था चयन के लिए प्रस्तावित किसी व्यक्ति से वरिष्ठ उसी समुदाय से संबद्ध पात्र व्याख्याता के अधिकारों की महज इसलिए अनदेखी नहीं कर सकती कि संस्था को अपनी पसंद के प्रधानाचार्य के चयन का अधिकार है । परन्तु न्यायमूर्ति ने यह अवलोकन करते हुए कहा है कि इस तर्क में इस स्थिति की अनदेखी की गई है कि अपनी पसंद का प्रधानाचार्य चुनने के अल्पसंख्यकों के अधिकार में व्यक्ति के दृष्टिकोण और सिद्धांतों के मूल्यांकन और अपने लक्ष्यों को कार्यान्वित करने की योग्यता को ध्यान में रखा जाता है । प्रबंधन उस व्यक्ति को नियुक्त करने का हकदार है, जो उनके अनुसार संस्था का नेतृत्व करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, बशर्ते कि उसके पास इस पद के लिए विहित अर्हताएं हैं । अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने के प्रबंधन के अधिकार को शिक्षक स्टाफ, चाहे वे उसी समुदाय से संबद्ध क्यों न हों, को कैरियर में आगे बढ़ने की संभावनाओं की तुलना में प्राथमिकता देनी ही होगी ।

याचिकाकर्ता द्वारा यह अभिकथित है कि स्कूल की वर्तमान प्रधान अध्यापिका सुश्री मेरी सुचिता तिर्की पूरी तरह से सुयोग्य और प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक है और वे स्कूल में सहायक शिक्षक के रुप में काम करती आ रही हैं । उन्होंने नवम्बर, 1990 में शिक्षा में स्नातक की डिग्री ली थी । प्रधान अध्यापिका के पद के लिए उनके पास सभी अर्हताएं है और उनकी प्रतिबद्धता, कार्य-कुशलता और योग्यता को देखते हुए, प्रबंधन ने उन्हें प्रधान अध्यापिका के रुप में नियुक्त किया है । दूसरे शब्दों में, सुश्री मेरी सुचिता प्रधान अध्यापिका के पद के लिए विहित अर्हता और पात्रता रखती हैं । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत प्रबंधन के अधिकार को शिक्षण स्टाफ, चाहे वे उसी समुदाय से संबद्ध क्यो न हो, के कैरियर में आगे बढ़ने की संभावनाओं की तुलना में प्राथमिकता देनी ही चाहिए । मालंकर सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी जोस (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर निर्भर करते हुए हम यह पाते और निर्णय देते हें कि सुश्री मेरी सुचिता तिर्की की याचिकाकर्ता स्कूल की प्रधान अध्यापिका के पद पर पदोन्नति और नियुक्ति को अनुमोदन न देने में जिला स्कूल निरीक्षक, सुंदरगढ़ समिति की आक्षेपित कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसख्ंयकों के शैक्षणिक अधिकार का उल्लंघन है ।

पूर्वोक्त कारणों से हम यह पाते और निर्णय देते हैं कि सुश्री मेरी सुचिता तिर्की की प्रधान अध्यापिका के पद पर नियुक्ति निरस्त करने में जिला स्कूल निरीक्षक, सुंदरगढ़ सर्किल, सुंदरगढ़ का दिनांक 6-7-2010 का आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 30 (1) में प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों का उल्लंघन होने के कारण अवैध और अप्रभावी है। जिला स्कूल निरीक्षक को यह अधिकार नहीं है कि वे याचिकाकर्ता स्कूल को प्रधान अध्यापिका का कार्यभार किसी वरिष्ठतम प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक को सुपुर्द करने का निदेश दें । याचिकाकर्ता स्कूल की प्रधानाध्यापिका के रुप में सुश्री मेरी सुचिता की पदोन्नति और नियुक्ति वैध और प्रभावी है । वे पद पर अपना कार्य ग्रहण करने की तारीख से याचिकाकर्ता स्कूल की प्रधान अध्यापिका का वेतन लेने की हकदार है ।

अध्याय 8 : केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों से प्राप्त संदर्भ और आयोग की सिफारिशें

वर्ष के दौरान, अल्पसंख्यकों के अधिकारों, जिनमें अल्पसंख्यक दर्जा दिए जाने का मुद्दा, मदरसों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना, दिल्ली में कुछ सरकारी स्कूलों में उर्दू शिक्षकों की तैनाती शामिल हैं, के संबंध में राज्य सरकारों और अन्य प्राधिकारियों से पत्राचार किया गया है । राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग द्वारा किए गए कार्य की विभिन्न क्षेत्रों द्वारा सराहना की गई है ।

माननीय अध्यक्ष, रा अ शै सं आ द्वारा किए गए संपर्क के परिणामस्वरप उत्तर प्रदेश सरकार ने सभी सम्बन्ध पक्षों को यह आदेश जारी कर उन्हें यह निदेश देते हुए एक सराहनीय निर्णय लिया है कि वे आयोग द्वारा अल्पसंख्यक संस्था के रूप में प्रमाणित किसी भी शैक्षणिक संस्था को उसी रूप में समझे और यह भी सुनिश्चित करें कि आयोग द्वारा जारी आदेशों का जल्द कार्यान्वयन किया जाए । मध्य प्रदेश सरकार से भी अनुरोध किया गया था कि वे भी इसी प्रकार के आदेश जारी करें और राज्य के संबंधित प्राधिकारियों को निदेश दें ।

रा अ शै सं आ की पहल पर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार ने सभी स्कूलों के प्रधानाचार्यों को ये आवश्यक आदेश जारी किए है जिसमें उन्हें यह निदेश दिया गया है कि वें अल्पसंख्यक छात्रों को प्रवेश देने के समय उससे भाषा संबंधी विकल्प लेते हुए आयोग द्वारा नियुक्त जिला समन्वयक को उपस्थित रहने दें । यह आयोग के हस्तक्षेप से ही संभव हो पाया है कि बिहार सरकार ने गैर सहायता प्राप्त मदरसों के शिक्षकों को वेतन देने और इन मदरसा शिक्षकों के वेतन को सरकारी स्कूलों के शिक्षको के समकक्ष किए जाने का निर्णय लिया । बिहार सरकार ने 1127 मदरसों में प्रत्येक में दो विज्ञान शिक्षकों और एक भाषा शिक्षक के पद की स्वीकृति भी दी जिसमें प्रति वर्ष 43 करोड़ रुपए का व्यय आएगा । बिहार सरकार द्वारा इन मदरसों में पुस्तकालय, प्रयोगशाला और व्यावहारिक किट जैसी बुनियादी और संस्थागत सुविधाएं भी प्रदान की जाएंगी ।

राजस्थान सरकार ने आयोग द्वारा जारी दिशा निर्देशो का पालन करने के लिए और राज्य में अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना को सुसाध्य बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था अधिनियम, 2004 की धारा 2 (ग क) के अंतर्गत राज्य में सक्षम प्राधिकारी का गठन किया है ।

भारत में संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में यथा प्रतिष्ठापित अल्पसंख्यकों के अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में राज्य सरकारों और अन्य प्राधिकारियों से प्राप्त कुछ पत्रों और पत्राचार को इस रिपोर्ट में अनुलग्नक के रूप में संलग्न किया गया है ।

अध्याय 9 आयोग द्वारा किए गए अध्ययन

आयोग को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग अधिनियम 2004 की धारा 11 की उप धाराओं (घ) और (छ) के अंतर्गत अल्पसंख्यक समुदायों के शैक्षणिक अधिकारों के संरक्षण से जुडे विशिष्ट मामलों पर विचार करने का अधिदेश प्राप्त है । इन उपधाराओं को निम्नलिखित रूप में पुनः प्रस्तुत किया गया है :

11(घ) अल्पसंख्यको के शैक्षणिक अधिकारो के संरक्षण के लिए संविधान अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा अथवा उसके अधीन उपबंधित सुरक्षोपायों का पुनर्विलोकन करेगा, और उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

11(छ) अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं से संबंधित कार्यक्रमों और योजनाओं के प्रभावकारी कार्यान्वयन के लिए समुचित सरकार को सिफारिशें करना ;''

वर्ष के दौरान बडी संख्या में प्रार्थना पत्र प्राप्त हुए तथा आयोग ने मामलों के निपटान को अग्रता प्रदान की । प्राप्त की गई शिकायतों/याचिकाओं का विश्लेषण करने के पश्चात् और राज्य सरकारों द्वारा अधिसूचित विभिन्न नियमों और विनियमों के किए गए अध्ययनों के आधार पर आयोग ने भारतीय संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के संबंध में अल्पसंख्यक दर्जा,मान्यता, सम्बद्धता और संबंधित मामलों के निर्धारण के लिए दिशा-निर्देश बनाए हैं । इन दिशा-निर्देशों की प्रतियां आयोग के कार्यालय तथा उसकी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं ।

आयोग द्वारा विभिन्न स्थानों पर किए गए परस्पर विचार-विमर्शों के दौरान यह देखा गया कि लड़कियों ने स्वयं को साबित किया है कि वे लड़कों की अपेक्षा कम समर्थ या प्रतिभाशाली नहीं है । तथापि बालिका शिक्षा लगातार उपेक्षा झेल रही हैं । मुस्लिम लड़कियों तथा भारतीय समाज की पिछडी जातियों और वर्गों के मामले में स्थिति गम्भीर हैं । आयोग द्वारा यह भी पाया गया कि अल्पसंख्यक समुदायों के गरीब वर्गों के लिए उपलब्ध शैक्षिक सुविधाएं के कार्यो की निराशाजनक स्थिति में उचित रीति से सुधार लाना होगा । बालिका शिक्षा को विशेषतः इसके पिछड़ेपन और सामाजिक निषेधता से जुड़े होने के कारण, प्राथमिकता क्षेत्र के रूप में माना गया है। मुस्लिम समुदाय की बालिकाओं की इस मामले में बदतर स्थिति है । इस दुखद परिदृश्य से निपटने के उद्देश्य से, आयोग ने लडकियों की शिक्षा विशेषकर मुस्लिम समुदाय की लडकियों की शिक्षा में अपर्याप्तता का अध्ययन करने के लिए और उनकी इस स्थिति को दूर करने के तरीकों की सिफारिश करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिष्ठित महिला शिक्षाशास्त्रियों की एक समिति गठित की है ।

1.	डा. शबिस्तान गफ्फार,	मानद् अध्यक्ष
2.	श्रीमती आबिदा पी.ईनामदार	मानद् सदस्य
3.	श्रीमती आतिया मुश्ताक,	मानद् सदस्य
4.	डॉ. सीमा वहाब	मानद् सदस्य
5.	डा. शीबा असलम	मानद् सदस्य
6.	डा. करण गैबरियल	मानद् सदस्य

बाद में, आयोग ने निम्नलिखित 4 सदस्यों को समिति में शामिल कियाः-

1. डा. सुमाया, मानद् सदस्य
2. प्रोफेसर नज़मा अख्तर, मानद् सदस्य
3. डा. पी.ए. फातिमा, मानद् सदस्य
4. ड़ा कमर रहमान, मानद सदस्य
5. श्रीमती लोविना खान, मानद सदस्य

आयोग ने, समिति से विषय का अच्छी तरह से अध्यन करने तथा अपनी रिपोर्ट यथाशीघ्र प्रस्तुत करने को कहा है । महिला शिक्षाशास्त्रियों की इस समिति ने निम्नलिखित क्षेत्रीय संगोष्ठियां की हैं ।

कम सं	**जगह का नाम**	**तारीख**
1.	मुम्बई	28 नवम्बर, 2010
2.	चेन्न्ई	2 फरवरी, 2011
3.	लखनऊ	15 फरवरी, 2011

समिति के अध्यक्ष ने कई स्थलों का दौरा किया है जहॉ उन्होंने इस विषय की जमीनी सच्चाई का पता लगाने के लिए संबद्व पक्षों से आपसी बातचीत की है । इस समिति को 31-12-2011 तक अवश्य अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है ।

अध्याय 10 - अल्पसंख्यकों की शिक्षा के एकीकृत विकास के लिए सिफारिशें

हमारा संविधान भारतीय समाज के बहुलवादी स्वरूप एवं हर छोटे-बड़े वर्ग द्वारा उन्नति करने के अधिकार को मान्यता देता है । अनुच्छेद 29 (1) सामान्य रुप में समाज के सभी वर्गो, चाहे वे बहुसंख्यक हों या अल्पसंख्यक, को भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण का अधिकार देता है । अनुच्छेद 30 (1) मे अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी शैक्षणिक संस्थाओं, जो पूरी तरह से भारतीय लोकतंत्र के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप और स्वयं संविधान में उल्लेखित निदेशात्मक तत्वों के अनुरुप है, को चलाने और उनका संचालन करने का मूलभूत अधिकार प्रतिष्ठापित है । संविधान का अनुच्छेद 30 धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को यह विशेषाधिकार प्रदान करता है ताकि उनकी संख्या संबंधी पंगुता को दूर किया जा सके और उनमें सुरक्षा और अपनत्व की भावना लाई जा सके, तब भी जब अल्पसंख्यक कमजोर वर्ग अथवा समाज के उपेक्षित तबके से न हों ।

अल्पसंख्यक समुदायों में मुस्लिम शैक्षणिक क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं। 6-13 वर्ष के आयु समूह वाली मुस्लिम आबादी का एक बड़ा तबका अजा/अजजा बच्चों की तुलना में भी स्कूली शिक्षा ग्रहण नही कर रहा है । गरीबी के कारण उच्चतर शिक्षा में मुस्लिम छात्रों की प्रतिशतता किसी भी अन्य समुदाय से तीव्र गति से गिरती है। 2001 की जनगणना के अनुसार, भारतवर्ष में केवल 55% मुस्लिम पुरुष एवं 41% मुस्लिम महिलाएं ही शिक्षित हैं; जबकि गैर-मुस्लिम में तदनुरूपी आँकड़े 64.5% और 45.6% है । 101 मुस्लिम महिलाओं में से केवल एक महिला स्नातक होती है, जबकि आम आबादी में से 37 महिलाओं में एक स्नातक है । इससे ज्यादा चिंताजनक तथ्य यह है कि बीच में ही शिक्षा छोड़ने वाले मुसलमानों की संख्या तब एकाएक बढ़ जाती है जब वे शिक्षा के पिरामिड पर ऊपर की ओर अग्रसर होते हैं । उच्चतर शिक्षा के मामले में राष्ट्रीय औसत की तुलना में राष्ट्रीय मुस्लिम आँकड़ा 53% की बदतर स्थिति पर है । स्नातक स्तर पर मुस्लिम महिलाएं 63% तक कम है । मुस्लिम समुदाय को शैक्षिक रुप से समाज के अन्य लोगों के समकक्ष लाने के लिए 3 करोड़ 10 लाख अतिरिक्त मुसलमानों को 2011 तक शिक्षित करना होगा । विशेष रूप से चौकाने वाली विसंगति यह है कि शैक्षणिक रूप से अशक्त व बेरोजगार मुस्लिम युवा शहरी व अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में हैं । यदि वर्तमान दशा जारी रहती है तो मुसलमानों का काफी बड़ा अनुपात भारत के शिक्षित कार्य बल के नक्शे से गायब हो जाएगा । यहां यह कहना अनावश्यक है कि प्रबुद्ध एवं सम्मिलित लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक है कि लोगों के सभी वर्ग व श्रेणियां भली-भांति शिक्षित हों तथा बौद्धिक रूप से एक स्वतंत्र राष्ट्र का दायित्व निभाने में सक्षम हों । चूंकि दशकों से मुस्लिम समुदाय शैक्षणिक दृष्टि से पीछे रह गया है, यह आवश्यक है कि इस समुदाय की शिक्षा को तीव्र गति से आगे लाया जाए, प्रोत्साहित व संवर्द्धित किया जाए ।

आयोग को इस बात की निराशा है कि मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के पास लम्बे समय से शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाने वाले ईसाई समुदाय की तुलना में पर्याप्त शैक्षिक संस्थाएं नहीं है । दुर्भाग्यवश शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने के लिए मुस्लिम समुदाय से ज्यादा लोग आगे नहीं आए हैं । यह दृष्टिकोण विशेष रूप से कुछ राज्यों के संदर्भ में सटीक बैठता है। हालांकि अनेक राज्यों में मदरसों की स्थापना की गई है, लेकिन उनमें औपचारिक शिक्षा नहीं दी जाती । उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिम समुदाय द्वारा बहुत कम शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की गई है । यह एक दुखद स्थिति है । शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने की मुख्य बाधाओं में से एक बड़ी बाधा शहरी क्षेत्रों में जमीन का न मिलना और जमीन की ऊंची कीमत भी हैं । अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों विशेष रूप से अनेक स्थानों पर मुस्लिम समुदाय के लोगो ने शिकायत की है कि वे शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने के लिए जमीन

खरीदने में असमर्थ हैं । कई राज्यों में शैक्षिक संस्थाओं के लिए जमीन की आवश्यकता में काफी समय से कोई परिवर्तन नहीं आया है, जिसके परिणास्वरूप ज्यादा कीमत वाली ये जमीनें अल्पसंख्यक समुदाय की पहुंच के बाहर हो गई हैं । आयोग महसूस करता है कि शहरी जमीन की ऊंची कीमतों को ध्यान में रखते हुए जमीन की आवश्यकता की समीक्षा तुरंत करना अपेक्षित है । आयोग यह भी सुझाव देता है कि राज्य सरकारों को विशेषकर मुस्लिम समुदायों के लिए शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने के लिए उत्साही व्यक्तियों/ समितियों को रियायती/पहुंच वाली दरों पर जमीन आबंटित करने के लिए आगे आना चाहिए।

वर्तमान अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाएं शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अल्पसंख्यक बच्चों और युवाओं की प्रवेश संबंधी जरूरतों को पूरा करने में पूर्णतया अपर्याप्त हैं । यह देखने का लगातार प्रयत्न होना चाहिए कि सभी संस्थाओं में अल्पसंख्यक समुदायों के छात्रों का स्वागत हो और शैक्षिक रूप से विकास और उनके अधिगम की अक्षमता को दूर करने में उन्हें मदद मिले और व्यक्तित्व विकास, आत्म-विश्वास, उच्च शैक्षिक उपलब्धियां और बाद के जीवन में रोजगार क्षमता प्राप्त करने की सफलता प्राप्त करें । उन्हें स्व-रोजगार के लिए उद्यमी कौशल और योग्यता व क्षमता प्राप्त करने में भी मदद दी जानी चाहिए ।

किसी समुदाय के शैक्षणिक विकास का सूचकांक संभवतः राष्ट्र निर्माण में इसकी भागीदारी के बारे में लोकमत तैयार करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है जिससे सार्वजनिक जीवन में इसकी छवि व इसके प्रति आदर भाव आगे जाकर परिभाषित होता है । भागीदारी से उलट स्थिति विमुखता की है । एकीकरण व सशक्तिकरण के संवर्द्धन में असफल होना यद्यपि अनजाने में ही सही विकासोन्मुख पंगुता व भावात्मक विमुखता को पैदा करता है । शिक्षा को विशेष रूप से धार्मिक, सांस्कृतिक व भाषाई अनेक संख्यक समाज, जैसाकि हमारा है, में एकीकरण के एक सशक्त साधन के रूप में व्यापक रूप से मान्यता दी गई है । मुसलमानों का वर्तमान पिछड़ापन दोहरी क्षति की पूर्वसूचना देता है । इस समुदाय के लोग सार्वभौमिकरणीय विश्व में उभरते अद्वितीय अवसरों को गंवा रहे हैं । देश का नुकसान इस अर्थ में हो रहा है कि आबादी का एक बड़ा हिस्सा समग्र समृद्धता और गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने की दिशा में देश के आगे बढ़ते प्रयासों में भागीदारी नहीं कर पा रहा है ।

मदरसे निशुल्क शिक्षा के केन्द्र हैं । वे समाज सेवा के गढ़ भी हैं जहां मानवता व भाईचारा जो इस्लाम के मूल सिद्धांतो में से एक है, की शिक्षा दी जाती है तथा मानवीय मूल्यों की शिक्षा दी जाती है । वे अभी भी मुसलमानों के सांस्कृतिक व शैक्षणिक जीवन के केन्द्र माने जाते हैं । पारंपरिक शिक्षा के एक अमूल्य तंत्र के रूप में इन मदरसों ने मुस्लिम समाज के दलित तबके में साक्षरता फैलाने में अहम भूमिका निभाई है । ये मदरसे अत्यंत पिछड़े क्षेत्रों में भी पाए जाते हैं, जहां अधिकांशतः अन्य शैक्षणिक सुविधाएं नहीं होती हैं । इस प्रकार, इन मदरसों का योगदान इतना महत्वपूर्ण है कि कोई भी, समुदाय के प्रति इनकी सेवाओं की अनदेखी करके, मुस्लिम समुदाय के शैक्षणिक विकास के बारे में नहीं सोच सकता। यहां यह कहना आवश्यक नहीं है कि केवल मुस्लिम समुदाय का गरीब तबका ही अपने बच्चों को विवशता में मदरसों में भेजता है जो कि न केवल उन्हें निःशुल्क शिक्षा बल्कि निःशुल्क भोजन और आवास भी प्रदान करते हैं । जो मदरसे स्थापित करते हैं, अथवा जिनकी सहायता से ये मदरसे चलाए जाते हैं, वे अपने बच्चों को बिरले ही उन मदरसों में शिक्षा प्रदान करते हैं। इसके विपरीत, वे अपने बच्चों के लिए कॉन्वेंट स्कूल को वरीयता देते हैं।

मदरसों में अपनाई जाने वाली शिक्षा की पद्धति पुरानी हो गई है तथा सुविज्ञता के वर्तमान माहौल के अनुरूप नहीं है । मदरसा शिक्षा पद्धति को मानकीकृत करने की आवश्यकता है जो कि मदरसा शिक्षा के मूल सिद्धांतों के साथ समझौता किए बिना उभरते हुए सार्वभौमिक परिदृश्य के लिए उपयुक्त हो। मदरसों के लिए आधुनिक शिक्षा प्रदान करते हुए भी अपना अनिवार्य स्वरप कायम रखना संभव है । वे

अपनी स्वायत्ता के सुरक्षित रख सकते हैं और सरकार की बाध्यता से मुक्त रह सकते हैं । मदरसा प्रणाली का मानकीकरण और मदरसा शिक्षा को मुख्यधारा में लाने की हमारे देश, जो कि 21वीं सदी की एक सुपर शक्ति के रूप में तेजी से उभर रहा है, में अपनी प्रासंगिकता है । मदरसे भेदभाव रहित माहौल को सम्मान देते हुए स्वच्छ और न्यायोचित समाज बनाने की ओर कदम के रूप में सामाजिक न्याय को बढ़ाने के लिए एक सम्मिलित वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं । प्रत्येक शैक्षणिक संस्था, चाहे जिस किसी भी समुदाय से संबंधित हो, हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक सदैव क्रियाशील भाग है। धर्मनिरपेक्षता हमारे संविधान की मूलभूत विशेषताओं में से एक है जो हमें एक सम्मिलित समाज के निर्माण के लिए शिक्षा की गहन पद्धति बनाने के लिए बाध्य करता है जिसमें सभी धार्मिक मूल्य प्रतिबिम्बित होते हैं। अपने बहु-धार्मिक और बहु-सांस्कृतिक समाज वाले भारत को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता है। यह सम्मिलित लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। समावेश समानता, मानव अधिकारों और सामाजिक-आर्थिक न्याय का केन्द्र-स्थल है। मदरसों के प्रबन्धकों को विवाद सुलझाने और एक शांतिपूर्वक समाज का निर्माण करने में शिक्षा के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है। इस बात की भी जरूरत है कि छात्रों में सैद्धांतिक शिक्षा से परे पूछताछ करने की भावना जगाई जाए ताकि वे उचित परिप्रेक्ष्य में शांति और न्याय के मुद्दे को समझ सकें । इस संदर्भ में मदरसा शिक्षा को विविधता, विभिन्नता और बहुलता की जागरूकता और उस भावना का संवर्धन करना चाहिए। इसे राष्ट्रीय परिदृश्य में उभरती हुई आकांक्षाओं की वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करना चाहिए तथा इसकी ओर एक सकारात्मक दृष्टिकोण का संवर्धन करना चाहिए और इसके लिए एक उचित पाठ्यचर्या का माहौल बनाना चाहिए। गांधी जी ने कहा है, ''यदि हमें विश्व में सच्ची शांति लानी है, तो हमें इसकी शुरूआत बच्चों से करनी होगी।''

मदरसों की वर्तमान स्थिति को महसूस करते हुए, सच्चर समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह अवलोकन किया था कि मदरसों के उन्न्यन और उनमें शिक्षा के सुधरे हुए मानकीकृत रुप को मुस्लिम बच्चों को आधुनिक, गुणवत्तापूर्ण और सस्ती शिक्षा प्रदान करने के राज्य के कर्तव्य के विकल्प के रुप में नही माना जाना चाहिए । समिति ने आगे यह टिप्पणी की थी कि लोगों को शिक्षा प्रदान करने की सरकार की अनुच्छेद 21 क के अन्तर्गत संवैधानिक बाध्यता है ।

आयोग ने केन्द्राय सरकार को पहले ही यह सिफारिश कर दी है कि वे संसद के अधिनियम के माध्यम से एक स्वायत्त निकाय के रूप में केंद्रीय मदरसा बोर्ड की स्थापना करें, जो सरकारी हस्ताक्षेप से पूरी तरह से मुक्त हो । केंद्रीय मदरसा बोर्ड की स्थापना के लिए आयोग द्वारा सिफारिशों में, मदरसों में सरकारी हस्तक्षेप के विरूद्ध प्रावधान और सुरक्षा उपाय शामिल किए हैं जो केन्द्रीय मदरसा बोर्ड की स्वायतत्ता की गारंटी देते हैं । केन्द्रीय मदरसा बोर्ड से संबद्धता पूरी तरह से स्वैच्छिक है । केन्द्रीय मदरसा बोर्ड को मदरसा शिक्षा की ब्रह्मवैज्ञानिक विषय-वस्तु पर मनमानी करने का कोई अधिकार नहीं होगा। आयोग पुनः सिफारिश करता है कि संवैधानिक केन्द्रीय मदरसा बोर्ड की स्थापना जल्द से जल्द की जाए।

अध्याय 11 अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक अधिकारों के उल्लंघन अथवा वंचन के दृष्टांत

संविधान का अनुच्छेद 30 (1) धर्म अथवा भाषा के आधार पर अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका संचालन करने का अधिकार देता है । अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत यह अधिकार भाषायी अल्पसंख्यकों को मिलता है चाहे उनका धर्म कोई भी क्यों न हो । अतः अनुच्छेद 30 से धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का अपवर्जन संभव नहीं है ।

केरल शिक्षा विधेयक, 1957 (एआई आर 1958 एस सी 959) के साथ प्रारंभ करते हुए तथा पी ए इनामदार और अन्य बनाम् महाराष्ट्र राज्य तथा अन्य (2005) 6 एससी सी 537 द्वारा पराकाष्ठा तक पहुँचते हुए उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों की एक लंबी श्रृंखला के आधार पर मौजूदा रुप में विधि का निर्धारण किया है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) पर आधारित निर्णय ने विधि के सम्पूर्ण ढांचे को केरल शिक्षा विधेयक मामले में सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है (ऊपर)। संविधान का अनुच्छेद 30 (1) अल्पसंख्यकों को 'उनकी पसंद' की शैक्षणिक संस्था की स्थापना तथा संचालन का मौलिक अधिकार प्रदान करता है । संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के पीछे की तर्कसंगतता यह है कि अल्पसंख्यकों को उनकी पंसद के शैक्षिक संस्थाएं चलाने के लिए संरक्षण प्रदान किया जाए । इन अधिकारों को उनके उल्लंघन के विरुद्ध प्रतिबंध द्वारा संरक्षित किया गया है तथा इन्हें प्रवर्तन के वचन द्वारा समर्थन दिया गया है । यह प्रतिबंध अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट है जो कि संविधान के अध्याय-III के अधीन किए गए इन प्रावधानों में से किसी को कम या सीमित करने के लिए, किसी विधि या नियम या विनियम को बनाने से राज्य को रोकता है तथा इससे असंगत पाए गए किसी विधि, नियम या विनियम को वीटो करने की धमकी देता है ।

अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज सासायटी बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1974 एस सी 1398 के मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायधीशों ने संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के लिए वास्तविक कारण का श्रेय 'राष्ट्र के विवेक' को दिया है कि धार्मिक और साथ ही भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने तथा उनके संचालन से न रोका जाए है, ताकि उनके बच्चों को उत्कृष्ट सामान्य शिक्षा दी जा सके जिससे वे सही अर्थों में देश के पुरुष और महिला बन सकें। अल्पसंख्यकों को यह संरक्षण अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत देश की अखंडता और एकता को बनाए रखने तथा मजबूत करने के लिए प्रदान किया गया है । सामान्य धर्म निरपेक्ष शिक्षा का दायरा, हमारे देश के बालकों और बालिकाओं में समान्यता के विकास के लिए अभीष्ट है । यह शिक्षा के माध्यम के द्वारा स्वाधीनता, समानता तथा बन्धुत्व की सच्ची भावना है । यदि धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को, उनकी पसंद की शैक्षणिक संस्था की स्थापना और संचालन के लिए अनुच्छेद 30 के अधीन संरक्षण नहीं दिया जाता है तो वे स्वयं को अलग-अलग और पृथक महसूस करेंगे । सामान्य धर्म-निरपेक्ष शिक्षा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा कुल मिलाकर हमारे देशवासियों के मन में स्वाभाविक ज्ञान का संचार करेगी ।"

संविधान के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों के अर्थपूर्ण प्रयोग का अर्थ प्रभावकारी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के अधिकार से है जो कि अल्पसंख्यकों तथा विद्यार्थियों, जो उनका सहारा लेते हैं, की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा कर सकें । राज्य या विनियामक प्राधिकारी के लिए यह अनुज्ञेय है कि वह विनियमों का निर्धारण करे, जिसका किसी अल्पसंख्यक संस्था द्वारा सम्बद्वता और मान्यता की मांग करने या उसे बनाए रखने से पहले, उनका अवश्य ही अनुपालन किया जाए लेकिन ऐसे विनियमों को संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए । इस प्रकार दोनों उद्देश्यों संस्था की उत्कृष्ठता के स्तर को सुनिश्चित करना और अल्पसंख्यकों की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना

और संचालन के उनके अधिकार को संरक्षित करने के बीच संतुलन रखा जाए । वे विनियम, जो दोनों उद्देश्यों को सम्मिलित तथा उनमें सामंजस्य स्थापित करते हैं, को तर्कसंगत माना जा सकता है (टी एम ए पाई फाउन्डेशन बनाम् कर्नाटक राज्य, 2002 (8) एस सी सी 481 देखें) । टी एम ए पाई फाउन्डेशन मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है कि प्रत्येक संस्था जो कि सम्बद्धता और मान्यता को प्रदान करने के लिए शर्तों को पूरा करती है, उसे ऐसी सम्बद्धता तथा मान्यता अवश्य दी जाए । इसके अलावा, अनुच्छेद 30 द्वारा अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकार, विधानमंडल तथा कार्यपालिका को किसी कानून बनाने या किसी कार्यपालिका कार्रवाई करने, जिससे उस अधिकार को छीना या कम किया जा सकता है, से परहेज करने का दायित्व सौंपता है ।

जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने केरल शिक्षा विधेयक (ऊपर) मामले में पाया है, संविधान अल्पसंख्यकों को दो सुस्पष्ट अधिकार प्रदान करता है एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक, नामतः (i) राज्य का अल्पसंख्यकों, धार्मिक अथवा भाषा-विषयक संस्थाओं सहित सभी शैक्षणिक संस्थानों को सहायता एवं मान्यता देने के मामले में समान व्यवहार प्रदान करने का सकारात्मक दायित्व है; तथा (ii) राज्य का ऐसे संस्थानों की स्थापनाओं पर रोक न लगाने तथा उनके संचालन में हस्तक्षेप न करने का नकारात्मक दायित्व भी है । अनुच्छेद 30(1) यह विकल्प उन्हें प्रदान करता है कि वे अपनी पसंद की ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना कर सकें जिससे उनके द्वारा अपने धर्म, भाषा या संस्कृति के संरक्षण का उद्देश्य पूरा हो सके और साथ ही उनके द्वारा अपने बच्चों को एक गहन सामान्य शिक्षा देने का प्रयोजन भी पूरा होता हो । तथापि, अल्पसंख्यक केवल अपने लाभ के लिए ही शैक्षणिक संस्थाएं बनाने के हकदार नहीं है ।

संविधान के अनुच्छेद 30(1) के निबंधनों के अनुसार प्रशासन के अधिकार का अर्थ है, संस्था के कार्यो का प्रबंधन तथा संचालन करने का अधिकार । इसमें, अपनी शासी निकाय को चुनने का अधिकार, शिक्षण तथा गैर-शिक्षण स्टाफ के चयन का अधिकार तथा अपनी पसन्द के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिकार शामिल है । ये सभी अधिकार एक साथ मिलकर, प्रशासन के अधिकार की एकीकृत धारणा की रचना करते हैं । संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अर्थ के अंतर्गत प्रशासन की धारणा में विद्यार्थियों को प्रवेश देने की पसन्द शामिल है । अपनी पसंद के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिकार, एक शैक्षणिक संस्था के प्रशासन के अधिकार का सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू है तथा पात्रता की अपेक्षित अर्हता को निर्धारित करने की सीमा के अलावा, उस पर कोई अन्य पाबन्दी लागू करना संवैधानिक रप से अनुज्ञेय है । संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन प्रदत्त अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 13 के आदेश के कारण राज्य द्वारा न तो छीना जा सकता है और न ही कम किया जा सकता है । प्राधिकारियों द्वारा विनिमय की शक्ति इन मूल अधिकारों को भ्रमपूर्ण या अवास्तविकता से परिपूर्ण वंचन नही बना सकती ।

यह ध्यान रखना होगा कि संविधान के अनुच्छेद 13 के माध्यम से यह उपबंध किया गया है कि राज्य द्वारा ऐसे किसी कानूनों,नियमों और विनियमों को नहीं बनाया जा सकता, जो कि संविधान के भाग।। के प्रतिकूल हैं। संविधान के निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के कुछ भागों के चारों तरफ एक दीवार बना दी है, जिसे अधिसंख्यकों की उसमें अनुचित रूप से घुसने की क्षमता को सीमित करते हुए हमेशा बने रहना होगा। वह दीवार, अपनाई गई मूल संरचना है। अन्य शब्दों में, अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि मौलिक अधिकारों को भंग करने में कोई विधि, ऐसे उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगी । आक्षेपित कार्रवाई के प्रभाव की संविधान के भाग-।।। द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों तथा स्वतंत्रता की कसौटी पर जांच करनी होगी ।

एक शैक्षणिक संस्था की स्थापना उसकी स्थापना के प्रयोजन में सहायक होने अथवा आगे बढ़ाने के लिए की जाती है । जबकि अल्पसंख्यकों को, इन आकांक्षाओं के साथ उनकी अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार प्राप्त है कि उनके बच्चों का उचित तरीके से पालन पोषण किया जाएगा तथा वे उच्चतर शिक्षा के लिए पात्रता प्राप्त करें और ऐसी बौद्धिक उपलब्धियों से सज्जित होकर संसार में बाहर जाएं, जो कि उन्हें लोक सेवाओं में प्रवेश के लिए योग्य बनाएगी, तब निश्चित रूप से उनके अपने समुदाय के बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुकूल कर्तव्य को ऐसे मौलिक अधिकार में अवश्य अन्तर्निहित किया जाए । ऐसे मौलिक अधिकार के हिताधिकारी को इसकी पूरी मात्रा में लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए । अतः अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं, अल्पसंख्यक समुदाय जिसने संस्था की स्थापना की थी, की आवश्यकताओं को अनिवार्य रूप से पूरा करेगी ।

संविधान के अनुच्छेद 30 के अधीन प्रदत्त अधिकार, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को, उसकी अपनी पसंद के विद्यार्थियों को प्रवेश देने का अधिमानी अधिकार है । यह बाध्यता यह सुनिश्चित करने के लिए अभीष्ट है कि संस्था, अल्पसंख्यकों को अपने धर्म और भाषा को संरक्षित करने तथा ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को एक पूर्ण तथा अच्छी सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय को समर्थ बनाते हुए, अनुच्छेद 30(1) के दोहरे उद्देश्यों को प्राप्त करके अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को कायम रखती है । जब तक कि संस्था, उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करके अपने अनिवार्य स्वरूप को बनाए रखती है, यह एक अल्पसंख्यक संस्था बनी रहेगी । टी एम ए पाई फाउंडेशन तथा पी.ए.इनामदार मामले(ऊपर) में दोनों इस दृष्टिकोण पर एकमत थे कि अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को बनाए रखने के लिए एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के लिए यह अनिवार्य है कि वह उस अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दे, जिसने इसकी स्थापना की है । अपने अल्पसंख्यक स्वरूप के परिरक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए ताकि अनुच्छेद 30(1) के संरक्षण के विशेषाधिकार का लाभ उठा पाएं, यह आवश्यक है कि संस्था को स्थापित करने के उद्देश्य विफल न हों। अन्य शब्दों में, एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अनिवार्य रूप से, मुख्यतः उस समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए अन्यथा उसका अल्पसंख्यक संस्था का स्वरूप समाप्त हो जाता है । अतः उस अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकांश विद्यार्थियों को प्रवेश देना होगा, जिसने संस्था की स्थापना की है । सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम् दिल्ली विश्वविद्यालय (1992)1एससीसी 558 मामले में यह निर्णय दिया गया है कि अल्पसंख्यकों को उनकी संस्था के अल्पसंख्यक स्वरूप को बनाए रखने के लिए उनके अपने अभ्यर्थियों को प्रवेश देने का अधिकार है । वह एक आवश्यक सहवर्ती अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अधीन शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन करने के अधिकार से निकलता है । अल्पसंख्यक समुदायों में अभिभावकों के लिए एक संबंधित अधिकार का भी प्रावधान है । अभिभावक, उनके अपने धर्म के अनुरूप वातावरण वाली संस्थाओं में अपने बच्चों को शिक्षित करने के हकदार हैं ।

अध्याय 12- निष्कर्ष

1. शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता देने और अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र देने की मुख्य जिम्मेदारी राज्य सरकारों के प्राधिकारियों की हैं । तथापि आयोग द्वारा यह पाया गया है कि अनेक राज्यों ने अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के अनुरोध पर विचार करने के लिए कोई भी तंत्र स्थापित नही किया है । अनेक राज्यों में, इसके लिए रुख निक्रियता भरा रहा है । आयोग ने यह भी पाया है कि संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्रत्याभूत अधिकारों के बारे में संबंधित अधिकारियों को जागरुक नही किया गया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि आयोग को अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए शैक्षणिक संस्थाओं से बड़ी संख्या में आवेदन प्राप्त हुए हैं । आयोग द्वारा राज्य सरकारों को लिखे जाने के पश्चात्, कुछ ने मानदंडों को अंतिम रूप दिया है और इस मामले की देख-रेख करने के लिए समुचित तंत्र स्थापित किया है । अनेक राज्य सरकारों के साथ की गई बातचीत के दौरान, आयोग ने इस प्रकार के अनुरोध पर जल्द विचार किए जाने पर बल दिया । चूंकि कुछ राज्य सरकारों ने आयोग से समुचित दिशानिर्देशों को अंतिम रप देने के मामले में परामर्श देने का अनुरोध किया था, अतः आयोग ने इसके लिए समुचित दिशानिर्देश तैयार किए । ये दिशानिर्देश भारत के संविधान के तहत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के संबंध में अल्पसंख्यक दर्जा के निर्धारण, उनकी मान्यता, संबद्धता और उससे जुड़े मामलों को लेकर हैं । ये दिशानिर्देश सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को उनके मार्गदर्शन के लिए भेज दिए गए हैं । इन्हें आयोग की वेबसाइट पर भी प्रदर्शित किया गया है । यह आशा की जाती है कि विभिन्न राज्य सरकार के प्राधिकारी अपने अधिसूचित किए जाने वाले नियमों और विनियमों में समुचित बदलाव लाने के लिए इन दिशानिर्देशों को ध्यान में रखेंगे ।

2. सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों का यह कर्त्तव्य है कि वे अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए एक सिंगल विंडो प्रणाली की स्थापना करें । जिला/जिला परिषद/ ताल्लुक स्तर पर आवेदनों की प्राप्ति के लिए विकेन्द्रीयकरण पर विचार किया जा सकता है, जहां आवेदन की प्राप्ति के पश्चात् अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए आवेदन को नोडल प्राधिकारी को भेजने से पहले समयबद्ध अवधि के भीतर उसकी संवीक्षा/निरीक्षण किया जा सकता है । सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को इस प्रकार की प्रणाली स्थापित करनी चाहिए और इसका व्यापक प्रचार करना चाहिए ।

3. कुछ राज्य सरकार के प्राधिकारी केवल अस्थाई अवधि के लिए अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र देते हैं। आयोग ने स्पष्ट रुप से यह उल्लेख किया है कि अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाण पत्र अल्पावधि के लिए नही दिया जा सकता। जैसे कि टी.के.वी.टी.एस.एस. मेडिकल एजुकेशन तथा चेरिटेबल ट्रस्ट बनाम् तमिलनाडु राज्य ए आई आर 2002 मद्रास 42 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान को अल्पसंख्यक दर्जा किसी ड्राइविंग लाइसेंस की तरह समय-समय पर नवीकृत की जाने वाली विशेष अवधि के लिए प्रदान नहीं किया जा सकता । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान को अल्पसंख्यक दर्जा देने वाले पूर्व आदेश की समीक्षा करने की छूट राज्य सरकार को नहीं है जब तक कि यह पता न चले कि संबंधित संस्थान ने अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त करने संबंधी आदेश पारित होते समय कोई तथ्य छुपाया अथवा परिस्थितियों में ऐसा मूल परिवर्तन हो गया है जिससे पूर्व के आदेश को निरस्त करना जरूरी हो जाता है । इस संबंध में माननीय न्यायाधीशों की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ दिया जा सकता है :

> ".....यदि किसी निकाय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत परिकल्पित अधिकारों का हकदार मानकर, एक बार अल्पसंख्यक संस्था घोषित किया जाता है तो जब तक कि परिस्थितियों में मूल परिवर्तन न हो अथवा तथ्यों

को छुपाया न गया हो, तो सरकार को ऐसे संयोजित संवैधानिक अधिकार, जो कि मौलिक अधिकार है को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप पहले सुनवाई की उचित प्रक्रिया अपनाए बिना, छीनने की शक्ति प्राप्त नहीं है और वह भी महज एक साधारण पत्र के जरिए ।"

तद्नुसार राज्य सरकारों को आयोग की यह सिफारिश है कि अल्पसंख्यक दर्जा प्रमाणपत्र स्थायी आधार पर ही दिया जाना चाहिए जिसे विधि की समुचित प्रकिया के बाद ही वापिस या निरस्त किया जा सकता है ।

4. आयोग के ध्यान में ऐसी अनेक घटनाएं लाई गई हैं जहाँ कि राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम और विनियम अनुच्छेद 30(1) के प्रावधानों के अनुरूप नहीं हैं । अपने विभिन्न फैसलों में शीर्ष न्यायालय ने अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत स्थापित अधिकारों को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया। यदि राज्य की विधायिका द्वारा बनाया गया विधि का कोई भी प्रावधान संसद द्वारा बनाए गए विधि, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद सक्षम है, के किसी भी प्रावधान से अथवा समवर्ती सूची में गणनीय मामलों में किसी एक मामले से संबंधित वर्तमान कानून के प्रावधान से असंगत है, तो अनुच्छेद 254 के प्रावधानों के अधीन संसद द्वारा बनाया गया कानून लागू होगा और विधायिका द्वारा बनाया गया कानून असंगति की सीमा तक अमान्य होगा । विभिन्न राज्यों के अपने दौरों के दौरान आयोग ने राज्य सरकार के प्राधिकारियों का अपने कानूनों और नियमों में संशोधन/सुधार का परामर्श दिया ताकि वे अनुच्छेद 30 के अंतर्गत प्रतिष्ठापित अधिकारों के अनुरूप हों । आयोग सिफारिश करता है कि केंद्रीय सरकार राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों पर दवाब डालें कि वे सभी संबंधित कानूनों,नियमों और विनियमों की तत्परता से जांच करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संविधान के अनुच्छेद 30 के अंतर्गत दिए गए अधिकारों के अनुरूप लाने के लिए उनमें अगर आवश्यकता है, तो संशोधन किए जाएं ।

5. आयोग का ध्यान अनेक विनियामक प्राधिकारियों द्वारा बनाए गए नियमों और विनियमों की असंगतता की घटनाओं के बारे में भी आकर्षित किया गया है, जो अनुच्छेद 30(1) के प्रावधानों के अनुरुप नही हैं । उच्चतम न्यायालय ने अपने अनेक निर्णयों में अनुच्छेद 30(1) में प्रतिष्ठापित विभिन्न निर्णयों को स्पष्ट रुप से इंगित किया है । आयोग, केन्द्र सरकार से अनुरोध करता है कि वे यूजीसी, एआईसीटीई, एनसीटीई, एमसीआई, डीसीआई, सीवीएसई आदि जैसी शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय विनियामक प्राधिकारियों द्वारा बनाए गए नियमों और विनियमों की जांच करें ताकि यह देखा जा सके कि वे अनुच्छेद 30 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून के अनुरुप हैं। इस संबंध में ब्रह्मों समाज बनाम् पश्चिम बंगाल (2004)6 एससीसी224) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है ।

6. आयोग के ध्यान में अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित नई शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता दिए जाने के लिए राज्य सरकारों की अनिच्छा से संबंधित कई घटनाएं लाई गई हैं । आयोग ने यह पाया है कि स्कूलों को मान्यता दिए जाने के लिए राज्य सरकारों की अनिच्छा मुख्य रूप से सहायतानुदान दिए जाने की अनिच्छा पर आधारित है । ऐसे कई उदाहरण हैं जहां राज्य सरकारें सहायतानुदान देने की अपनी भूमिका को समाप्त करना चाहती थीं । हालांकि सहायतानुदान एक संवैधानिक आदेशक नहीं है, फिर भी आयोग ने देखा है कि अनेक मामलों में, ग्रामीण, दूरवर्ती तथा जनजातीय इलाकों में स्थित अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को अपना खर्चा स्वयं चलाने को नहीं कहा जा सकता क्योंकि समाज के अपेक्षाकृत अधिक निर्धन वर्गों से शुल्क एकत्र करना असंभव होता है । ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं के लिए राज्य सरकार से वित्तीय सहायता लिए बिना अपने खर्चे चलाना और शिक्षा का यथोचित स्तर प्रदान

करना मुश्किल होगा । यहां यह कहना आवश्यक नहीं है कि शिक्षकों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए कम से कम अस्तित्वयुक्त वेतन दिया जाना चाहिए । अनेक दूर-दराज और कम विकसित क्षेत्रों में अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा चलाई जा रहीं शैक्षणिक संस्थाएं निर्धन लोगों की आशा की एकमात्र किरण है। राज्य का कर्तव्य है विशेषकर अनुच्छेद 21क के अंतर्गत निहित 6-14 वर्षो के आयु वर्ग में सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और सार्वभौमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए संवैधानिक जनादेश के संदर्भ में, ऐसी संस्थाओं को सुदृढ तथा उनकी सहायता करें । बच्चो को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के परिचालन के संदर्भ में यह जरुरी है कि दूरदराज और ग्रामीण इलाकों में अधिक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की जाएं ताकि छात्रों की आसानी से वहां पहुंच हो सके । राज्यों को इस संवैधानिक जिम्मेदारी से कतराना नहीं चाहिए । आयोग, इसलिए सिफारिश करता है कि राज्य सरकारों को दूरदराज, दूरवर्ती, जनजातीय और अविकसित क्षेत्रों में स्थित अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को सहायताअनुदान देने के लिए निर्देश दिया जाना चाहिए ।

7. आयोग ने सरकार से शिक्षा की मदरसा प्रणाली को समन्वित करने और उसका मानकीकरण करने और इसके समेकित विकास तथा मुख्यधारा में लाने के लिए भी एक केन्द्रीय मदरसा बोर्ड की स्थापना करने की सिफारिश की है । एक स्वायत्त निकाय के रूप में संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित होने वाले बोर्ड को इस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली परम संवेदनशीलताओं और चिन्ताओं को देखते हुए सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त रखा जाना चाहिए । मदरसा शिक्षा के सुधार से सम्बंधित स्थानीय चिन्ताओं को देखते हुए केन्द्रीय मदरसा बोर्ड के लिए आयोग द्वारा संस्तुत प्रस्तावित योजना में मदरसों में सरकारी हस्तक्षेप के विरूद्ध पर्याप्त प्रावधान और सुरक्षोपाय किए गए हैं तथा केन्द्रीय मदरसा बोर्ड की स्वायत्तता की गांरटी दी गई है । इसमें भारत के धर्मगुरूओं और इस्लाम के अभिरक्षकों द्वारा किसी भी प्रकार की चिन्ता दर्शाने का कोई भी स्थान नहीं छोड़ा गया है । केन्द्रीय मदरसा बोर्ड से सम्बद्धता पूरी तरह से स्वैच्छिक है और एक सम्बद्ध मदरसा किसी भी समय संबद्धता से बाहर हो सकता है। केन्द्रीय मदरसा बोर्ड को मदरसा शिक्षा की बह्मवैज्ञानिक विषय-वस्तु पर मनमानी करने का कोई अधिकार नहीं होगा । आयोग को आशा है कि सरकार इस संबंध में अपने निर्णय को जल्द से जल्द अंतिम रुप देगी क्योंकि इससे वर्तमान स्थिति में निस्संदेह रप से गुणात्मक परिवर्तन आएगा ।

8. आयोग को विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं से भाषायी अल्पसंख्यक दर्जे के लिए अनेक आवेदन मिलते रहे हैं । आयोग को भाषायी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं से शिकायतों के निपटान के लिए भी याचिकाएं/आवेदन मिले हैं । आयोग द्वारा इन सभी का निपटान याचिकाकर्त्ताओं को यह सूचित करते हुए किया जा रहा है कि रा अ शै सं आ अधिनियम के प्रावधानों के दायरे में भाषायी अल्पसंख्यक नही आते हैं । संविधान का अनुच्छेद 30 (1) निम्नवत है :

`30 शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन करने का अल्पसंख्यकों का अधिकारः (1)

सभी अल्पसंख्यकों, चाहे वह धर्म या भाषा के आधार पर हो, को अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने और उनके संचालन का अधिकार होगा।

उपर्युक्त से यह देखा जा सकता है कि अनुच्छेद 30 (1) में धार्मिक एवं भाषायी दोनो तरह के अल्पसंख्यकों का उल्लेख किया गया है । तथापि, रा अ शै सं आ अधिनियम की धारा 2 (च) में अल्पसंख्यकों को निम्नलिखित रप से परिभाषित किया गया है :

2 (च) अल्पसंख्यकों से इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए वह समुदाय अभिप्रेत हैं जो केन्द्र सरकार द्वारा उस रुप में अधिसूचित किया जाए ।

9. केन्द सरकार ने 5 समुदायों नामतः मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्व और पारसियों को 5 अल्पसंख्यक समुदाय के रप में अधिसूचित किया है । अतः वर्तमान में भाषाई अल्पसंख्यक रा अ शै सं आ अधिनियम के कार्यक्षेत्र में नहीं आते।

10. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मानव संसाधन विभाग मंत्रालय से संबद्व संसद की स्थायी समिति ने रा आ शै सं आ अधिनियम में कतिपय संशोधन पर विचार करते हुए, रा आ शै सं भा अधिनियम के दायरे के भीतर भाषायी अल्पसंख्यकों को शामिल करने की अपनी रिपोर्ट में विशिष्ट सिफारिशें की है। यह माना जाता है कि यह सिफारिश इसलिए की गई थी क्योंकि संसद सदस्यों को भी रा अ शै सं आ अधिनियम के कार्यक्षेत्र के भीतर भाषायी अल्पसंख्यकों को लाने के लिए भाषायी अल्पसंख्यकों से बड़ी संख्या में आवेदन प्राप्त हुए हैं । चूंकि अनुच्छेद 30 (1) धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को भी मूलभूत अधिकार प्रदान करता है, अतः समानता और न्याय का तकाजा यह है कि भाषायी अल्पसंख्यकों को भी इस अधिनियम में उपयुक्त संशोधन करते हुए रा अ शै सं आ अधिनियम के कार्यक्षेत्र के भीतर लाया जाए। आयोग, तदनुसार इसकी सिफारिश करता है ।

Printed By: Chandu Press, Ph: 22526936